आवश्यक स्पष्टीकरण

ज्ञानसार ग्रन्थावली का इतने लंबे समय से और इस रूप में प्रकाशित होते देख हर्ष और दुख दोनों की एक साथ अनुभूति होती है। हर्ष तो इसलिये कि अपनी २५ वर्षों की साध पूरी हो रही है और दुख इस बात का है कि जिस रूप में और जितनी शीघ्रता से हम इसका प्रकाशन करना चाहते थे, नहीं कर पाये। विधि का विधान कुछ ऐसा ही था कि इसमें हर्ष और शोक, ये दोनों ही करना वृथा है। पर हम अभी ज्ञानसारजी जैसे महायोगी की भाँति समत्व में नहीं पहुँच सके हैं।

विधि के आगे मनुष्य का प्रयत्न कुछ काम नहीं देता, इसका इस ग्रंथ के प्रकाशन प्रसंग से खूब अनुभव हुआ। पच्चीस वर्ष पहले बड़ी उमंग और आशा के साथ ज्ञानसारजी के ग्रन्थों की पाण्डुलिपि बड़ी लगन के साथ की थी। पन्द्रह वर्ष तो वह योंही पड़ी रही। बीच में चूहों ने भी कुछ सामग्री के पुर्जे-पुर्जे करके हमें सचेत किया। परम संत भद्रमुनिजी (सहजानंदजी) की प्रेरणा व कृपा से ७।८ वर्ष पूर्व इसका छपवाना प्रारंभ किया। चारसौ छियासी पृष्ठों में ज्ञानसारजी की रचनाओं का एक भाग छप कर तैयार हुआ और ११२ पृष्ठों में उनका परिचय छप गया। मूल ग्रंथ के छपे हुए फरमे दफ्तरी को जिल्द बन्धाई के लिये दे दिये गये, पर उसी समय कलकत्ते में हिन्दु मुसलमानों का संघर्ष हुआ, हिन्दुस्तान पाकिस्तान

दो टुकड़े हो गए। दफ्तरी मुसलमान था-कहां गया पता नहीं। बहुत खोज की गई, पर उसके मकान का भी पता न लगने से फरमे प्राप्त नहीं हो सके। तीन-चार वर्ष इसी प्रतीक्षा में रहे कि दफ्तरी आजायगा और फरमें मिल जायंगे। इसी बीच जिसने दफतरी को फरमे दिये थे वह व्यक्ति भी मर गया। समस्त आशाओं पर कुठाराघात होगया। ग्रन्थ को दुबारा मुद्रण करवाना पड़ा। पर सारे ही ग्रंथ को मुद्रण करवाने में बहुत लम्बा समय लगता, इसलिये करीब आधे ग्रंथ की सामग्री का पुनर्मुद्रण कर ही प्रकाशित किया जा रहा है।

सौभाग्य से प्राक्कथन, किंचित् वक्तव्य, अनुक्रमणिका और ज्ञानसारजी की जीवनी के फरमे दूसरे प्रेस में छपवाने से गद्दी में मंगवा लिये गये और वे बच गये। बाहर पड़े रहने से खराब अवश्य हो गये हैं पर वे इसमें ज्यों के त्यों दिये जा रहे हैं। इसकी अनुक्रमणिका से पहले कितनी सामग्री मुद्रित हुई थी उसका विवरण मिल जाता है। पृष्ठ १७६ तक की रचनाएं तो ज्यों की त्यों पुनर्मुद्रण हो गई हैं। उसके बाद हीयाली, बालावबोध और तत्त्वार्थ गीत बालावबोध को नहीं देकर सम्बोध अष्टोत्तरी, प्रस्तावित अष्टोत्तरी और आत्मनिंदा पूर्व क्रम से ही दी गई हैं। फिर पृष्ठ २६३ में पूर्व प्रकाशित गूढ (निहाल) बावनी और पृ० ४२३ में प्रकाशित नवपदपूजा दे दी गई है। तदनन्तर तीन पृष्ठ की सामग्री इसमें नई दी गई है जो उस समय नहीं दी जा सकी थी। इसके बाद पूर्व देश वर्णन दिया गया है। अवशिष्ट रचनाओं को हम दूसरे भाग में देंगे। वे रचनाएं भी साहित्यिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत मूल्यवान हैं जो लगभग ४०० पृष्ठों की होगी। इसमें माला पिंगल, कामोद्दीपन, चन्द चौपाई,

समालोचना और राजाओं के वर्णनात्मक चित्र-काव्य-साहित्यिक दृष्टि से मूल्यवान हैं और आनंदघनजी की चौबीसी का बालावबोध, पदों का विवेचन, आध्यात्मिक गीता बालावबोध, तत्त्वार्थ गीत बाला-वबोध आध्यात्मिक दृष्टि से बड़े महत्त्व की हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रचनाएं सैद्धान्तिक या तात्त्विक हैं।

इस ग्रंथ के साथ ज्ञानसारजी के तीन चित्र, एक फोटो और इनके द्वारा रचित और स्वलिखित स्तवन का फोटो, दिये जा रहे हैं।

पूर्व प्रकाशित अनुक्रमणिका में पुनर्मुद्रण के समय आगे जो व्यतिक्रम हो गया है इसलिये नई अनुक्रमणिका यहां दी जा रही है।—

मूलग्रंथ

प्राक्कथन

"ज्ञानसार-ग्रंथावलीका प्रकाशन करके नाहटाजीने हिन्दी साहित्य के ऊपर बड़ा उपकार किया है। वस्तुतः हिंदीकी अक्षुण्ण परंपराकी जितनी रक्षा जैनोंने कीं, वैसा न होने पर हमें हिंदी भाषा और उसके साहित्य के विकास का बहुत अपूर्ण ज्ञान रहता। एक समय था, जब कि हमारे देश के विद्वान् संस्कृत से सीधे हिंदीकी उत्पत्ति मानते थे, फिर बीचकी कड़ी उन्होंने पाली-प्राकृतको माना। प्राकृत और आधुनिक हिंदी तथा उसकी भगिनी-भाषाओंके बीच की कड़ी अपभ्रंश थी, इस निष्कर्ष पर विद्वान् पहुंच तो गये, लेकिन अपभ्रंश साहित्य का कितना अभाव तथा कितना अल्प-परिचय हमारे लोगोंको अभी हाल तक रहा इसका इसीसे पता लगेगा, कि कितने ही जैन भंडारोंमें प्राकृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं के ग्रंथों को प्राकृत मान कर सूचियों में दर्ज किया गया। अपभ्रंश के कुछ छोटे-छोटे पद या पद्य-ग्रन्थ बौद्ध चौरासी सिद्धों के भी मिले जिन्हें महा-महोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्रीने "बौद्ध गान ओ दोहा" के नाम से प्रकाशित किया। उसके बाद बहुत थोड़े ही से नमूने और मिले, जिनमें से कुछ तिब्बत में प्राप्त हुये। यद्यपि तन्-जुर में अनुवादित अपभ्रंश के छोटे-मोटे ग्रंथों की संख्या सौ से अधिक है, लेकिन उनका मूल शायद अब मिल नहीं सकता। लेकिन स्वयंभू, देवसेन, पुष्पदंत, जोगींदु, रामसिंह, धनपाल,

हरिभद्रसूरि, कन-कामर, जिनदत्तसूरि, आदि बहुत से प्रतिभा-शाली अपभ्रंश कवियों के महाकाव्यों और काव्य-साहित्य की रक्षा करके अपभ्रंश-साहित्य के अब भी अवशिष्ट विशाल कलेवरको हमारे सामने रखनेका काम जैन ग्रंथ-रक्षकोंने ही किया। यही नहीं कि उन्होंने अपभ्रंश के पद्य-साहित्य का काफी भंडार सुरक्षित रक्खा, बल्कि उनके गद्य के नमूने भी पुराने जैन भंडारोंमें मिले हैं, खोज करनेपर वह और भी अधिक मिल सकते है।

जनता की भाषा हमारे देश में जिस तरह बदलती गई उसी तरह उसकी शिक्षा और स्वाध्याय के लिये नई भाषाओंमें धार्मिक-साहित्य तैयार करनेकी आवश्यकता पड़ी। यद्यपि ब्राह्मण धर्म ने संस्कृतको ही सदा प्रधानता दी, तो भी पालि-प्राकृत और अपभ्रंश कालमें ब्राह्मणधर्मी धार्मिक-साहित्य भी अवश्य कुछ बना होगा, लेकिन जान पड़ता है, उसके साथ वैसा ही बरताव किया गया, जैसे लड़के स्लेट पर लिखे लेखोंके साथ करते हैं। यही कारण है, जो कि तुलसी, सूर, कबीर, विद्यापतिके पीछे जानेपर हमें अन्धकार दिखाई पड़ता है। बौद्ध तेरहवीं सदी में ही यहां से विदा हो गये, लेकिन उनके अपभ्रंश ग्रन्थों का जो अनुवाद तिब्बती भाषा में मिलता है। उससे मालूम होता है, कि जैनों की तरह उनके पास भी अपभ्रंश का काफी बड़ा भंडार रहा होगा। तो भी वह जैनोंके बराबर रहा होगा, इसमें सन्देह है, क्योंकि महायानने ब्राह्मणों की तरह संस्कृत को प्रधानता दे रक्खी थी, और चौरासी सिद्धोंकी परंपरा ही लोक-भाषा पर जोर देती थी। जैन भंडारों में

अपभ्रंश काल में भिन्न-भिन्न व्रत त्योहारों के लिये कथायें और माहात्म्य अपभ्रंश में लिखे गये अब भी मिलते हैं। इससे यही पता लगता है, कि लोक-शिक्षणके लिये कम से कम धार्मिक क्षेत्रमें जैन धर्माचार्यों का बराबर ध्यान रहा, कि अर्द्धमागधी और संस्कृत से अपरिचित जैन गृहस्थ नर-नारियोंके लिये उनकी भाषा में ग्रंथ लिखे जायँ। जब अपभ्रंश भाषा परिवर्तित होकर आधुनिक भाषाओंके प्राचीन रूप में आकर मौजूद हुई, तो उन्होंने इस भाषा में भी लिखना शुरू किया। यदि खोज की जाय, तो अपभ्रंश काल के आरंभ (७ वीं-८ वीं सदी) के बाद हिन्दी भाषी-क्षेत्रकी साहित्यिक भाषा का विकास किस तरह हुआ, इसके उदाहरण आसानी से प्रति शताब्दी और लगातार मिल सकेंगे। यह दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक हमारी दृष्टि सम्प्रदायों से बाहर नहीं जाती, इसीलिये जैन कवियों और साहित्यकारों की देनें हिंदी के विद्वानों के लिये भी बन्द पोथी सी हैं।

मुनि ज्ञानसार उसी परंपरा के रत्न थे, जिन्होंने श्रमण महावीर और बुद्ध के समय से ही लोक-शिक्षा के लिये लोकभाषा को प्रधानता दी, और उसमें हर काल में सुन्दर रचनायें की। ज्ञानसार के बारे में बहुत कुछ आगे लिखा गया है, और स्वयं उनकी कृतियों से भी बहुत-सी बातें मालूम हो सकती हैं, इसलिये उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं। लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि वह उस समय हुए, जब कि अंग्रेज अपने पैरोंको भारत में मजबूत कर रहे थे। पलासी के निर्णायक-युद्ध में अंग्रेजोंने जब अपने शासनको दृढ़ किया, उस समय ज्ञानसार (या नारायण जैसा कि पहले उन्हें कहा जाता था) तेरह वर्ष के

हो चुके थे। उनके गुरुओंने जिस भारतको देखा था, ज्ञानसार के सामने वह दूसरे ही रूप में आया। म्लेच्छ मुसलमानों का शासन खतम हो रहा था और महाम्लेच्छ अंग्रेज अब उनकी जगह ले रहे थे। ज्ञानसार यद्यपि राजस्थान में पैदा हुये थे। १८ वीं सदी में यात्रा सुविधा की नहीं होती थी, किन्तु उनको साधुदीक्षा लेने के बाद यात्रा करने का काफी मौका मिला। वह हिन्दी भाषी क्षेत्र से बाहर गुजरात-काठियावाड़ अनेक बार गये, इसमें कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि दोनों पड़ोसी प्रदेशों राजस्थान और गुजरात की सीमा निर्धारित करना बहुत समय तक कठिन रहा। आज भी इसी अनिश्चयका परिणाम हुआ राजस्थान के आबूको जबरदस्ती काटकर गुजरात में मिला लिया जाना। मुनि ज्ञानसार पूर्व में बंगाल तक गये। उस समय यात्राओं के सुन्दर वर्णन की कोई कदर नहीं थी, जिसके कारण ही सैकड़ों अद्भुत साहसी यात्रियों और घुमक्कड़ोंको पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त करने पर भी हमारा देश यात्रा-साहित्य से वंचित रह गया। उनके वर्णन से मालूम होगा, कि देश-विदेश के भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजों और स्वरूपोंके देखनेके लिये उनके पास कितनी पैनी बुद्धि थी। पूर्व देश इन्हें पसन्द नहीं आया, यह तो उनके इस वचन से ही मालूम होता है—

पूरब मति जाज्यो, पच्छिम जाज्यो, दक्षिण-उत्तर हो भाइ।"

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर जानेमें उनको आपत्ति नहीं थी, फिर भी पूर्व के ऊपर ही इतना रोष क्यों? यदि पूर्व (बंगाल) में मछली-मांस खानेका बहुत रिवाज था, तो पश्चिम (पंजाब) में क्या भक्ष्याभक्ष्य की कमी थी? चाहे मुनि ज्ञानसार की

धारणा पूर्ववालों (बंगालियों) के प्रति सहानुभूतिपूर्ण न हो किन्तु उन्होंने वहांकी वेष-भूषा और कितने ही रीति-रिवाजोंका सुन्दर वर्णन किया है, जैसे :—

कडि[1] वेणी लटकें कपड़े फटकें, पाणी झटकें केसां सूं
क्या छोटी मोटी, क्या अधरोटी केस न बांधे लोगाई ॥ पूरब०॥८॥
सिर चरच सिन्दूरे, मांगन पूरें ताजू चूर सब अंगे।
कडि धौती वन्धें, आधी खन्धें कुच न ढंके सिर नँगे॥
कर में सँख-चूरी, खांचन पूरी, सोइ अधूरी बलि काई॥ पूरब०॥६॥
जनपद पल[2]-मच्छी, मारै सच्छी, क्या मौटा[3] अरु क्या छोटा।
क्या कोई धीवर, क्या फुनि धिजवर[4], खानै पीनै सब खोटा॥
क्या नइया दरजी, उनके मुरजी, क्या धोवी अरु क्या नाई॥ पू०
जौ ब्रह्म विचारैं, वैन उचारैं, अध्यातम रूपी दीसै।
जल कंठै जाइ, न्हाई धोई, जप करतां जलचर दीसैं॥
कर धर जपमाला, मच्छी चाला, पकड़ी थेलै पधराई॥ पू० ॥१४॥
वेदध्वनि करता, मारग चलता, इक हाथे मच्छी लावै।
विण न्हायो भींटं, टेढी मीटै, देखी पाछौ फिर जावै॥
गंगा जल नाही, फिरभींटाई, फिर आवै अरु फिर जाई॥पूरब०॥१५॥
ज्ञानसार-ग्रंथावलि (पृष्ठ ४३५-३७)

नाहटाजी ने जैनों के यहां पड़ी हुई हमारी साहित्यिक और ऐतिहासिक निधियोंको प्रकाशमें लाने का जो प्रयत्न किया है वह बड़ा ही स्तुत्य है, लेकिन उनका संग्रह और विशाल है, जिसको प्रकाश में लाना उतना आसान नहीं है, साथ ही ऐसे संग्रह का

---

१ कटि २ मांस ३ बड़ी जाति वाला ४ द्विजवर

अप्रकाशित रह जाना भी अच्छा नहीं है। मैंने इन्हें कहा था, कि टाइपराइटर और साइक्लोस्टाइल के सहारे हर एक महत्वपूर्ण सामग्री की सौ-सौ प्रतियां निकलवाकर यदि देश-विदेश के जिज्ञासु विद्वानों और विद्यापीठोंके पास भेज दें, तो बड़ा काम हो। हमारे विश्वविद्यालयों के अध्यापकों और संचालकों का भी कुछ कर्तव्य है। डाक्टरेट के लिये एक ही विषय को घुमा-फिराकर निबंधका विषय बनाया जा रहा है। विद्यार्थी और पथप्रदर्शक दोनों चाहते हैं कि "हल्दी लगे न फिटकिरी, रंग चोखा आवे।" अनुसंधान करनेके लिये वह कष्ट उठानेको तैयार नहीं। यदि प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध जैन भण्डारोंको सामग्री के अनुसंधान करने की प्रेरणा दी जाय, तो सुगमता से बहुत से अनर्घ रत्नोंका पता और मूल्यांकन हो जाय। यह स्मरण रखना चाहिये, कि पाटन और जैसलमेर के भण्डारों में प्राचीन दुर्लभ बहुमूल्य ग्रंथ तो हैं ही, किन्तु हमारी वर्तमान भाषाओंके सम्बन्धकी कितनी ही बहुमूल्य सामग्री आगरा, कालपी, लखनऊ जैसे नगरों के साधारण से समझे जानेवाले जैन-पुस्तकागारों में भी हैं। यदि उत्तर-प्रदेश के चार भाषा विभागों अवधी, बुन्देली, ब्रज और कौरवी के क्षेत्रोंके जैन पुस्तकागारों के सविवरण सूचिपत्र तथा उनपर विश्लेषणात्मक निबन्ध लिखने के लिये डाक्टरेट की इच्छा रखने वाले चार तरुणों को लगा दिया जाय, तो इससे बहुत लाभ होगा।

मसूरी २९-८-५२ राहुल सांकृत्यायन

किञ्चित् वक्तव्य

श्रीमद्ज्ञानसारजी के साहित्यसे हमारा सम्बन्ध विद्यार्थीकाल से है। लगभग ३० वर्ष पूर्व हमारी धर्मनिष्ठा पूजनीया मातुश्री ने श्रीमद् की आत्मनिन्दा संज्ञक रचना सुनने की इच्छा प्रकट की। अतः हमने उनको सुनाने की सुविधा के लिए प्रकाशित पुस्तक में से उसकी एक कापीमें नकल की थी। वह कापी आज भी हमारे पास विद्यमान है।

सं० १९८४ की वसन्तपंचमी को जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी बीकानेर पधारे और हमारी कोटड़ी में उनका चातुर्मास हुआ उनके सम्पर्क से जैनतत्वज्ञान और साहित्य की ओर हमारी अभिरुचि विकसित हुई। समय समय पर सूरिजी से श्रीमद् ज्ञानसारजी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती रहती थी। एक बार आपने अपने ज्ञानभंडार में श्रीमद् के मालापिंगल की प्रति के सम्बन्ध में पोथी संख्या और पत्राङ्कों की संख्या सूचित करने के साथ साथ अंतिम पत्र के कुछ कटे हुए होने का भी निर्देशकर अपनी ३० वर्ष पूर्व की स्मृति की झांकी दी। मालापिंगल नाम बड़ा आकर्षक था, हमने आपकी सूचनानुसार उक्त पोथी खोल कर प्रति देखी। सूरिजी ने उसके बाद श्रीमद् के गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन की वह कड़ी भी हमें सुनाई थी जिससे उनके ९८ वर्ष की उम्र तक विद्यमान रहने की सूचना मिली थी।

तदनंतर साहित्य शोध के लिए स्थानीय ज्ञानभंडारोंका निरीक्षण करते हुए श्रीमद् की अन्य कृतियां भी अवलोकन में

आयी। इससे हमारा आपकी रचनाओं के प्रति आकर्षण बढ़ा और प्राप्त समस्त कृतियों की प्रेसकापी की जाने लगी। श्रीजिन कृपाचन्द्रसूरिजी के पूर्वजों से श्रीमद् ज्ञानसारजी का आत्मीय सा सम्बन्ध था अतः उनके ज्ञानभंडार में हमें श्रीमद् की प्रायः समस्त रचनाओं की सुन्दर प्रतियें प्राप्त हुईं।

साहित्यान्वेषण के साथ-साथ हमारा लक्ष्य कूड़े कचरे में डाले जाने वाले प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधि के संग्रह की ओर भी गया। बड़े उपाश्रय के वाड़े में फेंके हुए हस्त-लिखित प्रतियों के अस्त-व्यस्त पत्रों को टोकरी व बोरों में भर कर खरीद किये गये। उनकी छंटाई करने पर श्रीमद् के अनेक ग्रंथों की स्वलिखित पांडुलिपियें-प्राथमिक खरड़े, श्रीमद् को दिये महाराजाओंके खासरुक्के, श्रीपूज्यों के आदेशपत्र व प्रशंसात्मक फुटकर विकीर्ण पत्रादि विपुल सामग्री की उपलब्धि हुई। इसी कचरे में से श्रीमद् के जीवनचरित्र के दोहे वाले दो लघु पत्र भी हमें प्राप्त हुए जिनमें से एक तो करीब २॥ इंच लम्बा और १॥ इंच चौड़ा ही था। बहुत खोज करने पर और बड़ी-बड़ी पुस्तकों में भी जिस वस्तु की प्राप्ति सम्भव न हो, कभी कभी वह ऐसे कूड़े कर्कट में डाले हुए छोटे से पुर्जे में मिल जाती है। साधारणतया ऐसे पत्रों को महत्व नहीं दिया जाता। पर न मालूम कितने ही हजारों लाखों पत्र जिनसे ऐतिहासिक सामग्री की अनमोल सूचनाएँ मिलती हैं, हमारी अज्ञानता व असावधानता के कारण नष्ट हो चुके हैं।

संयोग की बात, २२ वर्ष पूर्व जिन प्रतियों की प्रेसकापियां तैयार की गयी थीं वे इतने लंबे काल तक अप्रकाशित अवस्था

में ही पड़ी रहीं। इसी बीच श्रीमद् का साहित्य प्रकाशनार्थ कलकत्ते लाया गया पर तब तक काल परिपाक नहीं हुआ था। हम उसे गद्दी में छोड़कर बीकानेर चले गये और पीछे से मूषकों ने उसे अपना भक्ष्य बनाना प्रारंभ कर दिया। हमने वापस आ कर देखा तो उसके बहुत से पृष्ठ तो कातर कातर हो गये थे, कुछ रचनाएँ किनारे से भक्षित अवस्था में मिलीं। हमें अपनी असावधानी और गणेशवाहन की करतूत पर अत्यन्त खेद हुआ। इस घटना को भी लगभग १७ वर्ष बीत गये, प्रकाशनकी व्यवस्था न हो सकी। पर अपने 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में श्रीमद् के जीवन सम्बन्धी दोहे, श्रीमद् के हाथ से लिखे हुए एक स्तवन और आप के चित्र का ब्लाक बनवाकर प्रकाशित कर दिया था।

अपने साहित्यिक शोध के प्रारंभकालसें कविवर समयसुन्दर संबन्धी कतिपय बातों के उत्तर प्राप्त करने के शिलशिले में जैन साहित्य महारथी स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई से हमारा सम्बन्ध स्थापित हुआ और वह क्रमशः दृढतर होता गया। हमारे द्वारा बीकानेर के ज्ञानभंडारों की विपुल साहित्य और हमारे संग्रह की अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की सूचना पाकर श्रीयुत देसाई बीकानेर पधारने के लिए उत्कंठित हो उठे। लंबी बाटाघाट के पश्चात् लगभग १२ वर्ष पूर्व उनका बीकानेर पधारना हुआ तो उन्होंने अपने प्राप्त श्रीमद् ज्ञानसारजी के पदोंकी एक सुन्दर प्रति की सूचना दी तो हमने अपने नकल किये हुए पद संग्रहकी प्रेसकापी उन्हें दिखलायी। आप श्रीमद्के पदोंकी मार्मिकतासे पहले से ही प्रभावित थे और सम्भवतः प्राप्त प्रति की प्रेसकापी भी वे कर चुके थे अतः हमारी प्रेसकापी भी वे जाते समय साथ ले गये

और श्रीमद् के समस्त पदों का सम्पादन कर दिया। अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मंडल की ओर से इसके प्रकाशन की बात भी चली। हमारे मित्र श्री० मणिलाल मोहनलाल पादराकर प्रेस में देने के लिए उनसे प्रेसकापी भी ले गये पर संयोगवश वह प्रकाशित न हो सकी। देसाई जी का सम्पादित श्रीमद् के पद संग्रह का संस्करण अवश्य ही महत्वपूर्ण होता पर खेद है कि उनके स्वर्गवास के अनंतर उनका संग्रह बहुत अस्तव्यस्त हो गया अतः बम्बई जाकर बचे हुए संग्रह का अवलोकन करने पर भी वह प्रेसकापी न प्राप्त हो सकी, संभवतः रद्दी कागजों में वह नष्ट हो गई होगी। जिस संग्रह के लिए स्वर्गीय देसाई ने अपना जीवन लगा दिया था और रात को १२ और दो-दो बजे तक कठिन परिश्रम कर सैकड़ों नोट्स एवं प्रेसकापियें तैयार की थी उनकी ऐसी दुरवस्था देखकर हृदय को बड़ा ही परिताप होता है। योग्य उत्तराधिकारी के अभाव में साहित्यिक विद्वानों के किए हुए परिश्रम यों ही बेकार हो जाते हैं।

लगभग ५-६ वर्ष पूर्व पूज्य श्रीभद्रमुनिजी महाराजने अध्यात्मिक साधना की ओर उत्तरोत्तर बढते हुए श्रीमद् की रचनाओं को अवलोकनार्थ हम से मंगवाया और उनका स्वाध्यायकर उन्हें प्रकाशन की विशेष रूप से सूचना करते हुए आर्थिक सहायता का प्रबंध भी कर दिया। तदनुसार तीन वर्ष पूर्व यह ग्रंथ प्रेस में दे दिया पर प्रेस की असुविधादि के कारण यह ग्रंथ इतने लम्बे अरसे से प्रकाशित हो रहा है। पूज्य भद्रमुनिजी ने इसमें रही हुई अशुद्धियां और प्रकाशन विलंब के लिए हमें मीठे उपालंभ भी दिये पर हम निरुपाय थे। पहले ग्रंथ छोटे रूप में

ही प्रकाशन का विचार था अतः प्रथम द्रव्य सहाय की स्वीकृति देने वाले सज्जन ने ८००) से अधिक देने की अनिच्छा जाहिर की तब पूज्यश्री ने गण्टूर निवासी सा० सेरामचन्द नेमचन्द को सूचित कर पूरे ग्रंथ की सहायता के लिए भी तैयार कर दिया। इधर हमारा भी लोभ बढ़ता रहा और ग्रंथ काफी बड़ा होता गया। फिर भी श्रीमद् की रचनाओं का यह एक ही भाग है और इसमें मुख्यतः अध्यात्मिक रचनाओं ही संग्रह किया गया है। श्रीमद् की जैन तत्त्वज्ञान और छंदादि इतर विषयक अन्य रचनाओं का लगभग इतना ही संग्रह अभी हमारे पास और पड़ा है। उन अप्रकाशित रचनाओं में श्रीमद् की साहित्यिक प्रतिभा की झांकी अधिक रूप से सन्निहित है।

हमारा विचार जीवनचरित्र के साथ श्रीमद् को दिये हुए खास (राजाओंके स्वयं लिखित) रुक्कोंकी पूरी नकलें देनेका भी था पर जीवनी बहुत लम्बी हो जाने से उस विचार को स्थगित रखना पड़ा। श्रीमद्की अध्यात्मिक रचनाओं में योगिराज आनंदघनजी की चौबीसी पर बालावबोध, बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसे प्रकाशित करना भी नितान्त आवश्यक है पर स्वतंत्र पुस्तक जितना बड़ा होने के कारण इस संग्रहमें सम्मिलित नहीं किया जा सका। हर्षका विषय है कि उसका विशेष रूप से उपयोग करतेहुए हमारे मित्र जयपुर के जौहरी श्री उमरावचन्द-जी जरगड़ ने आनंदघनजी की चौबीसी पर आधुनिक ढंग का विवेचन लिखा है, जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

हमें खेद है कि ग्रंथ में बहुतसी अशुद्धियां रह गयीं, पूज्य श्रीभद्रमुनिजी (आजकल-सहजानन्दजी)महाराजने उनका शुद्धिपत्र

भेजनेकी कृपा की जिसके लिए हम पूज्यश्रीके अत्यन्त आभारी हैं। इस ग्रंथके प्रकाशनका सारा श्रेय भी इन्हीं पूज्यश्री को है। अतः यह उन्हीं के चरणों में समर्पित है। आप अभी बहुत ही उत्कृष्ट साधना में लीन हैं, गुरुदेव उन्हें पूर्ण सफलता दें यही हमारी मनोकामना है। हमारी इच्छा थी कि पूज्यश्री इस ग्रंथ में दो चार शब्द लिखते पर आपने किसी भी प्रकार से प्रसिद्धि में आना स्वीकार नहीं किया। हमने आपकी इच्छा के विपरीत अपनी हार्दिक भक्ति वश आपश्री का फोटो देने की धृष्टता की है अतः हम इसके लिए क्षमाप्रार्थी हैं।

विश्वविश्रुत महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन ने अपनी अनेक साहित्य प्रवृत्तियों में व्यस्त रहने पर भी प्रस्तुत ग्रंथ की प्रस्तावना प्रेमपूर्वक लिख भेजनेकी कृपा की इसके लिए हम आपके अनुग्रहित हैं। स्वर्गीय आचार्य श्रीहरिसागरसूरिजी महाराजने अपने संग्रहस्थ गुटके से श्रीमद् के फुटकर पदों की दो-दो बार नकल करा के भेजी एतदर्थ उनका आभार स्मरणीय है।

कलकत्ता
वैशाख कृष्ण ७
सं० २०१०

अगरचन्द नाहटा
भंवरलाल नाहटा।

अनुक्रमणिका

१ चौवीसी

३ बहुत्तरी पद संग्रह

आदिपद		पृष्ठ संख्या

७ दादा गुरु स्तवन

अभय जैन ग्रन्थमाला के प्रकाशन

१—अभयरत्नसार	अलभ्य
२— पू० ”	”
३—सती मृगावती	”
४—विधवा कर्त्तव्य	”
५—स्नात्र पूजादि सँग्रह	”
६—जिनराज भक्ति आदर्श	”
७—संघपति सोमजी साह	”
८—युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि	”
९—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह	३॥)
१०—दादा श्रीजिनकुशलसूरि	॥)
११—मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरि	।)
१२—युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि	१)
१३—ज्ञानसार ग्रन्थावली	३॥)
१४—बीकानेर जैन लेख संग्रह	छप रहा है

प्राप्ति स्थान—

नाहटा ब्रदर्स

४, जगमोहन मल्लिक लेन

कलकत्ता—७

श्रीमद् ज्ञानसारजी, वाचक जयकीर्त्ति एवं सांवलजीके साथ
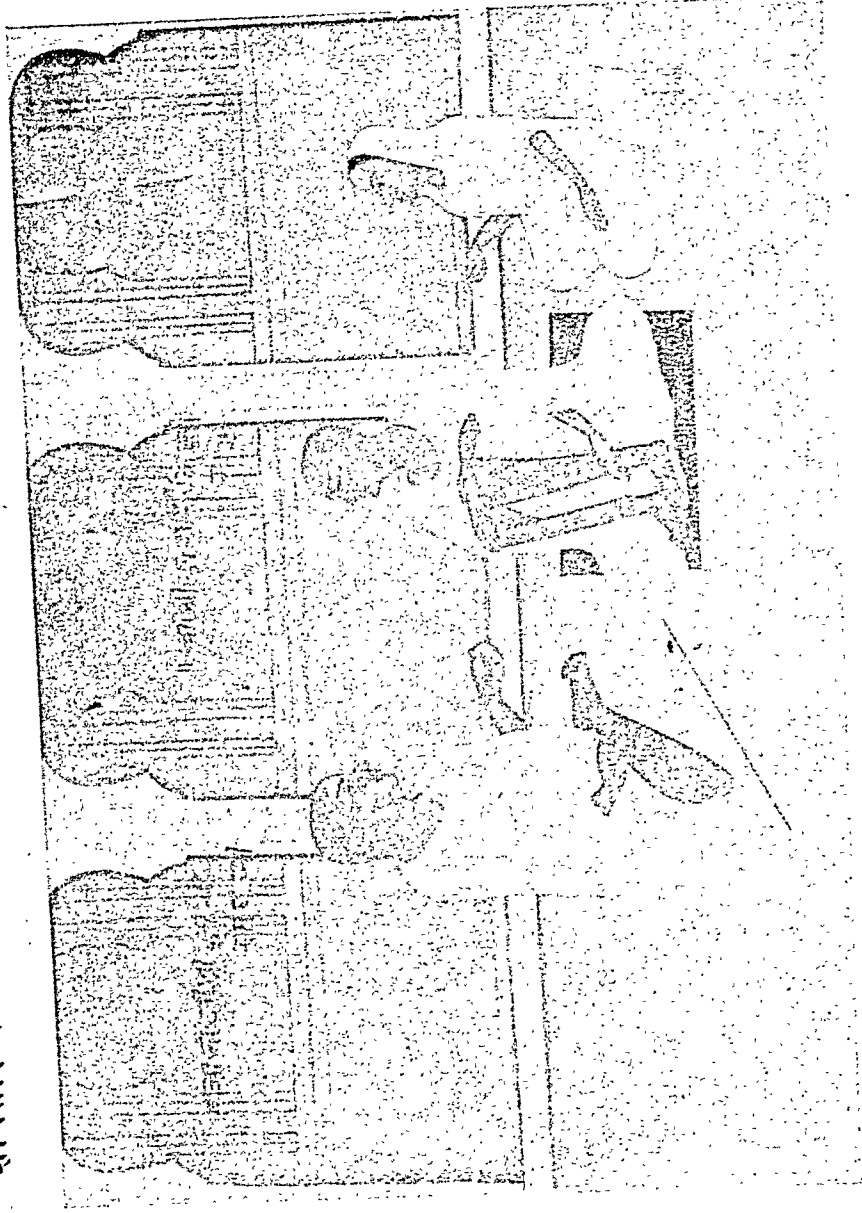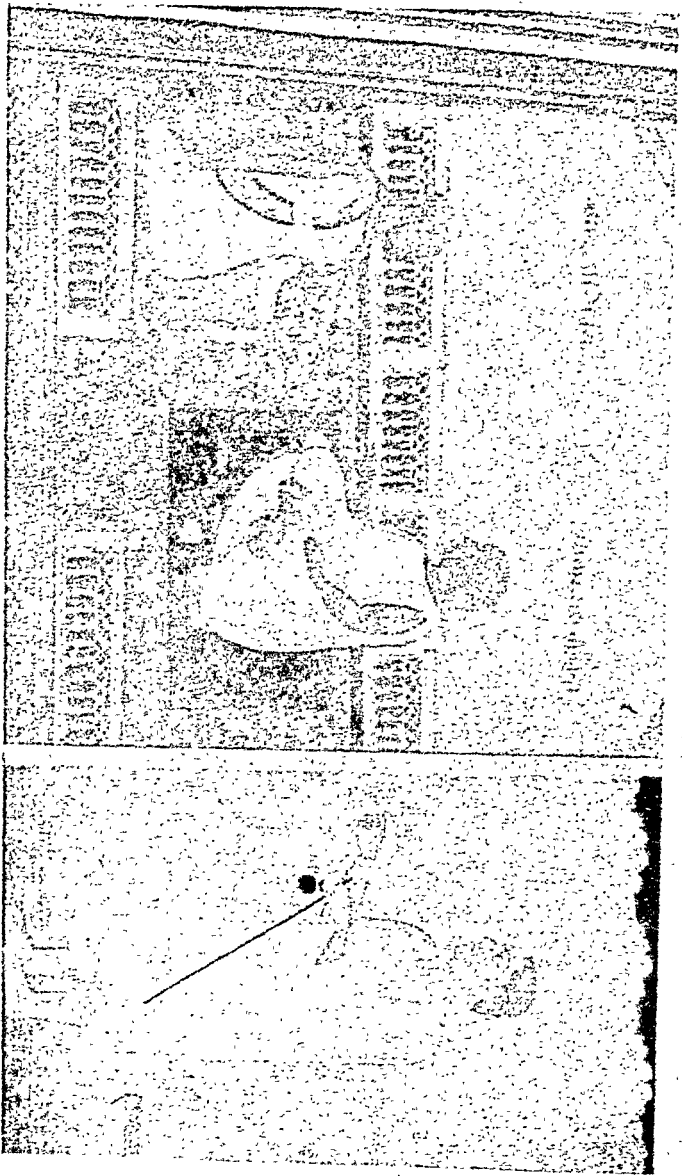
श्रीमद् ज्ञानसारजी, अमीचन्दजी सेठिया,

श्रीमद् ज्ञानसारजी

योगिराज श्रीमद् ज्ञानसारजी

सन्त पुरुष मानव समाज के पथ प्रदर्शक होते हैं। विश्व के प्राणियों को उनकी अनुपम देन प्राप्त होती रहती है। उनका साधनामय जीवन मानव-समाज के जीवन निर्माण व उत्थान के लिए आदर्श दीपस्तंभरूप होता है। उनके दर्शन मात्र से भव्य जीवों के हृदय में अपार श्रद्धा उत्पन्न होती है। उनकी प्रशान्त मुद्रा से व्यथित हृदय में भी शान्ति का अनुभव होता है। मानव ही नहीं उनकी करुणा व कृपा का श्रोत तो पशु-पक्षी आदि अबोध प्राणियों पर भी एकसा प्रवाहित होता है, तभी तो योगी के लिये भगवान् पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में कहा है कि "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः"। उनके विश्वप्रेम की अनुपम भावना से प्रभावित होकर सिंह और बकरी भी अपने जातिगत वैरभाव को त्याग कर एक घाट पानी पीते हैं। दुष्ट से दुष्ट प्राणी भी उनके प्रभाव से शिष्ट बन जाते हैं। सन्तों का पवित्र जीवन स्वयं कल्याणमय होने के साथ साथ दूसरों के लिए भी कल्याणकारी होता है। उनकी वाणी में जादू का सा असर होता है, जिसके श्रवण और स्वाध्याय से जिज्ञासुओं के हृदय में अपूर्व आनन्द का उद्भव होता है। और

वस्तुस्वरूप का भान होकर अकरणीय कार्यों को त्याग एवं आत्मोत्कर्ष-पथगामी होने की अनुपम प्रेरणा मिलती है। संतों के सत्संग का बड़ा भारी माहात्म्य है। महाकवि तुलसीदासजी के शब्दों में:—

"एक घड़ी आधी घड़ी, आधी में पुनि आध।
तुलसी सङ्गत साधु की, कटै कोटि अपराध॥"

सन्तों का क्षणमात्र का समागम एक भव का नहीं, अनेकों भवों के पापों का नाश कर देता है।

चिर अभ्यास के कारण मन सर्वदा वाह्य पदार्थों एवं इन्द्रियों के विषयों को ही प्रिय एवं सुखदाता समझकर उन्हीं में फंसा रह आध्यात्मिक साधना के पथ पर अग्रसर नहीं होता। शमरस के आनन्द का अनुभव न होने के कारण ही स्थायीसुख न मिलने पर भी मन पर पौद्गलिक विषयों की ओर धावित रहता है।

वहिर्दृष्टि विद्वानों के मतानुसार भलेही क्षणिक सुखमय शृङ्गार रस सर्वश्रेष्ठ हो, परन्तु वस्तुतः शान्तरस का अनुपम आनन्द अनिर्वचनीय है। शृंगाररस उसकी कोटि में नगण्यसा ही है। जिसने शम की अनुभूति प्राप्त की है, वही उस अनिर्वचनीय आनंद को समझ सकता है।

सन्त पुरुषों ने अपनी साधना द्वारा जो अध्यात्मशांति रूप अमृत खोज निकाला, वह सचमुच अनुपम था। अध्यात्म प्रेमी विरल व्यक्तियों ने ही उनके प्रसाद से उस अमृतरस का यत्किञ्चित् आस्वादन प्राप्त किया है।

सन्तों की वाणी, अनुभव प्रधान होने से, बहुत ही उद्‌बोधक और हृदयस्पर्शी होती है। वह मोहनिद्रा में भान भूले व्यक्तियों में

नवचेतना लाती है। ज्यों ज्यों उस वाणी का अवगाहन किया जाता है वह जिज्ञासु को आनंद विभोर कर देती है अध्येता परमानंद रसमें सराबोर हो जाता है। सन्त का भौतिक देह तो प्रकृति धर्मानुसार समय आने पर विलीन हो जाता है, पर उनका अक्षर देह युग युगान्तरों तक जीवन सन्देश देता रहता है, जिससे आध्यात्मिक जीवन-स्तर ऊंचा उठता रहता है। सन्त और सन्तवाणी के सदृश मानव के लिए उत्तम कल्याणपथ अन्य नहीं है। अतः इसे हृदयंगम करते हुए जब कभी व जहाँ कहीं भी सन्त का संयोग मिले उससे लाभ उठाना चाहिये एवं सन्तवाणी का तो नित्य व निरंतर स्वाध्याय कर आत्मिक आनन्द को प्राप्त करना चाहिये।

वैसे तो विश्व के प्रत्येक देश व प्रान्तमें सन्तों का प्रादुर्भाव होता है, फिर भी भारतवर्ष आध्यात्मप्रधान देश होने से यहाँ सन्तों का आविर्भाव प्रचुर मात्रा में हुआ है। इसके एक छोर से दूसरे छोर तक आज भी सन्त महात्मा उपलब्ध होते हैं। ऐसी अवस्था में भारत संतों की लीलाभूमि है—कह दें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। ये सन्त किसी देश जाति या सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं किन्तु वे सार्वजनिक निधिरूप हैं।

भारत में प्राचीनकाल से सन्तों की कई अखण्ड परम्पराएं चली आती हैं। उनमें साधना प्रणाली प्रत्येक की पृथक पृथक दृग्गोचर होती हैं पर साध्य सबका एक ही प्रतीत होता है। प्रारम्भमें विचारभेद और क्रियाभेद अवश्य दृष्टिगोचर होता है, पर आगे चलकर वह नष्ट हो जाता है और मुख्य ध्येयका एकीकरण हो जाता है। इसलिये तो कहा गया है कि:—"एको सद्विप्रा वहुधा वदन्ति"।

भारतीय सन्त परम्परा का इतिहास बहुत विस्तृत है। इनमें प्रधानतया दो परम्पराएं हैं एक वैदिक परंपरा और दूसरी श्रमण परंपरा। वैदिक परंपरा में अन्य सम्पूर्ण सन्त परंपराओं का समावेश हो जाता है और श्रमण परंपरा में जैन एवं बौद्ध परंपराओं का। इन परंपराओं में समय समय पर अनेकों नष्ट हो गई और कई नवीन परंपराओं का प्रादुर्भाव भी होता रहा है।

अपभ्रंश काल में सन्त साहित्य की प्रधानतया दो धाराएं नजर आती हैं, (१) सिद्धों और नाथपंथियों की, एवं (२) जैनों की। फिर भक्तिकाल में भक्तिवाद ने जोर पकड़ा, और तीसरी भक्तिमार्गी सन्त परम्परा कायम हुई। यह भक्तिधारा अल्प समय में ही अत्यधिक विस्तृत हो गई। भक्ति अध्यात्म की सहचारिणी है, साथही भक्ति का आध्यात्म पर प्रभाव भी लक्षित होता है। ये दोनों अध्यात्म और भक्ति धाराएँ अत्यधिक निकटवर्ती होने से इनका सामञ्जस्य—एकीकरण हो ही जाता है।

हिन्दी साहित्य के उन्नयन और भाषा के विकास का बहुत बड़ा श्रेय इन सन्तों को ही प्राप्त है। सन्तों की वाणी राष्ट्र के इस छोर से उस छोर तक प्रचारित होने के कारण ही हिन्दी प्रान्तीयता से ऊपर उठकर साहित्य की परिमार्जित भाषा बनती हुई राष्ट्र भाषा पद पर आसीन हो सकी है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि हिन्दी साहित्य के विकास में जैन सन्तों का भी महत्त्वपूर्ण भाग रहा है। दोहापाहुड, परमात्मप्रकाशादि ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य में जैन संत साहित्य की परंपरा प्रारंभ होती है। १७ वीं शताब्दि से अब तक की हिन्दी जैन

साहित्य का लेखा लगाया जाय तो वह एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का रूप धारण कर लेगा।

कबीर आदि संतों के पदों का तथा तत्कालीन वातावरण का प्रभाव जैन सन्तों पर अत्यधिक लक्षित होता है। जिन जैनों कवियों की मातृभाषा गुजराती व राजस्थानी थी, तथा जिन्होंने अपनी अनेकों रचनाएं अपनी मातृभाषा में कीं उन सन्तों ने भी पद साहित्य के लिए हिन्दी भाषा को ही चुना और उसी में रचनाएं की, फलतः जैन कवियों के हजारों की संख्या में भक्ति एवं आध्यात्मिक पद हिन्दी भाषा में उपलब्ध हैं। ये पद बहुत ही उद्बोधक और हृत्तलस्पर्शी है कलापक्ष एवं भावपक्ष उभय दृष्टि से बहुमूल्य हैं। कई कवियों के पद संग्रह तो प्रकाशित भी हो चुके हैं। बनारसीदास, रूपचन्द, द्यानत, भूधर आदि दि० एवं श्वे० समय सुन्दर, जिनराजसूरि, आनंदघन, यशोविजय, विनयविजय, धर्मवर्द्धन, ज्ञानसार, ज्ञानानन्द चिदानन्द आदि पचासों जैन कवियोंके गेय पद हिन्दी भाषामें प्राप्त हैं। पर खेद है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास एवं गीतिकाव्य सम्बंधी बड़े बड़े लेखों व ग्रन्थों में इन जैन संतों का कहीं भी नाम निर्देश तक प्राप्त नहीं होता। अतः विद्वत्समाज से अनुरोध है कि वह इन सन्त कवियों के साहित्य का अध्ययन कर हिन्दी साहित्य के इतिहास व गीतिकाव्य सम्बन्धी ग्रन्थों में उचित स्थान अवश्य दें। अन्यथा इतिहास सर्वाङ्गीण न हो सकेगा।

हिन्दी सन्त साहित्य का विहंगावलोकन करने पर ज्ञात होता है कि सुन्दरदासादि थोड़े से सन्तों को छोड़कर अधिकांश सन्त साधारण पढ़े लिखे ही थे, फलतः उनके साहित्य में, साधनामय जीवन के

कारण भावों की अभिव्यक्ति तो सुन्दर ढंग से हुई है, पर काव्य कला की दृष्टि से वह उच्चकोटि का नहीं मालूम देता। इधर जैन सन्त, साधनाशील होने के साथ साथ उच्चकोटि के विद्वान भी थे, अतः कविता की दृष्टि से भी उनकी रचनायें निम्नस्तर की नहीं हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ में ऐसे ही एक अध्यात्ममस्त योगी जैनकवि के रचनाओं के संग्रह का प्रथम भाग प्रकाशित किया जा रहा है जो उच्चकोटि के योगी व सन्त होने के साथ काव्यमर्मज्ञ विद्वान भी थे, आगे के पृष्ठ उन्हीं की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत करेंगे।

जन्म राजस्थानवर्ती प्राचीन जांगल देश की राजधानी जांगलू[1] वीकानेर राज्य का एक अतिप्राचीन स्थान है। यहां से पांच मील की दूरी पर स्थित जेगलेवास में उन दिनों जैनों की अच्छी वस्ती थी। अब तो लोग वहांसे उठकर देशनोक आदि स्थानोंमें जाकर वस गये हैं। ओसवाल जाति के साँड गोत्रीय श्रेष्ठी उदयचन्द जी वहां

---

१ जांगलू में एक जैन मन्दिर तथा संत जांभाजी का प्राचीन स्थान है। संवत् ११८१ का एक अभिलेख कूएं पर तथा शिवालय के सामने है। वीकानेर के श्री वासुपूज्य जिनालय तथा चिंतामणि जी के मन्दिर में विराजमान प्रतिमाद्वय के परिकरोत्कीर्णित अभिलेखों से मालूम होता है कि वहां भगवान महावीर का विधिचैत्य था और उस जिनालय में सं० ११७६ मार्गशीर्ष शुक्ला ६ के दिन ताढक श्रावक के सुपुत्र तिल्हक ने शान्तिनाथ विम्व की स्थापना की थी। दूसरा लेख इसी मिती का अजयपुर से सम्बन्धित है। यह अजयपुर भी जांगलू का ही उपनगर था। जांगलू स्थित शिवालय के सामने वाले लेख में भी अजयपुर नाम पाया जाता है।

निवास करते थे, जिनकी धर्मपत्नी का नाम जीवणदेवी था। सं० १८०१ में आपको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, जिनका नाम नाराण, नराण या नारायण रखा गया जो आगे चलकर नराणजी बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए[२]। ज्ञानसार इन्हीका दीक्षा नाम था।

शिक्षा संवत् १८१२ में मारवाड़ में भयंकर दुष्काल पड़ा था। जिसका वर्णन "वांडो काल बारोतरो" के नाम से प्राचीन साहित्य में मिलता है। ग्राम्यजीवन सुकाल में ही सुखमय होता है, दुष्काल में नहीं; अतः माता-पिता की विद्यमानता या अविद्यमानता[३] में आप ग्रामका परित्याग करके साधन-सुलभ बीकानेर नगर में आये और सर्वप्रथम बड़े उपाश्रय में विराजमान श्रीजिनलाभसूरिजी[४] महाराजकी चरण-सेवा में उपस्थित हुए। सूरिजी महाराज ने आपकी भव्याकृति तथा विचक्षण बुद्धि देखकर श्रावक-बालक होने के नाते विद्याध्ययन के लिए विशेष प्रेरणा की और व्यवस्था का सारा भार स्वीकार कर अपने तत्त्वावधान में रख लिया।

---

२ देखिये हमारे 'ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह' में प्रकाशित "ज्ञानसार अवदात दोहे"।

३ प्रमाणाभाव से निश्चित नहीं कहा जा सकता।

४ बीकानेर राज्य के बापेउ गांव में बोथरा पञ्चायनदास की धर्मपत्नी पद्मादेवी की कुक्षी से सं० १७८४ श्रा० सु० ५ के दिन आपका जन्म हुआ। जन्म नाम लालचन्द्र था। सं० १७९६ ज्येष्ठ सुदि ६ जैसलमेर में श्रीजिनभक्तिसूरिजीसे दीक्षित हो लक्ष्मीलाभ नाम पाया। सं० १८०४ ज्येष्ठ शुक्ला ५ के दिन श्रीजिनभक्तिसूरिजी ने मांडवीबंदरमें आपको आचार्य पद पर स्थापित किया। आपने बहुतसे जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठायें कीं तथा अनेक देशोंमें विहार किया था। सं० १८१९ ज्येष्ठ बदि ५ को ७५ यतियों सहित श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ यात्रा, सं०

दीक्षा श्रीजिनलाभसूरिजी के पास आपका विद्याध्ययन निर्विघ्न होने लगा। सं १८१५ में सूरिजी ने बीकानेर से विहार कर दिया, नराणजी भी साथ ही थे। गारबदेसर में चातुर्मास बिताकर मि० व० ३ को विहार कर समस्त थली प्रान्त में विचरते हुए आचार्य-श्री जैसलमेर पधारे। जैसलमेर उन दिनों समृद्धिशाली और जैनों की बहुत बड़ी बस्तीवाला क्षेत्र था। सूरिजीने वहां सं० १८१६-१७-१८-१९ के चार चातुर्मास करके धर्मध्यान का खूब लाभ लिया, श्रीलौद्रवाजी तीर्थ की यात्रा भी कई बार की थी। वहां से विहार कर श्रीगोड़ी पार्श्व-नाथजीकी यात्रा करते हुए सं १८२० का चातुर्मास गुढेमें किया। फिर महेवा प्रदेश को वंदाते हुए श्री नाकोड़ाजी तीर्थ का वन्दन किया। सं० १८२१ का चातुर्मास जलोल हुआ। वहाँ से क्रमशः विहार करते हुए

१८२१ फाल्गुन शुक्ला १ को ८५ यतियोंके साथ आबू तीर्थयात्रा, सं० १८२५ वैसाख शुक्ला १५ को ८८ यतियोंके परिवार सह श्रीकेशरियाजीकी यात्रा, सं० १८३० माघकृष्णा ५ को ७५ यति सह शत्रुंजय यात्रा, वहां से जूनागढ़ आकर १०५ यतियों के साथ गिरनार यात्रा, सं० १८३३ चै० व० २ को श्रीगौड़ीजी की एवं श्री संखेश्वरजी आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी। सं० १८२७ वैसाख शुक्ला १२ को सूरत में १८१ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा की तथा सं० १८२८ में फिर वहीं ८२ बिम्ब प्रतिष्ठित किये। पर-पक्षियों पर विजय प्राप्तकर अनेक देशोंमें विहार करते हुए सं० १८३४ आश्विन कृष्णा १२ को आप गुढ़ा में स्वर्ग सिधारे। आप अच्छे कवि भी थे, आपकी दो चौवीसियां प्रकाशित हैं एवं अनेक स्तवन, स्तुतियां उपलब्ध हैं। आपने संवत् १८३३ में आत्मप्रबोध नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना की थी। परम्परानुसार यह उ० क्षमाकल्याणजी की रचना है, ग्रन्थकी प्रशस्ति में उनका नाम संशोधक के रूप में आता है। प्रस्तुत ग्रन्थ २।३ स्थानों से प्रकाशित हो चुका है।

सूरि महाराज पादरु ग्राम में पधारे। स्मरण रहे कि श्रीजिनलाभ-सूरिजी महाराज पैदल विहारी थे और समयानुसार संयम में प्रवृत्त रहते हुए विचरते थे। हमारे चरितनायक को भी इनके साथ रहते ६ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो चुका था, इसी बीच व्याकरण, काव्य कोष, छंद, अलंकार, आगम, प्रकरणादि का अभ्यास भी उच्चकोटि का कर चुके थे और दीक्षा के योग्य २१ वर्ष की परिपक्क अवस्था प्राप्त थे अतः सूरि महाराजसे निवेदन कर शुभ मुहूर्त्तमें सं० १८२१ के मिती माघ शुक्ला ८ के दिन सिद्धियोग में पादरु गांवमें आपने दीक्षा स्वीकार की। दीक्षा के अनंतर सूरिजी ने आपका गुणनिष्पन्न नाम "ज्ञानसार" रखा और प्रथम अपना शिष्य वनाया पश्चात् अपने शिष्य श्री रत्नराज गणि[1] (रायचंदजी) के शिष्यरूप में इनकी प्रसिद्धि की।

आचार्य श्री के साथ विहार

दीक्षा के पूर्व ६ वर्षों तक आपको आचार्यश्री की निश्रा में रहने का सुयोग मिला था इसी बीच आपने अनेक तीर्थों की यात्रा भी की थी जिनमें सं० १८१६ ज्येष्ठ वदि ५ को श्रीगौड़ी पार्श्वयात्रा उल्लेखनीय है। दीक्षा के अनंतर मिती फाल्गुन शुक्ला १ को आपने सूरिजी के साथ श्री आबू महातीर्थकी यात्रा की। तदनन्तर खेजड़ले, खारिया रहकर रोहीठ, मंडोवर, जोधपुर, तिमरी होकर सं० १८२३ में मेड़ते में चातुर्मास बिताया। चातुर्मास के अनन्तर सूरि महाराज जयपुर पधारे। श्री संघ के हर्ष का पारावार न रहा। धर्म ध्यान का खूब ठाट रहा। जयपुर मानो स्वर्गपुरी ही थी। वहाँ

---

१ आपकी दीक्षा सं० १८१० मिती आषाढ़ वदि १० को बीकानेर में श्री जिनलाभसूरिजी के समीप हुई थी।

घड़ियों की तरह दिन बीते। संघ का अत्याग्रह होने पर भी यशस्वी पूज्यश्री वहाँ न रुककर मेवाड़ पधारे और उदयपुरसे १८ कोश पर स्थित धुलेवा ग्राममें श्रीऋषभदेव—केसरियानाथजी[1] की यात्रा सं० १८२५ वैसाखी पूर्णिमा को ८८ यतियों के परिवार सह हुई। फिर सं १८२५ का चातुर्मास उदयपुर में पाली वालों के पट्ट पर (उपाश्रय में) किया। बीकानेर के संघ को आशा थी कि अब नागौर होते हुए पूज्यश्री अवश्य बीकानेर पधारकर हमारी आशा पूर्ण करेंगे पर सूरि महाराज सीधे साचौर[2] पधारे और सत्यपुर मण्डण श्रीमहावीर स्वामी के दर्शन किये।

सूरत में जिन बिम्ब प्रतिष्ठा सूरत[3] बन्दरमें नव्य जिनालय तथा नव्य जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा कराने के लिये सूरत का संघ लालायित था। जब सूरिमहाराज साचौर थे, सूरत के संघकी विज्ञप्ति आई और सूरि महाराजने अपने शिष्य परिवार के साथ वहां के लिए विहार कर दिया। सं० १८२६ मि० ज्येष्ट वदी ८ शनिवार को जब आप सूरत में विराजमान थे, पादराके माना, हीनाभाई, कहानजी भाई, जीवणदास, झवेरचंद आदि श्रावकोंने आपको जो पत्र दिया था उससे मालूम होता है कि उस

---

१ यह तीर्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर उभय सम्प्रदाय मान्य है। यहां का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये चंदनमलजी नागौरी लिखित "केशरिया तीर्थ का इतिहास देखना चाहिये"।

२ यह जोधपुर राज्य का प्राचीन स्थान है। जिनप्रभसूरि के सत्यपुरीय महावीर कल्पादि में इस तीर्थ के सम्बन्धी ज्ञातव्य मिलता है। तिलकमंजरी के रचयिता महाकवि धनपाल यहाँ आकर रहे थे व सत्यपुरीय महावीर उत्साह की रचना की जिसमें इस तीर्थ का महिमा वर्णित है। देखें जैनसाहित्य संशोधक वर्ष ३।

३ सूरत के जैन इतिहास सम्बन्धी तीन ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं विशेष जानने के लिए उन्हें देखना चाहिये।

समय सूरिजी पं० हीरधर्म, पं० महिमाधर्म, पं० रत्नराज, पं० विवेक कल्याण पं० उदयसार और पं० ज्ञानसार आदि २७ ठाणा से थे। सं० १८२७ वै० सु० १२ को सूरत में १८१ बिम्बों की तथा सं० १८२८ में फिर ८२ जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा सूरिजी के कर कमलों से हुई। इस समय ज्ञानसारजी का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चल रहा था। आपके अक्षर मोती की तरह सुन्दर थे, आपके रचित श्री पार्श्वनाथ स्तवन सूरतमें ही लिखा हुआ है—जिसका चित्र इसी ग्रन्थ में दिया जा रहा है। प्रस्तुत स्तवन भी इस ग्रन्थ के पृ० १२६ मे मुद्रित है। इससे मालूम होता है कि आपने लघु कृतियों का निर्माण तो यौवनावस्था में ही प्रारंभ कर दिया था[1] पर बड़ी बड़ी कृतियां आपने अपनी परिपक्व

---

१ सं० १८२६ के आसपास श्रीजिनलाभसूरिजी के गुण वर्णनात्मक रचे हुए ३ छप्पय छन्द उपलब्ध हैं। जिन्हें यहां दिया जाता है :—

(१) सत मत साहस वंत, साहसीकां सिर टीकौ।
सिर सूरां सिर सेहरो, सील पालण सब नीकौ।
सुमति गुपति सहु धार, सूर गुण सिगला राजै
सेवक कुं सुख दयण, सैल भ्रम मारग साझै।
सोभै सदीव सोभागधर, सौध सकल सुगुण सुथिर।
संसार पारुतारण सदा, सद्गुरु श्री जिनलाभ वर ॥१॥

इति श्रीजिनलाभसूरिराजानां सकार द्वादशाक्षरी गर्भिता स्तुति विहिता विपश्चित् ज्ञानसारेण।

(२) मैंन राज रुपैं इसो, तेज कला तसु चन्द
जैंन राज दीपै जिसो, श्रीजिनलाभ सूरिन्द ॥१॥

बावाजी श्री ज्ञानसारजी कृत छै ॥ सही २ ॥

(३) सवैया तेतीसा :—

भल हलतौ भानु किधुं,शारद कौ चंद किधुं, मुखहूको गाज मानुं अवाज घनराज कौ।
भुजन प्रचण्ड किधुं सुमेर गिरि दण्ड चंड,साहस जिनचंद किधुं सत्त्व मृगराज कौ॥
छाती कौ कपाट किधुं कपाट जंबुद्वीप जू कौ, राजहंस चाल किधुं गमन गच्छराज कौ।
सगुननि कौ आगर यू सागर रत्नागर सौ,सूर कौ प्रताप किधुं प्रताप गच्छराजकौ॥३॥

॥ कृतिरियं पं। प्र। ज्ञानसारगणेः ॥

अवस्था में ही बनाई थी। प्रारम्भ से ही आपकी वृत्ति अन्तर्मुखी थी, अतः आपने आध्यात्मिक ग्रन्थों के अध्ययन की ओर विशेष ध्यान दिया। आनंदघन चौवीसी बालावबोध से मालूम होता है कि आपने सं० १८२६ से ही श्रीमद् आनन्दघनजी के अर्थ गाम्भीर्यवाली आध्यात्मिक व तात्त्विक भावपूर्ण चौवीसी-स्तवनों की अर्थविचारणा प्रारम्भ कर दी थी।

आचार्य श्रीजिनलाभसूरिजीने सं० १८२६ में राजनगर चातुर्मास किया वहां तालेवरने बहुतसे उत्सव किये तथा दो वर्षतक बड़ी भक्ति थी। वहां से श्रावक संघ सहित शत्रुञ्जय और गिरनार महातीर्थों की यात्रा कर सं १८३० में वेलाउल पधारे। कच्छ देश के श्रावकों के अत्याग्रह से सं० १८३१ में मांडवी चातुर्मास किया। बन्दरगाहों से समुद्री व्यापार करने वाले लक्षाधीश तथा कोट्याधीश श्रावकों ने १ वर्ष पर्यन्त खूब द्रव्य व्यय करके धर्म ध्यान का ठाठ किया। सं० १८३२ में इसी प्रकार भुज में चातुर्मास हुआ। सं० १८३३ में आप मनरा बन्दर होते हुए क्रमशः गुढा पधारे और वहीं सं १८३४ के चतुर्मास में मिती आश्विन कृष्ण १० को सूरि महाराज स्वर्ग सिधारे। इन वर्षों में प्रायः हमारे चरित्रनायक सूरिजी की छत्रछाया में विचरे थे। इनके गुरुमहाराज श्रीरत्नराज गणि का स्वर्गवास तो इससे पूर्व ही हो गया मालूम देता है पर इस वर्ष दादा गुरु श्रीजिनलाभसूरिजी का भी विरह हो गया। श्रीजिनलाभसूरिजी के विहारका वर्णन हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" में प्रकाशित दोहे आदि के आधार से किया गया है।

वाचक राजधर्म जी के साथ—

सं० १८३५ में श्री जिनलाभसूरिजी के सात शिष्य अलग अलग हुए, तब से आप अपने गुरुश्री के गुरुभ्राता वाचक श्रीराजधर्मजी के साथ रहने लगे। संवत् १८४० को सौभाग्यधर्म गणि की पृष्ठ-टिप्पनिका[१] से मालूम होता है कि आप वै० व ४ सं० १८४० में वाचक-जीके साथ गूढ़ा नगर में थे। सं० १८५१ चै० व० १ के पत्र से मालूम होता है कि आप पाली में वा० हीरधर्म तथा वा० राजधर्म जी के साथ थे। इसके बाद वाचक राजधर्म जी नागौर चले आये तथा ज्ञानसार जी किसनगढ़ गये। वहां सं० १८४२ से १८४४ के तीन चातुर्मास बिताकर फिर नागौर में वाचकजी से मिले। दोनों के वस्त्र पुस्तकादि परिग्रह की ४ गांठें नागौर में छोड़ कर आप जयपुर आगये। सं० १८४५ मिती वैसाख कृष्ण १ को लखनऊ से श्रीजिनचंद्रसूरि जी के दिये आदेशपत्र से मालूम होता है कि उस समय आप जयपुर थे और इसी आदेशपत्रानुसार तथा फारखती पत्र से ज्ञात होता है कि सं० १८४५-४६—४७ के तीन चातुर्मास वाचकजी के साथ ही जयपुर हुए। सं० १८४८ का चातुर्मास श्रीज्ञानसारजी ने जयपुर ही किया और वाचक राजधर्मजी पुहकरण जाकर स्वर्गवासी हो गये।

---

१ ज्ञानसारजी के समय यति लोग रुपये पैसे आदि परिग्रह रखने लग गये थे अतः अपने आयुष्य का अन्त निकटवर्ती जानने पर वे अपनी विद्य-मानता में गच्छ के समस्त यतियों को इच्छानुसार ॥) या १) वितीर्ण करते तब यतियों के संघाड़ों की नामावलि लिखी जाती उस लेखको हर्ष टिप्पनिका और स्वर्गवास के अनन्तर शिष्यों द्वारा गुरु की स्मृति में ॥), १) वितीर्ण किया जाता उस समय के टिप्पनक को पृष्ठ टिप्पनिका कहा जाता है।

सं० १८४८ में जब आप जयपुर में थे, तत्कालीन आचार्य श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आपको वहां से विहार करके महाजनटोली जाने का आदेश दिया, आदेशपत्र की नकल इस प्रकार है :—

सही

॥ श्री ॥

॥ स्वस्ति श्री पार्श्वेशं प्रणम्य ॥ श्रीलखणेऊ नगराद्भट्टारक। श्रीजिनचन्द्रसूरिवराः सपरिकराः श्री जयपुर नगरे पं। भ०। ज्ञानसार मुनि योग्यं समनुम्य समादिशंति श्रेयोत्र तत्रत्यं च देयं। तथा तुमने आदेश श्रीमहाजनटोली नो छै तत्र पुंहचेज्यो। घणी शोभा लेज्यो, शिष्यां ने हितशिक्षा में प्रवर्त्तज्यो जिम श्री संघ राजी रहै तिम प्रवर्तज्यो, प्रस्तावै पत्र देज्यो मिती फागुण सुदि १२ सं० १८४८ रा।

मुख पृष्ठ पर :—

१ भ। श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः।

२ पं। प्र। ज्ञानसार मुनियोग्यम्।

इस पत्र से तत्कालीन श्रीपूज्यों के पत्रलेखन शैली आदि का सुन्दर परिचय मिलता है।

पूर्व देश विहार और तीर्थ-यात्रा

गच्छनायक श्रीपूज्यजी के आदेशानुसार आपने वहां से विहार कर दिया और सं० १८४९ का चातुर्मास महाजनटोलीमें किया सं० १८४९ मिति माघ शुक्ला १२ के दिन आपने श्री सम्मेतशिखर महातीर्थ की यात्राकर अपना जीवन सफल किया। सं० १८५०–५१ के चातुर्मास सम्भवतः मुर्शिदाबाद-अजीमगंजादि में ही किये थे।

इसी बीच सम्भव है कि बंगाल में जहां जहां जैन लोग निवास करते थे आपने विचरण किया होगा। पूरब देशके नाना अनुभवों, वहां की समाज व्यवस्था, रहन सहन आदि का वर्णन वड़ाही सजीव और अपूर्व आपने "पूरब देश वर्णन छंद" में किया है जिसे पाठकों की जानकारी के लिए इस ग्रन्थ के अन्त में दिया गया है। सं० १८५१ मिती माघ शुक्ला ५ को आपने द्वितीय वार श्री समेतशिखरजी[1] की यात्रा की। इसके बाद श्रीपूज्यजी के आदेशानुसार विचरते हुए दिल्ली आए सं० १८५२ का चातुर्मास यहीं किया। इन चार वर्षों में आपने मार्गस्थित संयुक्त प्रान्त, विहार, बंगालके सभी तीर्थों की यात्रा भी अवश्य की होगी। उसका विशेष वर्णन प्राप्त होता तो जैनतीर्थों के इतिहास सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण वातों का पता चलता। पत्रादिमें संक्षिप्त वर्णन अवश्य ही लिखा होगा। पर खेद है कि वे अब प्राप्त नहीं है।

पट्टहस्ती का रोगनिवारण :–

सं० १८५३ में आप जयपुर पधारे और सं० १८६२ पर्य्यन्त १० वर्षके चातुर्मास जयपुर में किये। कहा जाता है कि जब आप जयपुर पधारे थे, महाराजा का पट्टहस्ति बीमारी के कारण दिनों दिन सूख रहा था। रोग प्रतिकारके अनेक उपाय किये गये पर कोई फल न मिला। अन्ततोगत्त्वा श्रीज्ञानसारजी से निवेदन करने पर इन्होंने अपने असाधारण बुद्धि वल से गजराज के रोग का निदान किया और उसके उदर में उगी हुई वल्लि को निकाल कर उसे पूर्ण स्वस्थ कर दिया।

---

१ विहार प्रान्त में पार्श्वनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है। यहां जैनों के २० तीर्थङ्कर मोक्ष पधारे थे अतः महत्त्वपूर्ण तीर्थ है।

जयपुर में १० चातुर्मास :--

जयपुर में तो आपने पहले भी कई चातुर्मास किये थे और वहा के सङ्घ तथा राज्य की ओर से भी खरतर गच्छ के उपाश्रयस्थ यतियों को काफी सम्मान प्राप्त था। श्रीपूज्यजी का आदेश महाराजा प्रताप सिह[1] का आग्रह और सङ्घ की भक्तिवश ही आपका जयपुर में चिरकाल रहना हुआ। श्रीमद् ज्ञानसारजी का प्रायः राजसभा में जाना होता था। राजकीय विद्वानों से विद्वद्गोष्ठी कर अपनी विद्वत्ता से इन्होंने महाराजा को प्रभावित कर दिया था। खास खास प्रसङ्गों पर इनकी उपस्थिति और आशीर्वाद परमावश्यक समझे जाते थे। इन आशीर्वादात्मक कवित्तों में से सम्वत् १८५३ माघ वदि ८ को रचित समुद्रबद्ध प्रतापसिह[2] गुणवर्णन पर स्वोपज्ञ वचनिका एवं कामोद्दीपन ग्रंथ में दो सवैये उपलब्ध हैं।

---

१ महाराजा प्रतापसिह

सं० १७८४ में जयपुर वसाने वाले सवाई जयसिंह के ईश्वरीसिंह और उनके उत्तराधिकारी माधवसिंह हुए इनकी राजगद्दी सम्वत् १८०७ व मृत्यु सम्वत १८२४ में हुई। इनके बाद वड़े पुत्र पृथ्वीसिंह ५ वर्ष की आयु में सिंहासनारूढ़ हुए जिनका सं० १८३२ में देहान्त हो जाने से प्रतापसिंह राजा हुए। इनका जन्म सम्वत् १८२१ पौ० कृ० १२ और राजगद्दी सं० १८३२ वै० व० ३ को हुई। ये वड़े वीर व योग्य शासक होने के साथ साथ सुकवि भी थे। आपको भर्तृहरि शतकत्रय का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर व प्रसिद्ध है तथा अन्य २० ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इन सब को पुरोहित हरिनारायणजी ने नागरी प्रचारिणी सभा से व्रजनिधि ग्रन्थावली में प्रकाशित करवाया है। इन ग्रन्थों की रचना सम्वत् १८४८ से सम्वत् १८५३ तक हुई थी।

महाराजा स्वयं कवि होने के साथ साथ अनेक विद्वानों के आश्रयदाता भी थे। आप की आज्ञा से पारसी आइने अकबरी व दिवानी हाफिज का हिन्दी में अनुवाद हुआ। इन्होंने प्रताप मार्त्तण्ड आदि ज्योतिष के ग्रन्थ बनवाए तथा धर्मशास्त्रों का संग्रह व अनुवाद कराया जिनमें धर्म जहाज प्रसिद्ध है।

महाराजा की आज्ञा से विश्वेश्वर महाशब्दे के प्रतापार्क नामक धर्म-शास्त्र का उपयोगी ग्रन्थ बनाया। प्रतापसागर नामक वैद्यक ग्रन्थ भी अनुभवी विद्वानों से प्रस्तुत करवाया जिसका हिन्दी अनुवाद अमृतसागर भारत विख्यात वैद्यक ग्रन्थ है। संगीत के तो मानो आचार्य ही थे, आपके उत्साह से राधागोविन्द संगीतसार नामक विशद ग्रन्थ सात अध्यायों में बना जो हिन्दी साहित्य में अपने विषय का अजोड़ ग्रन्थ है। यह मुद्रित (अशुद्ध) रूप में जयपुर लाइब्रेरी में प्राप्त है। आपके समय में ही राधाकृष्ण ने राग रत्नाकर बहुत सुन्दर छोटासा संगीत का रीति ग्रन्थ बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। आपके संगीत के उस्ताद बुधप्रकाश जी (चांद खाँ उपनाम दूलह खाँ) ने संगीत का एक उत्तम ग्रन्थ "स्वरसागर" बनाया। अमृतराम पल्लीवाल ने अमृतप्रकाश, रखतेश का टंकशाली पद संग्रह उत्तम है। महाकवि राव शंभुराम, महाकवि गणपतिभारती, गुसांइ रसपुंज, रसराशि के पद भी उक्त संग्रह में है। नवरस अलंकार सुधानिधि आदि भारतीजी के निर्मित हैं। हजारा काव्यों का संग्रह भी मुख्यतया इन्होंने किया था।

महाराजा ने कई हजारे संग्रह करवाये जिनमें प्रताप वीर हजारा और प्रताप सिंगार हजारा मिलते हैं। आपके आश्रित कितने ही चारणादि कवियों का साहित्य भी प्राप्त है। आपको इमारतें बनाने का भी काफी शौक था। सुप्रसिद्ध हवामहल आदि इसके प्रतीक और र सार प्रसिद्ध है। सम्वत् १८६० मिती श्रावण सुदि १३ को आपकी मृत्यु हुई। विशेष जानने के लिये व्रजनिधि ग्रन्थावली देखना चाहिये।

तो प्रमाणाभाव से बता सकना कठिन है। परंतु समुद्रबद्ध वचनिका और कामोद्दीपन ग्रंथ जो क्रमशः १८५३ माघ शुक्ला ८ और सम्वत् १८५६ चैत्र शुक्ला २ को रचित हैं—से इनका जयपुर नरेश पर अच्छा प्रभाव विदित होता है।

गुरुभ्राताओं से बँटवारा:—

श्रीजिनलाभसूरिजी के स्वर्गवास के बाद वर्षों तक आप वाचक राजधर्म जी के साथ रहे थे * यह ऊपर लिखा जा चुका है। फारकती पत्र से मालुम होता है कि वाचकजी का देहान्त हो जानेपर उनके शिष्य अमरदत्तजी ने आपसे उस परिग्रह के सम्वंध में खींचातान की थी आखिर सं० १८५६ के मिती जेठ शुक्ला ४ को लूणिया उत्तमचंदजी की मध्यस्थता से निवटारा हो गया। इसका एक फारकती पत्र हमारे संग्रह में है जिसमें कई यति व श्रावकों की साक्षियाँ भी लिखी हुई हैं। पाठकों के परिज्ञानार्थ इस फारकती की नकल यहां दी जाती है:—

श्री

॥सम्वत् १८३५ सै। श्रीजिनलाभसूरिजी का शिष्य सात न्यारा हूआ। जद। वा० राजधर्मगणिजी और ज्ञानसार। ए दोनूं भेला रह्या। परिग्रह पईसै सहित भेला रह्या। पछै पाली चौमास पिण भेला। पाली सुं वा। राजधर्मगणिजी नागोर रह्या। पं० ज्ञानसार किसनगढ़ न्यारौ रह्यौ। पछै फेर नागोर वा० राजधर्मजी कनै पं० ज्ञानसार आयौ। नागोरमें दोनां ही रै परिग्रहरी गांठड्यां नग ४ भेली ही राखी। राख नैं जयपुर चौमास दोनूं भेला तीन वरष रह्या।

---

* और उनके परिग्रह पुस्तकादि भी साथ ही थे।

पछै ज्ञानसार चौथो चौमास पिण जैपुरहीज रह्यो। अर वाचकजी पोहकरण जाय नै देवंगत हुआ। अनै ज्ञानसार जैपुर सूं पूरब च्यार चौमासा करने फेर जैपुर आयौ जद अमरदत्तजी जैपुर में। जैपुर रे आदेशरी उपत दिसा। और गांठड्यां नागोर राखी छी तिण दिसा। रुपीया रोक दिसा। जगड़ौ कीनौ। जद जैपुरमें। लूणिया साह श्री उत्तमचन्दजीयै। दोनां ही नै समझाय नै झगड़ौ निवेड़्यौ। सो आज पछै। पं। ज्ञानसार सूं अथवा चेलांसुं। पं। अमरदत्तजी। व अथवा अमरदत्तजी रा चेला। दावै वेदावै। और आजसुं पाछला लैणा दैणा का कागद सरव रद छै। पं। अमरदत्तजी वा चेला कोई तरांको। पं। ज्ञानसार वा चेला सुं झगड़ै तो। राजमें। पंचायती। जगेमें······ एक को दावौ नहीं। उपर लिख्यौ सो······(सही ?)

इसके पश्चात् वाणिका लिपिमें लिखा है वही व अन्य स्वतन्त्र फारकती पत्रमें इस प्रकार लिखा है :—

॥ पं। प्र श्री नारणजी चेला हरसुख खूबचन्द सुं अमरदत्त चेला ज्ञानचन्द की वंदणा वाचज्यो। अपरंच थे में सामल था अपणी चीज वस्त सर्व सामल थी पछै थांके मांके झगड़ो हुवौ जदी राजी वाजी हुय नै फारकती लिख दीनी आज पेलां कोई कागद पत्र निकलै सो रद छै। आज पछै कोई दावों न छै, फारकती रजावंदी सूं लिख दीनी छै मिती जेष्ठ सुद ४ वार शुक्र सं० १८५६ का लिखतुं पं। अमरदत्त ज्ञानचन्द उपर लिख्यौ सो सही छै।

साख १ सवाईविजै जी नी धण्यां दोतुं रजु

साख १ पं० जीवणविजय जी नी धण्यां दोतुं रजु

साख १ पं० माणिकचन्द की दोन्यां धण्यां कै कह्यै लिखी

साख १ वणारस अमृतसुन्दर गणि री थण्यां दोना......

साख १ महता रतनचन्द लोढ़या धणी···हाजर लिखी

साख १ ज्ञानचन्द डागा धणी दोनु हाजर

साख १ हरचन्द चोरड़िया धणी द···

साख १ उत्तमचन्द (लूणीया)

यह पत्र तत्कालीन दस्तावेज लेखन पद्धति का सुन्दर नमूना है।

जयपुर में साहित्य प्रगति :—

व्याख्यान, स्वाध्याय, धर्म-चर्चा आदि के अतिरिक्त आपका समय आगमग्रन्थ एवं श्रीमद् आनन्दघनजी के ग्रन्थों का परिशीलन करने में ही व्यतीत होता था। इस समय आपके साथ शिष्य हरसुख (हितविजय सं० १८३५ फा० व० ११ जिनचन्द्रसूरि दीक्षित) और क्षमानन्दन[1] (खूबचन्द) थे जिनका नाम उपर्युक्त फारकती पत्रमें आता है। इस अरसे में संवतोल्लेखसह बने हुए ग्रन्थों में जो उपलब्ध हैं, सभी तात्त्विक और शास्त्रीय विचारमय हैं। सं० १८५८ ज्येष्ठ सुदि ३ को संबोध अष्टोत्तरी, सं० १८५८ दीवालीके दिन ४७ बोल गर्भित चतुर्विंशतिजिन स्तवन, सम्वत् १८६१ पौषशुक्ला ७ सोमवार को दण्डकस्तवन, मायमें जीवविचार स्तवन, माघवदि १२ चन्द्रवार को नवतत्त्व स्तवन, की रचना हुई। सं० १८६२ की २ रचनायें उपलब्ध हुई हैं, जिनमें मार्गशीर्ष कृष्णा १४ को हेमदण्डक स्तवन तथा चैत्रशुक्ल ८ को रचित ६२ यन्त्ररचना स्तवन हैं।

---

१ श्रीपूज्यजी के दफ्तर की दीक्षानन्दी सूची के अनुसार इनकी दीक्षा सं० १८४५ मि० व० ७ गु० बीकानेर में हुई थी।

जयपुर निवासी गोलछा सुखलाल को बाल्यकाल से हीं जैनधर्म के प्रति रुचि नहीं थी। पर आपश्री के समागम व सत्संगति से उन्होंने शुद्धवृति से जैनदर्शन की श्रद्धा स्वीकार की और पठन पाठन स्वाध्यायमें विशेष रूप से प्रवृत्त हुए। भाव छतीसी की रचना इनके लिये किसनगढ़ में की गयी थी।

एक वार आप जयपुरनगर से वाहर वगीचेमें आकर रहने लगे थे। उपाश्रय की अपेक्षा नगर से वाहर शान्ति और एकान्त विशेष मिलता है अतः स्वाध्याय ध्यान में विशेष प्रवृति होती है। एकदिन जयपुर निवासी सरावगी ऋृषभदास काला आपके पास आये। धार्मिक वार्तालाप से आनन्दित होकर कहने लगे कि आप यदि सिद्धांत वाचन करें तो मैं भी दो घड़ी लाभ लूं! श्रीमद्ने कहा कि मैं श्रीउत्तराध्ययन सूत्र का व्याख्यान करता हूं। सरावगीजीने कहा—समयसारजी सिद्धान्त वांचिये! यों तो श्रीमद् के समयसारादि सभी सिद्धान्तोंका अवगाहन किया हुआ था। पर यहां सरावगीजीका आशय समयसार के अतिरिक्त ग्रन्थोंको सिद्धान्त न मानने का होना समझकर स्पष्टवादिता से श्रीमद् ने फरमाया कि समयसार[1] तो ज्ञानप्रधान व निश्चय नय की

---

[1] समयसार मूल ग्रन्थ दिगम्बराचार्य श्रीकुन्दकुन्द कृत है जिसपर अमृतचन्द्रसूरिकी टीका तथा कविवर बनारसीदासजी कृत हिन्दीपद्यानुवाद सं० १६९२ आगरा में रचित प्रकाशित है। इस पर राजमल्ल कृत भाषाटीका तथा खरतर गच्छीय विद्वान श्री रूपचन्द्र (उ० रामविजय) जी कृत वचनिका उपलब्ध है। परिवर्त्तित भाषा में भीमसी माणक द्वारा प्रकाशित भी हो चुकी है। विशेष परिचय मुनि कान्तिसागरजी के लेख में द्रष्टव्य है। श्रीमद् ज्ञानसार जी का आशय कविवर बनारसीदास जी की कृति से है।

खींचवाला होनेसे जिनागम का चोर है। सरावगीजीने कहा—समयसार में ऐसी क्या बात है? कृपया बतलाइये। तब श्रीमद् ने आश्रव सम्वर द्वारमें "आसवा ते परिसवा, परिसवा ते आसवा" सिद्धान्तके एकान्त पक्ष ग्रहण की जो प्ररूपणा थी, विस्तृत व्याख्या करके बतलाई। ज्ञानी के नवीन बन्ध नहीं होता—आत्मा सर्वदा शुद्ध है इत्यादि वाक्योंपर जहां एकान्तवाद और क्रिया की अनावश्यकता प्ररूपित है उसका निरसन करके जैनदृष्टि और स्याद्वाद से तप संयमादि युक्त शुद्धात्मा की प्ररूपिका श्री आत्म प्रबोध छत्तीसी नामक ग्रन्थ की रचना आपने इसी प्रसङ्ग से सरावगीजी के निवेदन से की। श्री ऋषभदासजी सरावगी इस व्याख्या से आत्मविभोर हो उठे। यह छत्तीसी इसी ग्रन्थ के पृ० १५५ से १६४ तक प्रकाशित है।

गुरूमन्दिर प्रतिष्ठा:—

जयपुर नगर के बाहर मोहनबाड़ी नाम से प्रसिद्ध दादा साहब का स्थान है। श्रीमद् ने वहां दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी तथा श्रीजिनकुशलसूरिजी के चरण, स्वप्रगुरु श्रीजिनलाभसूरिजी

ये हिन्दी के उच्चकोटि के कवि थे। ये मूलतः खरतर गच्छ की जिनप्रभसूरि शाखा के श्रावक और श्रीमाल जाति के थे पर आगरे में दि० विद्वानों के सत्संगत् व समयसार ग्रन्थादि अध्ययन के प्रभाव से दिगम्बर हो गये थे। इनकी कृतियों में अर्द्धकथानक (आत्मकथा), बनारसीनाममाला, बनारसीविलास (संग्रह ग्रन्थ) प्रकाशित है। वर्तमानकाल में सोनगढ़ के श्रीकानजी स्वामी इस ग्रन्थ के प्रमुख प्रचारक हैं।

उनके पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिजी तथा गुरु श्रीरत्नराजगणि के चरणपादुके निर्माण करवाके प्रतिष्ठित करवाये थे। आपश्री के शिष्यवर्गने भी आपकी विद्यमानता में ही आपके चरण बनवाकर प्रतिष्ठित किये थे। इन चरणपादुकाओंके सब लेखों को अप्रकाशित होनेके कारण यहां दिये जाते हैं।

(१) ॥ संवत् १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां श्री जयनगर भ्यर्णे श्रीबृहत् खरतर गच्छाधीश्वर युगप्रधान भ० श्री जिनदत्तसूरीणां। युगप्रधान भ०। श्रीजिनकुशलसूरीणां च पादन्यासौ श्रीजिनहर्षसूरि विजयि राज्ये। पं० ॥ ज्ञानसार मुनिना कारिता प्रतिष्ठापितौ च तयामेव पूज्यानामुपदेशात्।

(२) सं० १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री गयनगराभ्यर्णे। श्री बृहत्खरतर गच्छाधीश यु० भ० श्रीजिनलाभसूरीणां श्री जिनचन्द्रसूरीणां च पादन्यासौ श्री जिनहर्षसूरि विजयि राज्ये पं। ज्ञानसार मुनिना कारितौ प्रतिष्ठापितौ च।

(३) ॥ संवत् १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्यां। श्री जयनगराभ्यर्णे श्री बृहत् खरतर गच्छेश भ। श्री जिनलाभसूरि शिष्य प्राज्ञ प्रवर्द्ध श्री रत्नराजगणीनां पादन्यासः श्री जिन-हर्षसूरि विजयिराज्ये। पं० ज्ञानसार मुनिना कारिते प्रतिष्ठापितेश्च।

(४) ॥ सं १८६२ मिते माघ सुदि पंचम्या। श्री जिनहर्षसूरि विजयिराज्ये विद्वद्वर्य श्री रत्नराज गणि शिष्य प्राज्ञ ज्ञानसार मुने विद्यमानस्य पादन्यासः। शिष्य वर्गेण कारिता प्रतिष्ठापितश्च।

आपकी विद्यमान अवस्था में चरणपादुकाओं की प्रतिष्ठा होना यह उनके उस समय के गुणोत्कर्ष और पूज्यमान होने की महत्त्वपूर्ण सूचना देता है।

क्षमानन्दन रचित सांगानेर के दादाजी के स्तवन से विदित होता है कि एकवार आप संघ के साथ वहां दादागुरु के वन्दनार्थ पधारे। उस समय लूणियागोत्रीय श्रावक ने गोठ की थी जिसका उल्लेख निम्न गाथा में हैं:—

श्री संघ मिल तिहां आवें, जिहां लूणिया गोठ रचावैं रे म्हां।
श्री ज्ञानसार गणिराजा, ज्यां रा वाजैं सदाई वाजारे म्हां॥

एक वार आपने जयपुर से उ० श्री क्षमाकल्याणजी[1] गणि को पत्र दिया जिसके हांसिये पर चित्र किये हुए हैं यह पत्र वड़े उपाश्रय के महिमाभक्ति भण्डार में है उस पत्र में रूपनगर के राजा के स्वर्गवास, होने व वै० सु० १ के दिन वहादुरसिंह के पुत्र का उनके गद्दी पर बैठने का समाचार है तथा मुंहताई खुस्यालचंद के होने का लिखा है। इससे रूपनगर से भी श्रीमद् का सम्बन्ध मालूम देता है।

कृष्णगढ़ के ६ चातुर्मास :—

श्रीमद् ज्ञानसारजी जयपुर से विहार कर किसनगढ़ पधारे। सं० १८६३ से सं० १८६८ तक के चातुर्मास किसनगढ़ में किये। यहां श्री चिन्तामणि पार्श्वनाथ मन्दिर की अवस्था जीर्णशीर्ण हो गई थी। आप श्री ने व्याख्यान में जीर्णोद्धार का महान् फल वतलाते हुए

---

१ अपने समय के ये वड़े गीतार्थ विद्वान थे इनके रचित अनेकों ग्रंथ उपलब्ध हैं।

श्रावकों को चिन्तामणि पार्श्वनाथजी के मन्दिर के जीर्णोद्धार का उपदेश दिया। कहा जाता है कि रात में पार्श्वयक्ष ने प्रकट हो कर २१) रुपये रख दिये और उसी पूंजी से काम आरंभ करने का निर्देश किया। श्रावकों ने श्रीमद् के कथनानुसार कार्य आरंभ कर दिया और थोड़े दिनों में जिनालय खूब संगीन और चित्रादि से सुशोभित तैयार हो गया। शुभ मुहूर्त्त में ध्वजदण्डारोपण महोत्सव किया गया। इस विषय के वर्णन के निम्नोक्त कवित्त प्राप्त हुए है :—

सुन्दर सरूप श्याम अंगी नग जग मगत
समोशरण अधिक शोभा सरसाई है।
मन्डप सभा में यों फरस मकरिंद बनो
चित्रकारी नानाविध रङ्ग बरसाई है॥
ठाढे द्वार हाथी मोर छत्र किये बंगला पै
कंचन के कलशा अद्भुत छबि छाई है।
कृष्णगढ़ मांझ देखो साधु नारायनजी,
चिन्तामणि रत्नजू की भक्ति दरसाई है ॥१॥
प्रगट प्रवासन किधों इंद सुर आसनकौ
मानक नग हीर किधौं हाटक मंढायो है।
चौक चित्रकारी चिहुं फेरकर सवार जारी,
मोल रजतारी सम पाहन कढायो है॥
चिन्तामन हाथ चढो नामी नराय(ण)के किधौं,
कृष्णगढ़ कीरत को नीरध बढायो है।
मन्दिर जैनराजहू कौ जीरण होतो तहां,
मण्डप सुधाराय धजा इंडप चढायो है ॥२॥

चिहुंदिशि जाको जस प्रसिद्ध, नाराइन मुनिराज।
भवजीव तारण प्रते, भवदध रुप जिहाज॥

भावछतीसी की रचना :—

पाठकों को स्मरण होगा कि पिछले वर्षों में जयपुर निवासी श्री सुखलाल जी गोलछा श्रीमद् के संसर्ग से पक्के जैन धर्मानुयायी हो गये थे। उन्हें स्वाध्याय का बड़ा शौक था, जयपुर में दिगम्बर बन्धु पर्याप्त थे और उनके सहयोग से समयसार का वाचन प्रारम्भ किया था, जब श्रीमद् को यह ज्ञान हुआ तो उन्होंने द्रव्य भाव और ज्ञान क्रिया के रहस्यों को स्पष्ट करनेवाली "भाव षट्-त्रिंशिका" नामक कृति निर्माणकर भेजी जिसके मूल और विवेचन के पाठ से उन्हें समयसार का वास्तविक स्वरूप मालूम हो गया।

आनन्दघन चौबीसी पर विवेचन :—

इस समय श्रीमद् ज्ञानसारजी की अवस्था ६६ वर्ष की हो गई थी इन्होंने सम्वत् १८२६ में श्री आनंदघनजी[1] महाराज के स्तवनों

---

१ श्वेताम्बर जैन समाजमें ये उच्च कोटिके योगी माने जाते हैं। हालहीमें प्राप्त खरतरगच्छीय यति जयरंग जैतसीजी के पत्रसे आपका खरतरगच्छीय होना ज्ञात होता है। मेड़तामें आप बहुत काल तक रहे थे। प्रणामी सम्प्रदायके एक साधु के कथनानुसार सं० १७३१ में वहीं आपका स्वर्गवास हुआ था। सुप्रसिद्ध न्यायाचार्य यशोविजय उपाध्यायका आपसे मिलन होना कहा जाता है। आनन्दघन जी के सम्बन्ध में उनकी अष्टपदी प्रसिद्ध है। आपका प्रसिद्ध नाम लाभानन्द था, अनुभव प्रधान नाम आनन्दघन अपनी रचनाओं में आपने स्वयं दिया है। आपके रचित चौबीसी में से २२ स्तवन उपलब्ध हैं, जिसकी पूर्ति में श्रीमद् देवचन्द्र, ज्ञानविमलसूरि व श्री ज्ञानसार जी आदि के रचित स्तवन प्रकाशित हैं। आपकी चौबीसी

(चौवीसी के २२ स्तवनों) का अध्ययन और परिशीलन प्रारम्भ किया था जिन्हें ३७ वर्ष जैसा दीर्घकाल व्यतीत हो जाने से लोकोपकार के हेतु अपने परिपक्व अनुभव के उपयोग द्वारा विशद् विवेचनमय बालावबोध लिखकर मुमुक्ष जनता का परम हितसाधन किया। श्री

पर सर्व प्रथम यशोविजय उपाध्याय के विवेचन करने का उल्लेख मिलता है पर वह उपलब्ध नहीं है। इसके पश्चात् ज्ञानविमलसूरि जी ने बालावबोध बनाया जो प्रकाशित हो चुका है। श्रीमद् ज्ञानसार जी ने इस बाला वबोध की अनेक त्रुटियों पर मार्मिक प्रकाश डाला है। हालही में दो अन्य विवेचन भी प्रकाशित हो चुके हैं जो मनसुखलाल जी और पं० प्रभूदास बेचरदास द्वारा लिखे गये हैं। स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधरदास कापड़िया भी विस्तृत विवेचन लिख रहे थे। जयपुर निवासी श्री उमरावचन्द जी जरगड़ ने हिन्दी भाषा में आनन्दघन चौवीसीका भावार्थ किया है, जिसे शीघ्र प्रकाशित करना आवश्यक है।

श्रीमद् आनन्दघन जी के पद बहुत्तरी के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी संख्या १११ के लगभग है वास्तव में कई पद अन्य रचित भी उसमें सम्मिलित हो गये हैं। हमारे संग्रह में आपके ६६ पदों की एक प्राचीन प्रति है। अन्य हस्तलिखित प्रतियों के आधार से पाठ निर्णयादि करके हम आपके पदों का संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित करना चाहते हैं, आपके पदों पर श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी ने विवेचन लिखा है जो आध्यात्म ज्ञान-प्रसारक मंडल से प्रकाशित हो चुका है स्वर्गीय मोतीचन्द गिरधर कापड़िया ने भी सुन्दर विवेचन लिखा जिसमें से लगभग ५ पदोंका विवेचन "आनन्दघन पद रत्नावली" में बहुत वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था अन्य पदों का विवेचन जैन धर्म प्रकाश में कई वर्षों तक निकलता रहा जिसे स्वर्गीय कापड़िया जी शीघ्रही प्रकाशित करने वाले थे पर इसी बीच आपका स्वर्गवास हो गया। आनन्दघन और घनानन्द पुस्तक में भी उपर्युक्त चौवीसी और पद प्रकाशित हुए हैं।

आनंदघनजी महाराज पर आपकी अत्यन्त श्रद्धा थी, और उनकी वाणी का आपके जीवनमें पर्य्याप्त प्रभाव पड़ा था। इस बालावबोध में २२ स्तवन श्रीमद् आनन्दघन जी के तथा २ स्तवन इनके स्वयं निर्माण किए हुए हैं। अन्तमें उनकी महानता व अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए श्रीमद् ने लिखा है कि :—

"आशय आनन्दघन तणो अति गम्भीर उदार
बालक बांह पसार के कहे उदधि विस्तार"

कृष्णगढ़ के महाराजा [२] भी आपका बड़ा सम्मान किया करते थे तथा जैन व जैनेतर प्रजा पर आपका अच्छा प्रभाव था। यहां के ६ चातुर्मास ज्ञान ध्यान में लीन और शान्त सुधारस में सराबोर बीते। तदनन्तर ग्रामानुग्राम विचरते हुए तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय पधारे।

सिद्धाचल यात्रा :—

सं० १८६९ मिती फाल्गुन कृष्णा १४ को युगादि देव श्री ऋषभ प्रभु के दर्शन कर आत्मविभोर हो उठे। श्री सिद्धाचल के आदि जिन स्तवन में आपश्री ने अपने मनोगत भावों को निःशल्यता पूर्वक आत्मचर्या के रूप में प्रभु चरणों में निवेदित किये हैं। जिन से विदित होता है कि आपने इस वृद्धावस्था में उपकरणों को स्कंधो पर वहन करते, नाना उपसर्ग सहते, कण्टकाकीर्ण मार्ग को पैदल विचरते हुए तै किया था।

---

२ किसनगढ़ के इतिहास के अनुसार इस समय वहां के राजा कल्याणसिंह थे।

बीकानेर आगमन :—

बीकानेर राज्य श्रीमद् की जन्मभूमि होते हुए भी बाल्यकाल से अबतक लगभग ७० वर्ष की आयु हो जानेपर भी बीकानेर पधारने का अवसर प्रायः नहीं मिला था। तीर्थाधिराज शत्रुञ्जय की यात्रा करने के पश्चात् आपने अपना अन्तिम जीवन बीकानेरमें व्यतीत करने का विचार किया। इसके कई कारण थे, एक तो बीकानेर सभी तरहसे उत्तम क्षेत्र था, यहां क्या राजधानी और क्या छोटे मोटे ग्राम, सर्वत्र जैनों की बहुत बड़ी बस्ती थी। जिनप्रसाद और उपाश्रयों का प्राचुर्य था जहां सैकड़ों गीतार्थ यति लोगों का आवागमन रहता था। उपाध्यायजी श्री क्षमाकल्याणजी जैसे क्रियापात्र और इनके बचपन के साथी भी विराजमान थे अतः आप अपने शिष्योंके साथ बीकानेर पधारे और यावज्जीव बीकानेर में ही विराजे। इस समय आपकी वृद्धावस्था होते हुए भी त्याग, वैराग्य तथा साध्वाचार उच्च कोटिका था। आपश्रीने नगरके बाहर श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनालयके पृष्ठभाग में स्मशानोंके निकटवर्त्ती ढढोंकी साल को ही अपनी तपोभूमि चुनी और वहीं रहने लगे। श्रीमद् का जीवन बड़ाही सात्त्विक था, एक पात्र तथा अल्प वस्त्र धारण करते थे दुपहरके समय एकबार आहार करते थे। धारविगय[1] का त्याग था जो कुछ भी रूखा सूखा मिल जाता, ले आते। नगरके बाहर निर्जन स्मशानभूमिके निकट अपनी ध्यान समाधि जमाकर आत्मानुभवके परम सुखका अनुभव करते हुए तप संयमसे आत्मा को भावित करते थे।

---

१ आहार में ऊपर से घृतादि विगय (विकृति ६ दूध, दही, घी, तेल, गुड़, पक्वान्न) न लेना धार विगय त्याग कहलाता है।

इस प्रकारके कई प्रमाण मिले हैं जिनसे यह मालुम होता है कि श्री पार्श्वयक्ष (चिन्तामणि यक्ष) आपके प्रत्यक्ष थे और समय समय पर रात्रिमें प्रकट होकर आपने नाना विधि ज्ञान गोष्ठी एवं भूत भविष्य सम्बन्धी वार्त्तालाप किया करते थे।

महाराजा सूरतसिंह पर प्रभाव :—

बीकानेर नरेश महाराजा सूरतसिंहजी [1] ने आपकी यशोगाथा सुनी और तत्काल आकर मिले फिर तो घनिष्ठता इतनी बढ़ी कि महाराजा किसी भी कार्य करनेके पूर्व आपकी आज्ञा व आशीर्वादके

---

१ महाराजा सूरतसिंह बीकानेर नरेश महाराजा गजसिंह के पुत्र थे। संवत् १८२२ पौष शुक्ला ६ को आपका जन्म हुआ और संवत् १८८४ के विजयादशमी को राजगद्दी प्राप्त हुई थी। आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझाने अपने बीकानेर राज्य के इतिहास में इस प्रकार लिखा है :—

"महाराजा सूरतसिंह का राज्यकाल अंग्रेजों के अभ्युत्थान का समय कहा जा सकता है। जैसे पहले मुगलों के प्रबल प्रवाह के सामने हिन्दू राजाओं को बहना पड़ता था वैसेही अब अंग्रेजों की प्रबल शक्ति के आगे हिन्दू-मुसलमान सब अवनत होते जा रहे थे। उनका अमल हांसी हिसार तक हो चुका था और उनके प्रभुत्त्व की धाक अधिकांश भारत में जम चुकी थी इधर बीकानेर राज्य की भी आंतरिक दशा बिगड़ रही थी। आये दिन राज्य के सरदार विद्रोही हो जाते थे, जिनका दमन करने में ही महाराजा को सारी शक्ति लगा देनी पड़ती थी। टामस की दो बार की चढ़ाइयां तथा जोधपुर के साथ की लड़ाइयों से भी बीकानेर का कम नुकसान न हुआ था। ऐसी परिस्थिति में उसने अंग्रेजों से मेल कर लेनाही उचित समझा और इस महत्त्वपूर्ण कार्य को उत्तमता से पूरा करने के लिये ओझा काशीनाथ दिल्ली भेजा गया, जिसने मिस्टर चार्ल्स

पिपासु रहा करते थे। साह मुलतानमल के द्वारा मौखिक तथा पत्र व्यवहारके द्वारा राजनैतिक, धार्मिक तथा अर्थनैतिक बातों का समाधान होता। अनेक बार महाराजा स्वयं आते और श्रीमद् की सेवामें घण्टों व्यतीत करते। महाराजाके लिखे हुए २२ खास रुक्के हमारे अवलोकनमें आये हैं जिनमेंसे १८ हमारे संग्रहमें तथा ४ यतिमुकनचन्द

मेटकाफ से मिलकर सन्धि की शर्तें तय की। यह घटना बीकानेर राज्य के इतिहास में बड़ा महत्त्व रखती है क्योंकि अंग्रेजों के साथ सन्धि स्थापित हो जाने पर उनकी सहायता से विद्रोही सरदारों का पूरी तरह से दमन होकर राज्य में सुख और शान्ति की स्थापना हुई। जो सम्बन्ध महाराजा सूरतसिंह ने अंग्रेजों से स्थापित किया उसका अब तक निर्वाह होता है और अंग्रेज सरकार तथा बीकानेर के बीच अब भी सुदृढ़ मैत्री विद्यमान है।

"महाराजा सूरतसिंह बड़ा वीर नीतिवेत्ता और न्यायप्रिय था। वह केवल तलवार लेकर लड़ना ही नहीं जानता था वरन् मेल के महत्त्व को भी खूब समझता था। जहां उसे मेल करने में लाभ दिखाई देता वहां वह बिना अधिक सोच विचार किये ही ऐसा कर लेता। वह अन्याय हुआ नहीं देख सकता था। जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के पुत्र धौंकलसिंह का हक मानसिंह द्वारा छिनता हुआ देखकर वह यह अन्याय सहन न कर सका और जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ उसका सहायक बन गया। वह शत्रु पर दगा से वार करने का विरोधी था प्राणरक्षा का वचन पाकर सन्धि की शर्तें तय करने के लिये आये हुए जोधपुर के सरदारों को उसने अपने आदमियों की सलाह के अनुसार मारा नहीं, वरन संन्धि की शर्तें स्वीकार न होने पर भी उन्हें सिरोपाव आदि देकर सन्मान पूर्वक वापस भेजा।

"जहां महाराजा में इतने गुण थे, वहां एक दुर्गुण भी था। वह कान का कच्चा था जिस सुराणा अमरचंन्द ने अपनी वीरता से अनेक बार विद्रोही

जी के शिष्य श्री जयकरणजी के पास हैं। इन खास रुक्कों को देखने से श्रीमद् के प्रति महाराजा का विनय, पूज्य भाव, अटल श्रद्धा, अविरल भक्ति, तलस्पर्शी हार्दिक भाव तथा अनेक ऐतिहासिक रहस्यों की स्पष्ट जानकारी होती है।

उन दिनों बीकानेर राज्यकी अवस्था अत्यन्त कमजोर थी, राजकीय खजाने में द्रव्यका इतना अभाव था कि सुरक्षाके लिये सैन्यव्यय भी दुष्कर था। राजा स्वयं ऋणसे दबे हुए थे। महाराजा सूरतसिंह के पत्रोंका अक्षर अक्षर यही भाव ध्वनित करता है। हमें प्राप्त पत्रोंमें सर्वप्रथम पत्र सं० १८७० मिती भादवा बदि १४ का है अतः इससे पूर्व पत्र व्यवहार एवं आवागमन घनिष्टता पूर्वक चालू हो गया मालूम देता है। इस वर्षके ८ पत्र मिले हैं जिनका अंतर देखते मालूम होता है कि सप्ताहमें २ बार तो पत्र व्यवहार अवश्यही होता था। महाराजा युद्धमें या दौरेमें जहां कहीं होते बाबाजी महाराज श्री ज्ञानसारजी

सरदारों का दमन किया और जिसे स्वंय उस (महाराजा) ने 'राव' का खिताब देकर सम्मानित किया था उसे कई सरदारों के बहकावे में आकर और उनकी झूठी शिकायतों पर विश्वास कर महाराजा ने बाद में मरवा डाला पीछे से इस अपकृत्य का महाराजा को पछतावा भी रहा। महाराजा ने अपने राज्यकाल में सूरतगढ़ बनवाया था।"

बीकानेर राज्यके उत्कर्षमें हमारे चरित नायक का बड़ा हाथ था, यशराज जी की आज्ञानुसार आपकी सलाह से ही अंग्रेजों से सन्धि, तथा उपरिलिखित पड़ौसी राज्यों के प्रति न्याय व नीति की रुख आदि समस्त कार्य कलापों द्वारा बीकानेर राज्य की अवस्था काफी सुधर गयी और भविष्य में वह प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण उन्नत रियासतों की गणना में आने लगा।

श्रीमद् ज्ञानसारजी के प्रति बीकानेर नरेश सूरतसिंह

का खास रुक्का

(नारायणजी) की सम्मतिं आज्ञा या आशीर्वाद के बिना किसी काममें हाथ नहीं डालते थे। पत्र व्यवहार पर सरसरी नजर डालने से मालूम होता है कि सूरतसिंहजीके अर्थाभाव, बागी सरदारों व यवनोंके कारण अराजकता, आदि अनेक समस्याओं का समाधान चरित्रनायक की सम्मति से हुआ था। पत्रोंकी कई अधूरी बातें कर्जदारी, खर्चेकी कमी साहूकारोंपर जबरन वसूली, रैयत पर कष्ट, शहर की गंदगी, पकड़ा-पकड़ी, विदेशी कर्मचारियों की विदाई, आदि अनेक विषयके अनाचार व अराजकता को दूर करानेपर प्रकाश डालती हैं। श्रीमद्के द्वारा यक्षराज (श्री चिन्तामणि यक्ष) से नाना प्रकार के प्रश्न कराये जाते थे जिनमें अपने पूर्व-भव, धनके खजाने, इंग्रेजोंके राज्य व सन्धि से अपने सुख, सिद्धमंत्र, जाप आदि मुख्य थे। अपनी कूच तथा जोधपुर के धोंकलसिंहजी सम्बन्धी, एवं टालपुर सिंध वालोंके साथ महाराजा मानसिंहके कजिये की जय-पराजय आदि नाना प्रश्न पूछे गये हैं। इसी प्रकार सं० १८७१ में दिये हुऐ ५ तथा सं० १८७२ के ५ खास रुक्के हैं। इतने दीर्घ समयमें सैंकड़ों ही पत्रों का आदान प्रदान हुआ होगा पर वे अब प्राप्य नहीं हैं। श्रीमद् के दिये हुऐ एक पत्र की प्रतिलिपि भी उनके स्वयं लिखी हुई प्राप्त हुई है। साह सुलतानमल के बाद नाहटा मदजी इनकी सेवामें रहे थे जिनका कार्य केवल महाराजा के सन्देश श्रीमद् तक पहुंचाने का था। महाराजा उन्हें १५) मासिक वेतन देते थे ये बड़े सन्तोषवृत्ति के थे। मदजी को १५) से १७) मासिक लेना भी स्वीकार नहीं था ऐसा एक पत्रमें महाराजा ने सूचित किया है। इनके अतिरिक्त साह धरमा, असाणी जेठा व अचारज खीगाके द्वारा भी संवाद-अर्जी निवेदन की जाती थी। अंतिम पत्रमें सदासुख

जी को समाचार फरमाने का लिखा है ये श्रीमद्के शिष्य श्री [illegible] जी मालूम देते हैं। इनका भी राजदरबार में प्रभाव बहुत बढ़ा चढ़ा था।

गौड़ी पार्श्व जिनालयमें नवपद मंडल का प्रारम्भ :—

बीकानेरके गोगा दरवाजाके बाहर जहां आप रहा करते थे, श्री गौड़ी पार्श्वनाथजी का छोटासा मंदिर था। आपश्रीके विराजनेसे इस मन्दिर की बहुत उन्नति हुई। आपके स्तवनोंसे मालूम होता है कि आपकी श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ प्रभु पर अत्यन्त भक्ति थी। श्रीचिन्तामणि यक्ष आपके प्रत्यक्ष थे अतः इस मन्दिरमें श्री क्षमाकल्याणोपाध्याय जी द्वारा सं० १८७१ में यक्षराजजी की प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। इसी जिनालय में महाराजा की ओर से नवपद मण्डल [1] रचना प्रारंभ हुई जिसके लिये तबसे लगाकर आजतक राजकीय खजाने से अर्थव्यय किया जाता है। इसी मन्दिरके विशाल अहाते में कई और मन्दिर-देहरियों का निर्माण हुआ। श्री सम्मेतशिखर तीर्थ-पट वाले मन्दिर का निर्माण सं० १८८९ में श्रीअमीचन्दजी सेठियाने करवाया, जिसकी दीवाल पर श्रीमद्का चित्र बना हुआ है, सामने अमीचन्दजी सेठिया हाथ जोड़े खड़े हैं। सं० १८७१ भादवा वदि १३ के दिन आपने नवपद पूजा की रचना की जो इसी पुस्तकमें प्रकाशित है।

---

[1] अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप, ये नवपद हैं। इनके वृत्ताकार यंत्र को सिद्धचक्र या नवपदयंत्र कहते हैं। चैत्र और आश्विन के अन्तिम ९ दिनों में आंबिल तप के साथ नवपद ओली का आराधन किया जाता है। ९ बार (८१ आंबिल) करने पर इस तप की पूर्णाहुति होती है उसके उपलक्षमें नवपदमण्डल की रचना की जाती है।

बीकानेर में साहित्य निर्माण :-

आपश्री उस जमानेमें जैनागमोंके प्रकाण्ड विद्वान थे। स्थानीय श्रावक व साधु समुदाय तो आपके ज्ञानसे लाभ उठाते ही थे पर बाहर से भी प्रश्नोत्तर आदि के रूपमें पत्र आते रहते थे। विहार (जिसे श्रीमद् ने वैशाली लिखा है) निवासी किसी जिज्ञासु श्रावकने आपको एक विस्तृत प्रश्न पत्र भेजा जिसके उत्तरमें आपने जो पत्र दिया वह एक ग्रन्थ ही हो गया है जो सं० १८७४ चैत शुक्ला ७ को पूर्ण हुआ था। यहां रहते साहित्य निर्माण की धारा सतत् प्रवाहित थी। सं० १८७५ मार्गशीर्ष पूर्णिमा को चौवीसी स्तवन, सं० १८७६ फाल्गुन शुक्ला ६ को मालापिंगल (छंदशास्त्र), सं० १८७७ चैत्र कृष्ण २ को चंद चौपाई समालोचना, सं० १८७८ कार्तिक शुक्ला १ को विहरमान वीशी सं० १८८० आषाढ़ शुक्ला १३ को आध्यात्मगीता बालावबोध, सं० १८८० आश्विन में प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, और सं० १८८१ मार्गशीर्ष कृष्णा १३ को गूढ़ाबावनी की रचना की। इनमें से मालापिङ्गल व चन्द-चौपाई समालोचना के अतिरिक्त सभी रचनाएं इस ग्रन्थ में प्रकाशित हैं।

बीकानेर के बड़े ज्ञानभंडार के एक पत्र से मालूम होता है कि सं० १८७४ आश्विन शुक्ल ५ को श्री सिद्धचक्रजी की महती महिमा हुई और इसी वर्ष मिती मिगसर सुदि १२ को श्रीमद् नें गोठ की।

दशहरे की बलिप्रथा बन्द :-

बीकानेर में दशहरे के दिन राज्य की ओर से देवी के बलि स्वरूप भैंसा मारने की प्रथा प्राचीन काल से चली आती थी। कहा जाता है

कि एक बार दशहरे का भैंसा छूट कर दौड़ता हुआ श्रीमद् के शरणामें आगया। पीछे पीछे राज के सिपाही आये पर बाबाजी महाराज के पास भैंसा मांगने की हिम्मत न हुई। अन्त में श्रीमद् के उपदेश से महाराजाधिराज ने सदा के लिए भैंसे का बलिदान बन्द करवा दिया।

यतियों का राजसंकट निवारण :—

कहा जाता है कि मुर्शिदाबाद के जगतसेठजी † ने पार्श्वचन्द्र गच्छीय श्रीपूज्यजी को एक पन्ने का बहरखा भेंट किया था वह इस प्रकार का बहुमूल्य था कि राजा-रजवाड़ो में भी उसकी जोड़का खोजे नहीं मिलता। महाराजाने उसे श्रीपूज्यजी से देखनेके लिए मंगवाया। बहुमूल्य पद्मराग मणियों ने महाराजा को लोभ में डाल दिया और बहरखा लौटाने से अस्वीकार कर गये। यतियों की विशेष मांग होने पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। जब श्रीमद् को यह घटना मालूम हुई तो वे तत्काल दरबार में पधारे। महाराजा ने श्रीमद् का पधारना सुना तो वे स्वागत के लिये सामने आए उस समय आप श्री ने महाराजा से फरमाया कि :—

---

† मुर्शिदाबाद के जगतसेठजी का वंश अत्यन्त महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध रहा है। आपके पास अगणित धनराशि थी, नवाबी अत्याचारों का अन्त करने के लिये भारत में अंग्रेजी राज्य का सूत्रपात इसी वंश से हुआ। इनके पूर्व देशके जैन तीर्थों का उद्धार तथा अन्य अनेक प्रकार के कार्यकलाप प्रसिद्ध हैं। विशेष जानने के लिये पारसनाथसिंह की "जगतसेठ" नामक पुस्तक देखना चाहिये।

अब फाटो आकाश, कहि कारी कैसी करां
प्रकट भिखारी पास, नरपति जाचै नारणा ‡ ?

महाराजा ने अपनी भूल के लिए माफी मांगते हुए वहरखा लौटा दिया एवं यतियों को दो दो रुपये व मिठाई भेंट कर उपाश्रय पहुंचाया।

नगरसेठ के प्रश्नोंका उत्तर :--

कहींके (संभवतः जयपुरके) नगरसेठ महोदय जो आपके परमभक्त थे, अपने पत्रोंमें प्रश्न पूछा करते थे उनके उत्तरमें दिया हुआ (२) विविध प्रश्नोत्तर ग्रन्थ इसी ग्रन्थके पृ० ४०८ से ४२२ तक छपा है। इसका समय सं० १८८० के पश्चात् का अनुमान किया जाता है क्योंकि सं० १८८० में रचित आध्यात्मगीता वालावबोधका इसमें उल्लेख पाया जाता है।

गौड़ी जिनालय का उद्धार और आशातना-निवारण :-

पूर्व कहा जा चुका है कि श्रीमद् जहां स्मशानोंके निकट निवास करते थे, पास ही में श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी का मंदिर था। श्रीसंघ ने सं० १८८६ में १२०००) व्यय करके इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। प्रतिदिन श्रावक लोग नगरके वाहर होने पर भी दर्शन पूजनके लिय यहां आते थे। स्वयं महाराजा सूरतसिंहजी व रत्नसिंहजी श्रीमद् के पास जब कभी आया करते तो इस मन्दिरमें अवश्य पधारते। कहा जाता है कि अन्तःपुरसे महारानियां भी समय समय पर आती थीं। यहां प्रतिदिन पूजा करने के लिए आने वालोंमें सुराणोंके घरकी एक

---

‡ यह संबोध अष्टोत्तरी के ५६ वें दोहे में है। इसके सम्बन्ध में अन्य प्रकार की किम्वदन्ती भी सुनने में आती है।

महिला भी थी जिसे श्रीमद्ने कह भी दिया कि तरुण स्त्रियोंको मूलनायकजी की प्रतिदिन पूजा नहीं करनी चाहिये † पर उसने भक्तिके आवेशमें कोई ध्यान नहीं दिया। एकबार वह पूजा करती हुई रजस्वला हो गई। इस महान अपवित्र आशातनाके होने से श्री गौड़ीपार्श्वनाथजी की प्रतिमा पर व्रण ही व्रण हो गये। श्राविका दौड़ी हुई श्रीमद्के चरणोंमें आई और भयभीत होकर कहने लगी कि महाराज! मैं तो मर गई! इस प्रकार की महान आशातना मेरे द्वारा हो गयी, क्षमा कीजिये! आपके उपदेश पर मैंने ध्यान नहीं दिया, अब उपाय आपही के हाथ है। श्रीमद्ने उसी रात को यक्षराजजी से इस विषय में उपाय पूछा। यक्षराजजीने कहा—ऐसी आशातना होनेपर अधिष्ठाता देव तत्काल ही वहांसे चले जाते हैं पर मैं तो आपके लिहाजसे सेवामें उपस्थित हूं। श्रीमद्ने तीर्थजल और औषधि यक्षराजजीके द्वारा मंगाकर 'अष्टोत्तरी स्नात्र' करवाया जिससे सब आशातना दूर हो गयी। आज भी ध्यानपूर्वक देखने से श्रीगौड़ीपार्श्वनाथजी के बिम्ब पर थोड़े थोड़े व्रण के चिह्न दृग्गोचर होते हैं।

---

† पूर्वाचार्यों ने अशुचि आशातनादि कारणों से ही तरुणियों के लिये प्रतिदिन मूलनायक भगवान की अंगपूजा का निषेध किया है।

१ तीर्थंकर प्रतिमा का १०८ घड़ों से विशेष अनुष्ठान पूर्वक अभिषेक कराने को 'अष्टोत्तरी स्नात्र' कहते हैं। तप, उद्यापन, विघ्न निवारणादि विशेष प्रसंगों पर यह विधान किया जाता है। सं-१६५० में युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की आज्ञा से जयसोम उपाध्याय ने लाहौर में "अष्टोत्तरी स्नात्र विधि" बनाई जिसकी प्रति बीकानेर के ज्ञानभंडार में है।

गुदड़ी में शीत ज्वरारोप :—

कहा जाता है कि एक वार महाराजाधिराज आपके दर्शनार्थ पधारे; आप को उस दिन सियाहाऊ शीत ज्वर आया हुआ था। आप ओढ़ी हुई गुदड़ी से निकल कर आ विराजे और प्रकृत रूप से वार्तालाप करने लगे। महाराजा की नजर गुदड़ी की ओर गई तो देखा कि वह शीत-ज्वर प्रकोप से कांप रही थी। महाराजा ने निवेदन किया महाराज आप जैसे महापुरुषों के पास भी ज्वर आता है? आप आने हीं क्यों देते हैं? श्रीमद् ने कहा राजन् अपने संचित कर्मों का भोक्ता आत्मा स्वयं है अतः भोगने से ही छुटकारा होता है।

कोठारीजी पर कृपा :--

बीकानेर निवासी गिरधर कोठारी की मां आपश्री की परम भक्त थी। गिरधर के पिता नाहटों (संभवतः मदजी नाहटा) के यहां नौकरी करते थे। एक वार उन्होंने डांट फटकार बता कर कोठारीजी को नौकरी से अलग कर दिया। श्रीमद् जब आहार पानी के लिये गये यह वृतांत ज्ञात कर मदजी को समझाया पर उनके न मानने पर कहा जाता है कि श्रीमद् ने उन्हें महाराजा सूरतसिंह के पास धर्मलाभ संवाद प्रेषणार्थ नियुक्त कर दिया। हमेशा राज दरबार में जाने के कारण कोठारीजी की अवस्था अच्छी हो गई। मदजी नाहटा को किसी ने कहा था:—

"मदिया मत कर गीरबो, दुरजनिये ने देख।
ऐ नारायन वे नाथजी, वांरा भगवां भेख॥"

बीकानेर में श्रीमद् की स्मृतियां :--

बीकानेर में आप श्री के कई कार्य कलाप विद्यमान हैं। बीकानेर के बड़े उपाश्रय का तख्त, देवछंदा, दीवानखाना आदि आपके समय के हैं। नाहटों की गुवाड़ के आदिनाथ जिनालय के दरवाजे को उपदेश देकर सामने से खुलवाया क्योंकि सामने दरवाजा नहीं रहने से भगवान की दृष्टि बंद थी, अब राह चलते व्यक्ति को शत्रुञ्जयावतार श्रीऋषभदेव (सं० १६६२ चै० व० ७ में यु० जिनचंदसूरि प्रतिष्ठित) प्रभु के दर्शन हो ही जाते हैं। सं० १५६१ में प्रतिष्ठित श्री चिन्तामणिजी (वीकानेर का सर्व प्राचीन जिनालय) के मंदिर द्वार के दोनों ओर लगे हुए हाथियों को आपने ही यहां रखवाये थे। कहा जाता है कि पहले ये श्री नमिनाथ जिनालय में थे जो उस जमाने में शहर के किनारे और शूनसान जगह में अवस्थित था। अब बगीचा व उसमें से मन्दिर का नया दरवाजा हो जाने से इसकी शोभा बढ़ गई हैं। यह मन्दिर वच्छावत कर्मसी ने सं० १५ १ में बनाया था।

उदरामसर मेले का प्रारम्भ :-

वीकानेर से ४ कोश की दूरी पर स्थित उदरामसर के पास दादा साहब जिनदत्तसूरिजी का प्राचीन स्थान है। बालू के बड़े बड़े टीवों को पार करके वहां जाना होता है। श्रीमद् ने सं० १८८४ के मिती भादवा सुदि १५ के दिन वहां का "मेला" कायम किया। राज्य की ओर से रथ घोड़े सवार इत्यादि आने लगे तथा जनता भी सैकड़ों सवारियां लेकर वहां एकत्र होने लगी। आज तक यह मेला चालू है। दादासाहब

की पूजा व गोठ जीमनवार, वगैरह हुआ करते हैं। उस समय का बनाया हुआ सेवग हंसजी का गीत मिला है जो इस प्रकार है :—

गीत साणोर

मुदे महीपति हुकुम सुँ सिरै हुयो, मगरियो भादवा सुद पूनम भारी।
पीत सुँ दादा जिनदत्तसूर रै पगां सको, जावो भाव सुँ दुनी सारी ॥१॥
अथग अणपार साहुकार बहु आविया, तंबूड़ा कनातां पाल तणीया।
तेज घण एम दरबार-सद्गुर तणै, बड़ा सूं हगामा थाट बणीया ॥२॥
हरख घण केसरां हुंत सेवा हुवै, राग रंग वधै उचरंग रीतां।
सिरै गोठां थटां ऊमग ह्वै सवाया, कहीजै जगत में अखी कीतां ॥३॥
घमस घोड़ा रथां कहां मानव घणां, भलो हुय हजारां खलक मेलो।
श्रीय गुरुदेव नाराण परताप सूं, मंडायो खूब सदा सुख मेलो ॥४॥
इति गीत सेवक हंसजी रो कह्यो ॥

यति फतैचन्दजी और जीवराजजी से धर्मस्नेह :--

श्री कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा के यति फतैचन्दजी से आपका काफी स्नेह था नाल की दादावाड़ी में उन दिनों सभी शाखाओं के यति लोगों ने शालाएं बनाई थी। कीर्त्तिरत्नसूरि शाखा की शाला (प्रतोली द्वार के पास वाला मकान) के निर्माण होने पर श्रीमद् ने निम्न कवित्त द्वारा सूचना दी थी। इस पत्र का "पतित" शब्द श्रीमद् की लघुता का द्योतक है।

"पं० प्र० श्री १०८ श्री फतैचन्दजी साहिबां सूं पतित पं० नारन री। सदा वंदना। साधु संबधित साल विवस्था वर्णन यथा :—

सवैया चौवीसा

"साल रसाल विसाल निहाल कै, दूरजनसाल कै साल सलैगी,
डलैगी उत्तांन दिनाननतै जव, कातिक मास पुनै सिलगैगी;
जरिजैगी ताप संताप कवै न मिटै, मन वड़वा विन वड़वा सिलगैगी,
सीतई काल नई भई साल पै, साजन विन मन माहि जगैगी।"

इसी शाखा के वा० जयकीर्त्तिजी गणि (श्रीपालचरित्र कर्त्ता जीव राजजी) तथा सांवलजी से श्रीमद् का अच्छा सम्बन्ध था। श्री जिन-कृपाचन्द्रसूरि ज्ञानमंडार में श्रीमद् के साथ इन दोनों का चित्र था जिसे हमने ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह ग्रन्थमें प्रकाशित किया है श्रीमद् की रचनाएं सर्वाधिक इसी ज्ञानभंडार में पायी गयी थी। हमने यहाँ की प्रतियां से नकलें की थीं। खेद है कि अब इस भंडार की प्रतियें यत्र तत्र बिखर गयी है।

सं० १८८५ ज्ञानपंचमी के दिन आपश्री के उपदेश से हाकिम कोठारी उमेदमलजी के पुत्र जीतमलजी ने पं० प्र० फतै-चन्दजी को विशेषशतक (पत्र ४६) और निरयावलि सूत्र (पत्र ४६) की प्रतियां वहरायी थी जो श्रीजिनकृपाचन्दसूरि ज्ञानमंडार में विद्यमान थीं।

जैसलमेर नरेश का आमंत्रण व बीकानेर नरेश के अनुरोध से विहार स्थगित :—

आप को बीकानेर पधारे बहुत वर्ष हो गये थे। आप की इच्छा थी कि समाधिमरण बीकानेर में ही हो। फिर भी अन्यस्थानों

के नरेशों व श्रावकों के आग्रहवश कई बार विहार करने की तैयारी की तो महाराजा सूरतसिंह और उनके बाद महाराजा रतनसिंहजी [१] जो आपके परमभक्त थे, इस वृद्धावस्था में विहार करने से अत्यन्त अनुनय-विनय पूर्वक रोक लेते थे। जयपुर, किसनगढ़, जैसलमेर इत्यादि नगरस्थ श्रावकों एवं राजामहाराजाओं के पत्र आपश्री को बुलाने के लिये बराबर आते रहते थे। जैसलमेर के महारावलजी श्रीगजसिंहजी (राज्यकाल सं० १८७६—१९०२) एवं उनके दीवान बरढिया मुंहता साह श्री जोरावरसिंहजी भभूतसिंहजी के सुनहरे वेलबुटों वाले कई पत्र हमारे संग्रह में हैं जिनमें आपश्री से अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक जैसलमेर पधारने की प्रार्थना की गयीं है। सं० १८८९ मिती माघ सुदि ११ का प्रथम पत्र मिला है जिससे मालूम होता है कि पत्र-व्यवहार पहले से चालू था। दूसरा पत्र सं० १८९१ मिगसर वदि ३ का एवं तीसरा पत्र माघ सुदि ४ का है जिसमें महाराजा ने स्वयं वंदना लिखी है, चौथा पत्र सं० १८९२ माघ सुदि ५ का है जिसके साथ खास रुक्का भी विद्यमान है। इन चार पत्रों के अतिरिक्त और कई पत्र नहीं मिले, जो नष्ट हो गये प्रतीत होते हैं। श्रीमद् के दिये हुए पत्रों में एक पत्र सं० १८९० मिति पौष वदि ११ का मिला है

१ इनका जन्म सं० १८४७ में हुआ। सं० १८८५ में अपने पिता महाराजा सूरतसिंह का स्वर्गवास होने पर राज्याधिकारी हुए। ये भी अपने पिता की तरह श्रीमद् के परम भक्त थे। खरतरगच्छ के बड़े उपाश्रय व श्रीपूज्यों के प्रति बड़ा आदर रखते थे इनका सं० १९०८में देहान्त हुआ।

जिससे मालूम होता है कि आपने इस वर्ष विहार करने का विचार किया था। जब महाराजा रतनसिंहजी ने सुना तो वे स्वयं श्रीमद् के चरणों में पधार कर विहार न करने की स्वीकृति ले गये जो आपहीं के शब्दों से पाठकों को मालूम होगा। पत्र का आवश्यक अंश यहां अक्षरशः उद्धृत किया जाता है :—

"राजाधिराज काती वदि १ रै दिन को। भीमराजजी हस्तू मनै इसौ फुरमायो। एक हूं तैं कनैं वस्तु मांगसुं, सो जरुर मनें देणी पड़सी। मैं आ कई मैं कांगै खनै आप कांई मांगसी। पछै काती सुद १० रै दिन हजूर पधार्या। खड़ा रहि गया, विराजै नहीं, जद मैं अरज कीनी, महाराज विराजै क्यूं नहीं। जद फुरमायौ हूं मांगूं सो मनै दै तौ बैसूं। जद मैं अरज करी, साहिब फुरमावौ सो हाजर। जद फुरमायौ, तूं अठै सुं विहार रा परिणाम करै छै सो सर्वथा प्रकार विहार कोई करण देवूं नहीं। जद मैं अरज कीनी, हूं तो बीकानेर इण हीज कारण आयौ छौ। सो मनै वीस वरस उपरंत अठै हुय गया, म्हांरी चिठी आज तांई कोई नीकली नहीं। जिणं सूं माहरा विहार रा परिणाम हुवा छैं। जद फुरमायो म्हांरो ई पुण्य छैं। सो एक वार फलोधी जासूं। सो मैं आठ वार अरज करी परं न मानी। उपरंत मैं कह्यौ साहिबां री सीख विना जावूं नहीं ; जद विराज्या पछैं और वातां घड़ी चार तांई वतलाई। उठतां खड़ा रहि गया फेर फुरमायौ जो फेर बैठ जाऊं, जद मैं अरज कीनी, साहिबां री सीख विना कोई जावूं नहीं पछै आप पधारया। सो माहरौ दाणौ पाणी वलवान छै, तौ (पिण) एकवार तौ इण वात नै फेर उथेलसूं, पछै जिसो दाणो पाणी। इति तत्त्वम्।"

महारावलजी की वाञ्छापूर्ति :—

जैसलमेर के महारावलजी के पुत्र की वांछा थी और इसके लिये श्रीमद् से बराबर प्रार्थना कराते थे। आपश्री ने चैत सुदि १४ की रात्रि को यक्षराजजी से इस विषय में पूछा। यक्षराजजी ने प्रतिपदा के दिन आकर खुलासा किया कि इनके दो पुत्र का योग है पर दम्पति के सच्चिक्कन वीर्य्य के अभाव में बाधा है। श्रीमद् ने औषधि प्रयोग बताते हुए अफीम, भांग एवं सुरापान आदि मादक द्रव्यों के त्याग का निर्देश किया था। इस पत्र की नकल श्रीमद् के हाथ की लिखी हुई हमारे संग्रह में हैं।

उदरामसर दादावाड़ी का जीर्णोद्धार :—

उदरामसर ग्राम के बाहर दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी [1] का प्राचीन स्थान है उसके आस-पास बालू की प्रचुरता होने के कारण मंदिर नीचे धस गया था एवं दादासाहब के चरण भी ऊंचे उठा कर प्रतिष्ठित करने की आवश्यता थी। सं० १८८४ के आसपास जैसलमेर के बाफणों-पटवों [2] की बरात बीकानेर के सेठिया अमीचंद जी के यहां आई थी इस अवसर पर श्रीमद् के उपदेश से सेठियाजी ने गौड़ी पार्श्वनाथ जी के मन्दिर में सम्मेतशिखरजी का मन्दिर निर्माण करवा कर तीर्थाधिराज सम्मेतशिखर का संगमरमर का विशाल पट प्रतिष्ठित करवाया तथा जैसलमेर वालों ने उदरामसर स्थित दादासाहब

---

१ देखें हमारा "युगप्रधान जिनदत्तसूरि" ग्रन्थ।

२ यह खानदान राजस्थान में बड़ा प्रसिद्ध रहा है देखें जैन लेख संग्रह भाग ३

के मन्दिर का जीर्णोद्धार सं० १८८३ आषाढ़ वदि १० को कराया। मन्दिर को ऊंचा, उठा कर स्तूप इत्यादि निर्माण कराये गये। श्रीमद् के कथन से चरणों को ऊंचा उठा कर स्तूप में प्रतिष्ठित किया गया। कहा जाता है कि चरणों के नीचे पूर्व प्रतिष्ठा के समय जो वस्त्र रखा गया था वह बिलकुल नया निकला। जैसलमेर वालों ने संघ के ठहरने के लिये नौचौकिया एवं बीकानेर के संघ एवं यति लोगो ने अपने अपने स्थान बनवाये।

गच्छभेद :--

सं० १८९२ में श्रीपूज्य श्री जिनहर्षसूरिजी[1] के मण्डोवर में स्वर्गवासी हो जाने पर उनके पट्ट पर नवीन आचार्य अभिषिक्त करने के लिये यतिगण और श्रावक समुदाय में काफी मतभेद हो गया इसका निर्णय होने के पूर्व ही श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी को आचार्य पद दे देने से बीकानेर वालों ने श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी को सूरिपद दिया। यति समुदाय में भी कई इधर और कई उधर हो गये। श्रावकों में भी ऐसा ही हुआ। जैसलमेर वाले पटवा श्रीजिनमहेन्द्र-

---

१ आप वालेवॉं गांव के मीठड़िया बोहरा तिलोकचन्द की पत्नी तारा देवी के पुत्र थे। आपकी दीक्षा स० १८४१ में और आचार्य पद सं० १८५६ सूरत में हुआ था। सं० १८६६ में आपके नेतृत्व में राजाराम गिड़िया व तिलोकचन्द लूणिया ने शत्रुंजय का एक बड़ा संघ निकाला। बीकानेर का सीमन्धर जिनालय, सम्मेदशिखर पट्ट तथा कलकत्ता के बड़े मन्दिर की आपने प्रतिष्ठा की थी। सम्मेतशिखर, अंतरीक्ष, मक्सीजी, धुलेवा आदि तीर्थों की यात्राकी। सं० १८९२ मंडोवर में आपका स्वर्गवास हो गया। आप के पट्टधर श्रीजिनसौभाग्यसूरि हुए।

सूरिजी [२] के पक्ष में थे और बीकानेर के महाराजा रतनसिंहजी बीकानेर वालों के पक्ष में। कई वर्षों तक इस विषय में खींचतान और सिफारिसें चलती रही। इस विषय के कितने ही विवरण पत्र, चिट्ठियां और राज्यादेश पत्र दोनों गद्दियों के श्रीपूज्यों के पास व ज्ञान-भंडारों में विद्यमान है। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने इस ग्रन्थी को सुलझाने का पर्याप्त प्रयत्न भी किया होगा पर गच्छभेद तो हो गया सो हो ही गया इससे खरतर गच्छ की संगठित शक्ति बिखर गई। सं० १८९७ श्रावण बदि १ को जयपुर से संवेगी पं० मंगल ने श्रीमद् को पत्र दिया था जिसमें केवल इस विषय के ही समाचार हैं यह पत्र हरिसागरसूरि जी के संग्रह में हैं। इससे मालूम होता है कि यह विवाद वर्षों तक चला था।

स्वर्गवास :--

इस प्रकार ग्रन्थरचना, शासनसेवा तथा आध्यात्म-धारा में अपने जीवन का साफल्य करते हुए आप ९८ वर्ष की दीर्घायु में स्वर्गवासी हुए। अपनी अंतिम रचना श्री गौड़ी पार्श्वनाथ स्तवन में श्रीमद् स्वयं फरमाते हैं कि—

---

२ आप अलाय के सावसुखा रुपजी की पत्नी सुन्दरी के पुत्र थे आप का जन्म सं० १८६७ दीक्षा सं० १८८५ आचार्य पद सं० १८९२ में हुआ। आप बड़े प्रभावशाली आचार्य थे। अनेक स्थानों में आपने प्रतिष्ठाएं की थी जिनमें शत्रुजयस्थ मोतीशाह सेठ की टूंक उल्लेखनीय है। सं० १८९१ में जैसलमेर के पटवों ने आपके उपदेश से शत्रुंजय का विशाल संघ निकाला। इस संघ में तेईस लाख रुपये व्यय हुए, उदयपुर, जैसलमेर, कोटा, जोधपुर आदि नरेशों की सेनाएं साथ थी, जिनमें ४००० सैनिक थे। सं० १९१४ में इनका स्वर्गवास हुआ।

साठी वुध नाठी या सब कहि है, असीय खसि लोकोक्ति यही ।
हूं तौ अठाएं में भूलूं, मो में स्मृति मति केथ रही ॥२॥
गौड़ीराय कहो बड़ी वेर भई ।

सं० १८६८ में वृद्धावस्था के कारण आपका शरीर अस्वस्थ रहने लग गया था एवं स्मरण-शक्ति के ह्रास की बात आप स्वयं उपर्युक्त स्तवन में प्रभु से निवेदन करते हैं। अन्तिम अवस्था में समाधिपूर्वक मरण पाने के लिये अनसन, आराधना एवं ८४ लक्ष जीवायोनि क्षमापनादि की पद्धति जैन समाज में प्रचलित है। यति-समाज में प्रचलित पद्धति के अनुसार सं० १८६८ मिति आश्विन कृष्णा २ को जीवराशि टिप्पणिका की गयी, जो हमारे संग्रह में है। इसके बाद प्रथम आश्विन कृष्णा १३ को बीकानेर से उ० लक्ष्मीरंगजी ने अजीमगंज स्थित श्रीपूज्य श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी को पत्र दिया था जिसमें श्रीमद् के शरीर की अस्वस्थता के समाचार दिये थे, इसके उत्तर में दिया हुआ श्रीपूज्यजी का पत्र हमारे संग्रह में है जिसका आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"थांहरो कागद १ प्र। आसोज वद १३ को लिख्यौ आयौ समाचार लिख्या सो जाण्या अबकै कागद बड़ी देर सैं आया, सो कागद मास में २ जरूर दीया करज्यो और पं। प्र। श्री ज्ञानसार गणि रै शरीर की व्यवस्था लिखी सो जाणी, शरीर कौ यत्तन करावज्यो, सुखशाता पूछज्यो। १ दफै अम्हारै मुलाखात करणें की दिल में बहुत लाग रही है सो कह देज्यो अम्हे देस आवैं तितरे तो बैठा रहज्यो और कोई वस्तु पास में है सो शिष्य पं। चतुरभुज मुनि सपूत है इण कुं देणा ठीक है और राजाधिराज से पिण अपणै कार्य आश्री एकाइत करता रहेज्यो ×× सं १८६८ रा मिती द्वि० आसोज सुदि १"

यह पत्र बंगाल जैसे दूर देश से आया था उस समय पत्रों के पहुंचने में पर्याप्त समय लगता था। वास्तव में श्रीमद् का स्वर्गवास इस पत्र लेखन से लगभग १५ दिन पूर्व हो चुका था। लांबियां के यति सुगनसुन्दरजी के पास एक बहुत बड़ी संग्रह पोथी + है, जिसमें कितनी ही याददास्तें लिखी हुई हैं। जिनमें याददास्त के तौर पर पहले उ० श्री क्षमाकल्याणजी के स्वर्ग की नोंध करते हुए श्रीमद् के "सं १८६८ मिती द्वितीय आश्विन बदि ३ अदीतवार संवेगी बाबाजी नराणजी देवलोक हुआ" लिखा है।

इसके बाद मिगसर बदि १३ को आपके शिष्य क्षमानन्दन ने अपनी जीवराशि-टिप्पनिका की, जिसमें आपका नाम नहीं है क्योंकि इतः पूर्व आपका स्वर्गवास हो चुका था।

+ इस पोथी के अवलोकन की भी एक उल्लेखनीय कथा है। प्रस्तुत जीवन परिचय लिख कर प्रेस में देनेकी तैयारी थी पर आपकी स्वर्गतिथि अज्ञात रहने से बड़ा विचार होता था कि इतने बड़े प्रभावशाली व्यक्तिके स्वर्गतिथि का मात्र १०० वर्ष जितना कम समय होनेपर न लगा सके यह एक बड़ी कमी रहगई, पर निरुपाय थे। अकस्मात् फलौधी तीर्थ के पार्श्वनाथ विद्यालय की व्यवस्था सम्बन्धी मिटिंग में भाग लेने का निमन्त्रण मिला उधर विनयसागरजी भी वहीं पधारे हुए थे इनका भी विहार बीकानेर की ओर कराना था फलतः गत ज्येष्ठ कृष्णा में वहां जाना हुआ। बातचीत के शिलशिले में मुनि विनयसागर जी ने लांबियां के यति जो उस समय वहीं थे, के पास एक बड़े खरतर गच्छीय गुटके का पता चला। तत्काल मैंने उसे देखने की उत्सुकता प्रगट की और मुनिश्री के साथ यतिजी के कमरे में जाकर उसे ले आया। इधर उधर के पत्र पलटते अचानक मुझे याददास्त शीर्षक के नीचे लिखी क्षमाकल्याणजी की स्वर्गतिथि के नीचे ही श्रीमद् के स्वर्गवास की याददास्त देखने को मिली जिसे पढ़ते ही अपार आनन्द हुआ।

समाधि मरण की प्रतीक्षा में आप चिरकाल से उत्कंठित * थे, सहज आत्मस्वभाव में लीन होकर अपने भौतिक देह का त्याग किया। राजभवन एवं जैन और जैनेतर समाज में शोक छा गया। राजा और प्रजा ने अपना निस्पृह उपकारी शिरोछत्र खो दिया।

समाधि मन्दिर :—

आप का अग्निसंस्कार भी आपकी प्रिय साधना भूमि—श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ जी के मन्दिर के निकट किया गया था वर्त्तमान श्री सेठ जी के बनवाये हुए श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ मन्दिर के अहाते में पीछे दाहिनी ओर आपका समाधि-मन्दिर बना हुआ है जिसमें सामने आले में आपश्री की चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। जिनपर निम्नोक्त लेख उत्कीर्णित हैं:—सं० १९०२ वर्ष माघसुदि ६ पं० प्र० ज्ञान-सारजी पादु......

---

* अन्त समाधिमरण शुद्ध देज्यो, ज्ञानसार वीनति मानेज्यो।

† महाराजा रतनसिंहजी को दिए हुए श्रीपूज्य श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी के पत्र से :—

"तथा श्री हजूर से अरजी मालम रहै तथा श्रीज्ञानसार गणि इस वखत में बहोत अच्छया योग्य साधु था। बड़े उपाश्रे के पूठियादार वगैरे समस्त साधु समुदाय के बहोत सहायकर्ता था। जो साधु आपणौ दुःख आय के कहतौ थो तिण कौ दुख श्रीहजूर से मालम करके निवर्तन कराय देते थे। श्रीहजूर पिण उणांरौ मोकलौ ही मुलायजौ राखता था। तिण सें बहोत लोकां रौ उपगार करता था, सो उणांरी तौ आयु स्थिति पूरण हुय गई है, सो हिवै श्री हजूर मालक है। मि० फागुण बद ३ सं० १८९८ रा।

शिष्य-परिवार :—

आपके हरखुख (हितविजय), खूबचन्द (क्षमानन्दन), सदा-

सुख (सुखसागर) [१] आदि कई शिष्य थे। जिनमें से हरसुख (हितविजय) दीक्षा सं० १८३५ फा० व० ११ और खूबचन्द (क्षमानंदन) की दीक्षा सं० १८४५ में श्री जिनचंद्रसूरि के करकमलों से हो चुकी थी। सदासुखजी सं० १८६१ मि० सु० २ जाणीयाणा में जिनहर्षसूरि के पास दीक्षित हुए सं० १८६७ चैत्र शुक्ल ११ को खूबचन्दजी और सदासुखजी ने किशनगढ़ से जयपुर के श्रावक ताराचन्दजी को पत्र दिया था।

एकबार खूबचन्दजी की मरणांत व्याधिग्रस्त अवस्था में श्री गौड़ीपार्श्वनाथ भगवान की कृपा से शान्ति हुई थी जिसका विशद उल्लेख श्रीमद् ने स्वयं श्रीगौड़ीपार्श्वनाथ स्तवन में किया है जो इस ग्रन्थ के पृ० १२४ में मुद्रित है, आवश्यक अंश उद्धृत किया जाता है :—

करी मोहि सहाय गोड़ीराय, करीय सहाय।
खूबचंद की मंद विरियां खबर लीनी आय। गौ० ॥१॥
भ्रम प्रलाप अलाप मंदौ, त्यौर नाहीं जस ठाय।
आंख कीकी चढी ऊंची, घूमरी बलिखाय। गौ० ॥२॥
नींद भंग उमंग नांही, मन न अपने भाय।
उछलन मिस नसा दसदिस, झाला दें जमराय। गौ० ॥३॥
सामि कारज करयौ सांमी, लाज राखी ताय।
मो पतित की धवल धींगे, विपद दीध धकाय। गौ० ॥४॥

---

१ इन्होने सं० १८८६ में उदरामसर दादाजी में शाला बनाई थी जिसका लेख इस प्रकार है :—

"जं० भ० श्रीजिनलाभसूरि प्रपौत्रेण पं। सुखसागरेण श्याला कारिता सं० १८८६ वर्षे वैशाख सुदि ५।

सं० १८९४—९८ के वीकानेर चतुर्मास विवरण में ज्ञानसारजी को ठा० ७ लिखा है अतः उस समय आपके शिष्य प्रशिष्यादि विद्यमान होंगे। पत्रों में चि० किरपा, पं० चतुरभुज पं० भेर जी, चिरं लखमण[१] नाम भी पाये जाते हैं। श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी के पत्र में शिष्य पं० चतुरभुज मुनि सपूत हैं लिखा है, इनके शिष्य जोरजी थे जो सं० १९५५ में स्वर्गवासी हुए थे।

सं० १८९८ ज्येष्ठ सुदि १३ को श्रीपूज्यजी ने अजीमगंज से वीकानेर पं० क्षमानन्दन, सुखसागर को पत्र दिया था। मिती मिगसर वदि १३ को क्षमानन्दन ने जीवराशि टिप्पणिका की, अतः इस समय तक ये दोनों विद्यमान सिद्ध होते हैं।

---

१ लछमण जी का उपाश्रय वेगाणियों की पोल में था, इनके कोई शिष्य नहीं रहने से श्रीमद् की शिष्य संतति विच्छेद हो गयी।

श्रीपूज्यजीके दफ्तर की दीक्षा नन्दी सूची से प्रधान शिष्य-त्रयों के अतिरिक्त निम्नोक्त शिष्य प्रशिष्यों का दीक्षा समय इसप्रकार है :—

१ चतुरो (चन्द्रविशाल) सं० १८६९ मा० शु० १० बीकानेर में जिनहर्षसूरिके दीक्षित

२ भैरा (भक्तिसिंह) सं० १८७६ मा० शु० १२ बु० ग्वालेर ,, (ज्ञानसार पौत्र शि०)

३ लालो (लक्ष्मीशेखर) सं० १८७९ फा० व० ९ वीकानेर ,, (ज्ञानसार शि०)

४ इंदरो (अमरप्रिय) सं० १८९० वै० व० ८ मृ० ,, ,, (क्षमानन्दन शि०)

५ नंदो (नीतिप्रिय) ,, ,, (सुखसागर शि०)

नरेशों पर प्रभाव :—

श्रीमद् बड़े सामर्थ्यशाली विद्वान, निष्पृह, सर्वतोमुखीप्रतिभासंपन्न आत्मानुभवी योगीश्वर थे अतः इनका प्रभाव जैन व जैनेतर समाज में सर्वत्र व्याप्त था। जयपुर-नरेश प्रतापसिंहजी व माधवसिंहजी उदयपुर के महाराणा ज्वानसिंह जी के दरबार में आपका अच्छा सम्मान था। जैसलमेर के रावल गजसिंह जी व बीकानेर नरेश सूरतसिंह जी व रतनसिंह जी आपके परमभक्त थे। जिनके खास रुक्के व पत्रादि का कुछ उल्लेख पिछले पृष्ठों में आ चुका है। ये उभय महाराजा घण्टों तक आपकी सेवा में रहते थे। पाठकों की जानकारी के लिये महाराजा सूरतसिंहजी के पत्रों के कुछ अवतरण यहां दिये जाते हैं :—"स्वस्ति श्री सरब उपमा विराजमान बावैजी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री नारायण देव जी सु सेवग सूरतसिंह री कोड़ एक दंडोत नमोनारायण वंदणा मालुम हुवै अप्रंच क्रिपापत्र आपरो आयो वांचीयां सुं वड़ी खुसवखती हुई आपरै पाये लागां दरसण कीयां रो सो आणंद हुवो आपरी आज्ञा माफक मनसा वाचा क्रमणा कर कही बात में कसर न पड़सी आपरी इच्या माफक सारी बात रो आनंद खुसी छै नारायण री आज्ञा में फेर सनेर करसी तो बाबाजी उतो नारायण रे घर रो चोर हरामखोर हुसी जै रो अठे उठे दोयां लोकां बुरो हुसी वैने पछे त्रिलोकी में ठौड़ न छै। आपरो सेवग जाण सदा क्रिपा महरवानी फुरमावै छै जै सुं विशेष फुरमावण रो हुक्म हुसी, दूजो अरज सारी घरमै नु कही छै सो मालुम करसी सं० १८७० मिती मिगसर सुदि ६"

"आपरो दरसण करसुं पाए लागसुं उ दिन परम आनंद रो नारायण करसी आप इतरे पैला कठेइ पधारसो नहीं आ अरज छै दुजी तरै तो सारा मालम छै सेवग टाबर री तो सरम नाराय(ण) नु वा आपनु छै हुतो आप थकां निचित छुं।"

"आपरो उवारियो हमें उवरसुं।"

"आपरी भगत में निहचे में तो आ सरीर रहसी इतरै मनसा वाचा कर कसर न पड़सी और म्हांने तो परमेश्वर संतां बिना दूजो चवदै भवन न दीसै छै कोई दूजो दीसे तो परमेसर थां संतां नै छोड़ वैने झालुं, सो दूजो कोई ही छै नहीं"

"नारायण रो ही सागी सरूप आप छो हमैं नारायण नु का वांरा आप परमभगत छो संत छो का चिंतामण जी नारायण रो सरूप छै आपरी अरज सुं वां साहिबां नै सरम छै आपरै दरसन करण री मन में बड़ी अभिलाषा रहैं छै सो आप क्रपा फुरमायर दरसण दीजसी जरे हुसी आपसुं जोर तो न छै। मनै तो आपरो टाबर निजसेवक जनम जनम रो जाणसी सेवग जाण सदा क्रिपा महरबानी फुरमावो छो जैसुं विशेष फुरमावण में आसी"

जैसलमेर के मुंहता जोरावरमल मभूता ने महारावलजी की तरफ से लिखा है कि—

"आजरै समें में इसा सतपुरुष थोरा हुसी बड़ा उपकारी है"
"आप सारी बात जाणौ छो आपसुं वैद्यक दुजी छानी न छै"

पार्श्व यक्ष प्रत्यक्ष :—

आपकी असाधारण योगशक्ति के प्रभाव से नर और नरेश्वरां

की तो बात ही क्या पर देव भी आपकी सेवा में सर्वदा नतमस्तक रहा करते थे। सं० १८८४ में कवि कृपाराम ने आपकी स्तुति में लिखा है कि—

"काला गोरा सब बीर कह्या में, पूरण परचा यु देवै
चौसठ योगिन सदा गुरां रे, अष्ठ पहर हाजर रैवै।

★ ★ ★

यक्षराज की महर हुई है कमी न रेवैं अबकांई।३।
चिन्तामण स्वामी सचराचर, पूरण परचा यूं देवै
महाराज की कृपा मोटी, हिल मिल के वातां केवै।।४।।"

भगवान श्रीगौड़ी पार्श्वनाथ स्वामी पर आप की पूर्ण भक्ति थी अतः श्री चिन्तामणि पार्श्वयक्ष आप से बड़े प्रसन्न रहते थे व प्रायः रात्रि के समय उपस्थित होकर आपसे वार्तालाप किया करते थे। बीकानेर महाराज सूरतसिंहजी के खास-रुक्कों में अनेकवार यक्षराज जी की आज्ञा व प्रश्न—समाधानादिका जिक्र आया है। इसी प्रकार जैसलमेर के महारावल गजसिंहजी के पुत्र नहीं था और उन्होंने अपने खास रुक्कों में इसके लिये यक्षराज जी से अर्ज करने की आग्रहपूर्ण प्रार्थना की जिसके उत्तर में श्रीमद् ने जो लिखा उसकी नकल का आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

"चैत्र सुदि १४ पाछली पुहर दोढ रात्र रह्यां श्री पंचोई यक्षराजजी पधार्या मैरुजी आपरै हांथ सूं उणां री आज्ञा प्रमाणै पूजापौ धर्यो छौ सो लीयौ, उणारात्र फुरमायो पूनम री

रात्र आवस्यां जद इण बात रो जवाब देस्यां मांहरी तरफ री मैं अरजकरी आ लज्या आपरै हाथ राखणी हैं। आज सूधी आप लज्या राखी पिण आ लज्या राख्यां सुं सर्व सही छै नहीं तो पाछली राखी सोई निकमी छै। इतरी मै माहरी उण रात्र अरज करी। पूनिम रौ फुरमाय गया था आवणरौ सो पूनिम रै दिन तौ आया कोई नहीं। एकम रै दिन पाछली घड़ी छः रात्र रह्यां पधार्या जद में अरज कीनी रावलजी महाराजां रै पुत्र री बांछा छै सो अरज करागौ छै, जद फुरमायो पुत्र दोय रो इणां रे जोग छै…" इत्यादि।

आयुर्वेद ज्ञान :—

गत दो-ढाई सौ वर्षों में यति समाज में वैद्यक ज्योतिषादि ज्ञानका अच्छा प्रचार रहा है फलतः एतद् विषयक अनेकों ग्रन्थ आज भी जैन यतियों द्वारा निर्मित उपलब्ध हैं। अपनी प्रौढावस्था में श्रीमद् वैद्यक विद्या में प्रसिद्ध हो गये थे। पूर्व देश यात्रा के समय मुर्शिदाबाद में कवि जीवराज ने आपकी स्तुति में लिखा है कि :—

"बैद गुल्चेत हेत जाणै नब नाड़ी कौ
करत इलाज ताकौ होत कल्याण जी
कहै कवि जीवराज बड़ी ठौर मानि तांकी
जस को प्रकाश तासों जाणत सुजाण जी
रायचन्द जी के सिष्य आवै मकसुदाबाद
सुणियो उदार में यतीश्वर नराण जी

★ ★ ★

वैद्यक निधान माझि धनंतरि सो पान जस गच्छ चौरासी मांझ ओपे सरताज है।

अजमेर में कवि नवलराय ने भी आपके प्रसंशात्मक कवित्त में वैद्यक, ज्योतिष, मंत्रतंत्र, कवित व राजनीति आदि में आपको विशारद बतलाया है। जयपुर नरेश के पट्टहस्ति की चिकित्सा का प्रवाद आगे लिखा जा चुका है। जैसलमेर नरेश तथा कितने ही दूसरों के पत्र आप के आयुर्वेद विशारद होना सूचित करते हैं। इस प्रकार आप एक कुशल वैद्य थे जो द्रव्य और भावरोग (रागादि दोषों) को विनष्ट करने में समर्थ थे।

कला नैपुण्य :—

आपश्री बड़े से लगाकर छोटे सभी कार्यों में सिद्धहस्त थे। हस्तलिपि आपकी बड़ी सुन्दर थी। ज्ञानोपकरणों का निर्माण आप बड़ी मजबूती से करते थे। आपके हाथ से बने पूठे, फाटिया, पटड़ी आदि आज भी "नारायणसाही" नाम से विख्यात हैं जो बड़े मजबूत व कलापूर्ण है। आपने स्वयं अपने विहरमान वीसी के १२ वें स्तवन में लिखा है कि :—

"हुन्नर केता हाथे कीधा, ते पिण उदय उपाये सीधा,
जस उपजायो जस उदयें थी, मंद लोभ ते मंदोदयथी ॥ ॥

कवि नवलराय ने आपके कवित्त में लिखा है कि :—

"कर्म विश्वकर्मा सौ, हुन्नर हजार जाके,
वैद्यक में जान सब, ज्योतिष यंत्रतंत्र को"

आपके प्रत्येक कार्य में कला का दर्शन होता है। साधारण

से साधारण बातों में भी कुछ नवीनता और आपकी अपनी छाप रहती थी। आपकी रचनाओं में सम्बन् सूचक शब्दांक प्रचलित परंपरा से भिन्न जैन पारिभाषिक पाये जाते हैं जैसे—प्रवचन माता[८], सिद्ध[१], भय[७], समिति[४], सत्ता[१], निश्चयनय[१]।

वाह्य मुद्रा :—

आप साधुवेष में रहा करते थे व अपने स्वल्प उपगरणों को अपने स्कन्धों पर धारण कर पैदल विचरते थे। श्री सिद्धाचल आदि जिन स्तवन में स्वयं—"वृद्ध वयै पग पंथ खंधो पगरणावही, कंटक पीड़ा पगतल घास्यै दुःसही"—लिखते हैं। आपके कतिपय चित्र भी उपलब्ध हैं तथा हमारे संग्रह का एक पत्र इस विषय में महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालता है जिसका आवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"॥ ॐ नत्वा श्री बाबाजी साहिबां सों वंदना १०८ वार रिखड़े की, आपके गुणग्राम याद करता हूं, हूं किसी लाय (क) हूं नहीं, कृतकृत्य क्योंकर हूंगा मरण तो आया इहां कुछ नहीं हूं कमाया, एक आपके दर्शन तो पाया बाकी जनम रे गमाया। अब वह मुनि-मुद्रा, कान पर चसमा, ओघा कंधे पर, हस्त में तमाखू डब्बी, ठुमक ठुमक चाल, मुखसे वचनामृत झरतादिक अनेक आनंदकारी भावमयी माधुरी सूरत कब देखूंगा धाया अब कहां दरसन पाऊंगा, जो है पाया इस जनम में और तो कछु नहीं मैं कमाया एक यही दर्शन अपूर्व पाया इस ध्यान से जनम जनम का पाप गमाया इतना तो

खूबही पूण्य कमाया, आप ध्यान में मुझे निर्बुद्धि को रखोगे तो मैं धन्य धन्य कहाया सिवाय इसके और कुछ है नहीं।"

"पत्र बावाजी श्री १०८ ज्ञानसार जी महाराज जी के चरणों में"

लघु आनन्दघन :—

आपने अपने दीर्घजीवन का अधिकतर भाग आध्यात्म ज्ञान-दिवाकर श्रीमद् आनन्दघनजी महाराज के स्तवनों तथा पदों के मनन, अध्ययन, परिशीलन व आलोचन में बिताया था अतः आपके जीवन में आनन्दघनजी का गहरा प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था आपश्री के पद व स्तवनादि में वह स्पष्टतः दृग्गोचर होता है। आपने अपने साहित्य, चौवीसी बालावबोध आदि सभी टीकाओं व प्रश्नोत्तर ग्रन्थों में पचासों जगह आनन्दघनजी के पद व स्तवनों के अवतरण उद्धृत किये हैं, उनके आत्मानुभव व रहस्यमय वाक्यों को जितना आपने समझा था, दूसरे किसीने नहीं। आप उनके साहित्य परिशीलन द्वारा स्वयं आनन्दघनमय हो गये थे अतः स्वर्गीय श्रीजयसागरसूरिजी के लिखे अनुसार यदि आपको 'लघु आनन्दघन' नाम दें तो सार्थक और सर्वथा संगत ही मालूम देता है। आनन्दघन चौवीसी के चिरकाल मनन की कथा श्रीमद् स्वयं सुविधिनाथ स्तवन की प्रस्ताविका में भी इसप्रकार लिखते हैं :—

"मैं ज्ञानसारे मारी बुद्धि अनुसारै सं० १८२९ थी विचारते विचारतो सं० १८६६ श्री कृष्णगढ़ मध्ये टव्वो लिख्यो परं मैं इतरा वरसां विचारतांही सी सिद्ध थई—"

आपके पदादि में भी आनन्दघनजी का प्रभाव स्पष्ट हैं।

आत्म परिचय :—

श्रीमद् ने अपनी कृतियों में अपना परिचय और दिनचर्या के सम्बन्ध में जो लिखा है उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया जाता है :—

"वंश ऊकेश लिंग जिन दरसरा, रूप रंग वल भाखा
प्रगट पंच इन्द्री नर हुन्नर, पूरण आयु प्रभाखा ॥ २ ॥
(वहुत्तरी पद १६ वां)

वहुत्तरी के ५२ वें पद में श्रीमद् ने अपनी चर्या का अच्छा वर्णन लिखा है पाठकों को इस ग्रन्थ के पृ० ६४ में देखना चाहिये आनन्दघन चौवीसी बालावबोध में—"हिवै पं० ज्ञानसार प्रथम भट्टारक खरतर गच्छ संप्रदाई वृद्ध वयोन्मुखियै, सर्व गच्छ परंपरा सम्बन्धी हठवाद स्वेच्छायें मूकी एकाकी विहारियैं, कृष्णगढ़ै सं० १८६६ बावीसी नूं अर्थ तिमज बे स्तवन करी तेहनो आशय आगल पोतेंज लिखैं।"

लघुता :—

मानव को ऊंचा उठाने में लघुता बड़ी सहायक है। "लघुता से प्रभुता मिले" वाक्य की सार्थकता आपमें पूर्णतः सन्निहित थी। इतने बड़े विद्वान, गीतार्थ, वृद्ध, उत्कृष्ट कवि और सर्वमान्य होते हुए भी अपने को इन्होंने सर्वदा लघु ही माना और लिखा। जो राजा, महाराजा, साधुसंघ या श्रावकवर्ग इन्हें परमात्मा के अवतार रूप मानते थे, श्रीमद् उन्हें पत्रादि देते समय उनके लिए सम्मान सूचक शब्द लिखते हुए अपने लिये "तूं" जैसा लघु शब्द लिखा है। आपकी कृतियों से लघुता के कुछ अवतरण यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

"वाह्य कष्ट देखाड़ी मुझ सरिखा वणा,
वंचै मुगध नै दै उपदेश सुहामणा"

(शत्रुंजय स्तवन पृ० १३७)

ज्ञानसार नाम पायो ज्ञान नहिं गेहरा।

(आदिजिन स्तवन पृ० ११५)

"हूं महा मंदवुद्धि, शास्त्र नु परिज्ञान किम्पि नहीं। तेहथी छोटै मुंहै मोटाओनी वात किम लिखाय"

(आध्यात्म गीता वाला० पृ० ३१२)

"हूं महा मूर्ख शेखर, कर्त्ता महापंडितराज"

(वही पृ० ३२८)

हमसे मैंसे भेषधर, कीच कीयौ इक मेक,

(पृ० १७६ मति प्रबोध छत्तीसी)

"मुझ जेहवा वंचकी वाह्य क्रिया कलाप दिखावी नै मुग्ध लोकोने स्वमत आदरवा कारणै"

(पृ० ३६० विविध प्रश्नोत्तर)

"मुझ जेहवा भ्रष्टाचारियो नी संगते शान्ति स्वरुप न पामें।"

(आनन्दघन चौवीसी शान्ति स्त० वाला०)

निष्पृहता :—

कहा जाता है कि एक बार आप उदयपुर पधारे। आपके सद्गुण एवं सिद्धियों की प्रसिद्धि सर्वत्र व्याप्त थी। जब मेवाड़पति महाराणा की दुहागिन (कृपारहित) राणी ने सुना तो वह

देखिये प्रश्नोत्तर पत्र पृष्ट ४०८।

भी प्रतिदिन श्रीमद् के चरणों में आकर निवेदन करने लगी कि गुरुदेव कोई ऐसा यन्त्र दीजिये, जिससे महाराणाजी की अप्रसन्नता दूर हो और मैं उनकी प्रियपात्र हो जाऊं ! श्रीमद् ने बहुत समझाया, पर राणी किसी तरह न मानी और यंत्र देने के लिए विशेष हठ करने लगी। तब श्रीमद् ने एक कागज के टुकड़े पर कुछ लिखकर दे दिया। राणी की श्रद्धा और श्रीमद् की वचन-सिद्धि से ऐसा संयोग बना कि महाराणाजी की उस राणी पर पूर्ववत् कृपा हो गयी। श्रीनाराणजी बाबा के यंत्र वशीकरण की बात महाराणाजी तक पहुंची और उन्होंने यंत्र के सम्बन्ध में इनसे पूछताछ की। श्रीमद् ने कहा "राजन् ! हमें इन सब कार्यों से क्या प्रयोजन !" जांच करने के लिये यंत्र खोलकर देखा गया तो उसमें "राजा राणी सुं राजी हुवे तो नराणे ने कंइ, राजा राणी सुं रूसै तो नराणै नै कंई" लिखा मिला। इसे देखकर महाराणाजी आपकी निस्पृहता और वचनसिद्धि पर बड़े ही प्रभावित हुए। इसके बाद महाराणा भी आपके अनन्य भक्त हो गये थे। श्रीमद् की कृतियों में महाराणा ज्वानसिंह आशीर्वाद नामक कवित्त तथा उसकी वच-निका उपलब्ध है जिससे भी आपका महाराणाजी के वंश से अच्छा सम्बन्ध मालूम होता है। इस कवित एवं वचनिका में रचयिता का नाम तो नहीं है पर यदि श्रीमद् ने उनकी रचना की होगी तो बीकानेर में रहते ही, क्योंकि महाराणा ज्वान सिंहजी का राज्य-काल उदयपुर के इतिहास के अनुसार सं० १८८५ से १८९५ तक का है उस समय श्रीमद् बीकानेर ही थे।

अपने पिछले जीवन में समस्त प्रवृत्तियों में भाग लेते हुए भी आप सर्वथा निर्लेप रहते थे। अध्यात्म और योग की गहरी अनुभूति में योगी के जलकमलवत् निर्लेप रहने का उल्लेख मिलता है, आप उस अवस्था को प्राप्त कर चुके थे फलतः व्यवहारिक क्रियाओं को सम्पादन करते हुए भी आप उससे निर्लेप रहते थे। नामकी वाञ्छा से आप सर्वदा दूर रहे। बीकानेर के गौड़ीपार्श्व-जिनालय, दादाबाड़ी, उपाश्रय आदि में जीर्णोद्धार तथा अन्य नाना प्रवृत्तियां आपके उपदेशों के फलस्वरूप हुई थीं पर आपने शिलालेखादि में कहीं अपना नाम नहीं आने दिया।

आप उच्च कोटिके टीकाकार और समालोचक थे। श्रीमद् आनंदघनजी, देवचंदजी,[1] यशोविजयजी आदि के ग्रंथों पर विवेचन लिखते समय आपने सच्चे समालोचक का कर्त्तव्य पालन करने के नाते श्रीमद् देवचंद्रजी, ज्ञानविमलसूरिजी तथा मोहनविजयजी आदि विद्वानों की बड़ी ही मार्मिक, स्पष्ट और निर्भयतापूर्वक समालोचना की है। इन टीकाओं तथा आलोचनाओं से आपके प्रखर पाण्डित्य और अप्रतिम प्रतिभा का सहज पता मिलता है। इन में विशेषता

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी का आध्यात्म अनुभव और द्रव्याणुयोग का ज्ञान अत्यन्त विशाल था। आपकी रचनाओं में जैन तत्त्वज्ञान जैनाचार का रहस्य और भक्ति कूट कूट के भरी है। आपके अनुभव वचन की छाप पाठक को आपकी छोटी से छोटी रचना में भी मिले विना नहीं रहेगी। श्रीमद् बुद्धिसागरसूरि ने आपकी रचनाओं पर मुग्ध होकर छोटी-बड़ी समस्त रचनाओं का संग्रह बड़े प्रयत्नपूर्वक किया और आध्यात्म ज्ञानप्रचारक मंडल की ओर से

यह है कि आलोच्य महापुरुषों की गुरुता व अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए विनयपूर्वक अपने उद्गार लिखे गये हैं। यहां पाठकों के परिज्ञानार्थ, श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत आत्मगीता बालावबोध से कुछ अवतरण दिये जाते हैं।

"फिरी चवदमी गाथा ना त्रीजा पद "पर करतार" कह्यु। पनरमी गाथा ना बीजा पद मां "करै कर्म वृद्धि" एहवु कह्यु। ते परकरतार मां, करै कर्म वृद्धि मां रहस्यार्थ अभिन्न पणो ज सम्भवे छै। नें आनुपूर्वी पणैं फिरी अक्षर घटनायें तो भिन्न दिसै छै, पर महाकविराजे एतलु न विचार्यु हस्यै पर प्रत्यक्ष विरुद्ध जाणी नें आटलं जणाव्यु छैं। फिरी हु महामन्दबुद्धि छु। तेथी ए स्थाने सुज्ञ पुरसें विशेस्यापणे ए रहषार्थ प्रज्ञागोचर करवु। परं एऊनी चोवीसी (मां) पिण रहस्यार्थ पुनरुक्ति दूषणे दूषित छै। ते लिखवाने पत्र मां स्थानक नथी।"

श्रीमद् देवचन्द्र भाग १—२ नामक विशालग्रन्थों में उन्हें प्रकाशित करवाया है। श्वे० जैनसमाज में श्रीमद् आनन्दघनजी के पश्चात् आध्यात्म तत्त्ववेत्ता के रूप में आपका ही नाम लिया जाता है। श्रीमद् ज्ञानसारजी ने जो आपको एक पूर्व का ज्ञान होने का लिखा है वह आपके असाधारण पाण्डित्य का परिचायक है। आपका जन्म बीकानेर के समीपवर्त्ती गांव में लूणिया तुलसीदास की पत्नी, धनबाई की कूक्षि से सं० १७४६ में हुआ था। सं० १७५६ में आपकी दीक्षा हुई प्रारंभिक विहार राजस्थान व सिन्ध में, फिर गुजरात सौराष्ट्र में अधिक रूप से हुआ। युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी की शिष्यपरंपरा में वा० दीपचन्दजी के आप शिष्य थे सं० १८१२ में आपको वाचकपद मिला और उसी वर्ष अहमदाबाद में आपका स्वर्गवास हुआ।

"ए वर्त्तमान २०० विस्से वरसो ना काल मां एहवा कविराजान अन्य थोड़ा गिणाय तेहवा थया, नैं जाणपणों पण अति विशेष हतूं । नैं हुं महामन्दबुद्धि शास्त्र नुं परिज्ञान किमपि नहीं तेहथी छोटै मुंहें मोटाओ नी वात किम लिखाय । परं श्रावक नैं अति आग्रहै मैं टब्बो करवा मांड्यौ । तिहां जिम योजना मां सम विसम होय तिम लिख्युं जोइये तेहथी लिखूं । "सद्गुरु संग" वली आगल कह्यूं । "करै गुरुरंग" । पुनरपि "शुद्ध गुरुयोग थी" । एम वे गाथा मां त्रण ठिकाणै गुरु शब्द गूंथ्युं ते पुनरोक्ति दूषणें दूषित कविता छै। आधुनिक सहिजना कवि ते पिण ए दूषण तौ टालैं जौ एहवें मोटै कवे ए मोटुं दूषण कां न टाल्युं ए विचारवुं"

"स्वगुण द्रव्यपर्याय नें अभावै कर्त्ता कारण कार्यनी एकता न संभवै न निराबाध पणुं संभवै तेथी "स्वगुण आयुध थकी कर्म चूरै" ए भाव प्रथम गूंथवुं योग्य प्रगट जणाय छै तेनै अभावै कारकचक्र स्वभावी सम्पूर्ण साध्यने किम साधी सके पिण हूं महा मूर्खशेखर कर्त्ता महापण्डितराज परं विबुधैर्विचारणीयं ।"

"पोताना आत्मानै चिंतवन करनै ध्यावै, इहां धर्म ध्यान सूत्रकारैं, गुंथ्यौ तेतौ नीचले गुणठाणैं रह्यौ । नैं एज गाथा ना चौथा पद में नरमोही नैं विकल्प जाय, इस्यौ गुंथ्यौ ते तो एता तो क्षीणमोह बारमै गुणठाणै नी वात छै परं मनै तो गूंथ्या प्रमाणैं अर्थ करणौं ।"

"अड्त्रीसमीगाथा नां अंतिम पद मां अवाह पद गूंथ्यौ आंई ३९ गाथा में निराबाध पद गूंथ्यौ तिहां अवाह निरावाध ए वे शब्द ए अर्थे एक छै परं मुझनै अक्षर प्रमाणे अर्थ करवुं, परं पुनरुक्ति छै ।"

"इहां कर्त्ता नें वुत शब्द गूंथ्यो न हुंतो किम युत नो संयुक्त अर्थ होय ते इहां सिद्ध मां संयोगजनित कांइयें नथी। तिहां तौ जे समवाय संबंध छै फिरी युत आगल रति शब्द गूंथ्यु। ते वीतराग थई सिद्ध विराजमान नै राग नो अभाव परं मुक्त ने अक्षरनु अर्थ करवु।"

श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत साधु सज्झाय टबार्थ से आलोचनात्मक अवतरण यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

"ए वे पदों में विरोधाभास छै ते किंचित् लिखु पर हुं महा निर्बुद्धि वच्छठार छु जैन रो जिंदो छु, महारो भाजनो अतिमंद छै सिज्झाय कर्त्ता नो मोटो भाजनो छै, परं सिद्धान्त वाक्यार्थ विरोधाभास कथन लक्ष लक्षण जैन विरुद्ध जाण्या पछी न लिखवु ते अनंत जिन नु चोर थावु छे तेथी लिखूं"

"एहवु जे कह्यु ए क्षायिक भावे कथन ते विरोध इति सटंक हिवै आगल सिज्झायनी गाथाओ मां स्यो वर्णन करस्यो परं ए कविराज नी योजना नो एज सुभाव छै तेज वात ने गटरपटर आगे नी पाछे, पाछे नी आगे हांकतो चाल्यो जाय ते तमे पोते विचार लेज्यो। सम्बन्ध विरुद्ध अंगोपांगभंग कविता, वारवार एक पद गुंथाणो ते पुनरुक्ति दूषण कविता ते एहीज सिज्झाय में तमेही जोई लेज्यो, एक "निज पद" दस जागा गूंथ्यो छै ते गिण लेज्यो इकलो मुझने दूषण मत देल्यो बीजुं एहनो छूटक लिखत सप्तनयाश्रयी सप्तभंग्याश्रयी चुस्त छै स्वरूप ना कथन नी योजना तेमां तो गटरपटर छै ए विना बीजी सहिज छूटक योजना सटंक छै। योजना करवी ए पण विद्या न्यारी छै, कौमुदी कर्त्तायें शिष्य थी आद्य श्लोक करायो, आप थी न थयो।

चलो ए वात खुली न लिखूं तो ए लिखत वांचण वालो मूर्ख-शेखरजाणै एकारणे लिखूं। गुजरात मां ए कहिवत छै—आनंदघन टंकशालो जिनराजसूरि[1] बावा तो अवभ्यवचनी, उ० यशो-

---

१ आप अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी के प्रशिष्य और श्रीजिनसिंहसूरिजी के शिष्य थे। सं० १६४७ वैं० सु० ७ बीकानेर में बोथरा धर्मसी धारलदेवी के यहां आपका जन्म हुआ सं० १६५६ मि० शु० १३ दीक्षा और सं० १६७४ में आचार्य पदारूढ़ हुए। आप उच्चकोटि के विद्वान और प्रभावशाली आचार्य थे। आपने मेड़ता, शत्रुंजय, भाणवड़, लौद्रवा आदि स्थानों मे जिन बिम्बादि की प्रतिष्ठाएं कीं। आपकी नैषध काव्य वृति, शालिभद्र रास, गजसुकुमाल रास तथा चौवीसी, वीसी आदि अनेक रचनाएं उपलब्ध हैं। आपकी शालिभद्र चौपाई नामक कृति का खूब प्रचार हुआ फलतः इसकी सैकड़ों हस्तलिखित प्रतियां तथा कई सचित्र प्रतियां भी पायी जाती है। हमारे संग्रह में भी इसकी दो सचित्र प्रतियां है। कलकत्ता निवासी स्वर्गीय बाबू बहादुरसिंहजी सिंघी के संग्रह में इसकी तत्कालीन सुन्दर सचित्र और अद्वितीय प्रति है जो शाही चित्रकार शालिवाहन के द्वारा चित्रित है। आप उच्चकोटि के कवि थे आपकी उपलब्ध छोटी छोटी कृतियों का हमने संग्रह किया है। सं० १६९९ में आपका स्वर्गवास हुआ। विशेष जानने के लिये हमारा "ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह" देखना चाहिए। इसमें इनकी जीवनी पर श्रीसार कृत रास व चित्र प्रकाशित है शाही चित्रकार शालिवाहन चित्रित पुस्तक में आपका असली चित्र है। आपके सम्बन्धी एक अन्य रास का सार हमने जैन सत्यप्रकाश में प्रकाशित किया था। आपके आज्ञानुवर्ती आचार्य श्रीजिनसागरसूरिजी से सं० १६८६ में आचार्य शाखा तथा आपके पट्टपर सं० १७०० में श्रीजिनरंगसूरिजी से रंगविजय (लखनऊ) शाखा अलग हुई, मूल पट्टपर श्रीजिनरत्नसूरि हुए जिनकी पट्टपरंपरा में बीकानेर के बड़े उपाश्रय के श्रीपूज्य श्रीजिनविजयेन्द्रसूरिजी विद्यमान हैं।

विजय [२] टानरटुनरिया पोते थाप्यो तेज उथाप्यो, उ० देवचन्द जी ने पूर्व नु ज्ञान एक हतु तेथी गटरपटरिया, मोहनविजय [३] पन्यास ते

---

२ महोपाध्याय यशोविजयजी जैन साहित्याकाश के उज्वल नक्षत्र थे। इन्होंने काशी में तीनवर्ष रहकर विद्याध्ययन किया। न्यायविशारद न्यायाचार्य आपकी उपाधि थी, आपने संस्कृत, गुजराती और हिन्दी में सैकड़ों रचनाएं कीं। कहा जाता है कि हरिभद्र-सूरिजी के पश्चात् श्वेताम्बर संम्प्रदाय में ऐसे गम्भीर दार्शनिक विद्वान आपही हुए हैं। केवल न्याय पर ही आपके सौ ग्रन्थ बनाने का कहा जाता है, खेद है कि थोड़े वर्षों में ही समुचित प्रचार के अभाव में आपकी २५—३० कृतियां उपलब्ध नहीं रही। आपका जीवन-चरित्र "सुयशवेलि" नामक समकालीन रचना में पाया जाता है। आपकी भाषाकृतियां गूर्जर साहित्यसंग्रह भाग १—२ में प्रकाशित हैं। सुप्रसिद्ध विनयविजयोपाध्याय आपके सहपाठी थे, उनकी अंतिम अपूर्ण रचना श्रीपाल रास की पूर्ति आपही ने की थी जिसकी कई ढालें आजकल नवपदपूजा में सर्वत्र प्रसिद्ध है। सं० १७४५ में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपके तत्त्वार्थगीत पर श्रीमद् ज्ञान-सारजी ने बालावबोध लिखा जो इसी ग्रन्थ में प्रकाशित है। आपके एक अन्य पद (जब लग आवै नहीं मन ठाम) का ज्ञानसारजी ने आनन्दघनजी के कथित बतलाया है पर उसके अन्तमें "चिदानन्द-घन सुजस विलासी" छाप होने से ये रचना यशोविजयजी की निश्चित है।

३ पन्यास मोहनविजय तपागच्छीय रूपविजय गणि के शिष्य थे। इन्होंने सं० १७५४ से सं० १७८३ तक कई रास चौपाई आदि भाषा कृतियें निर्माण कीं। इनकी रचना सरल, मधुर और रोचक होने से खूब प्रसिद्ध हैं। सं० १७८३ में रचे हुए चन्द रास की श्रीमद् ने हिन्दी दोहों में समालोचना लिखी है।

लटकाला, मुझ नेआगल अर्थ लिखवु छै ते अक्षर प्रमाणै अर्थ लिखीस, किहां सरीखो अर्थ दीसे ते म्हारो दूषण न काढस्यो, अक्षर विरुद्ध अर्थे मारो दूषण सही" "आगे नवमी गाथा रे पहले पद में मायक्षये आर्जव नी पूर्णता रे इसो पद गूंथ्यो ए पद नो सम्बन्ध बारमें गुणठाणें विना मिले नहीं पण कर्त्ताए गूंथ्यो तेथी मने पद रो अर्थ करणो ते लिखूं ...... विण सिभाय कर्त्ता ए आर्यव पद गूंथ्यो तेथी पुनरुक्ति अर्थ लिख्यो" ।

ज्ञानविमलसूरिजी की आलोचना :-

श्रीमद् आनन्दघन जी महाराज की चौवीसी पर श्रीज्ञानसारजी महाराज का अध्ययन बहुत गम्भीर था। आनन्दघनजी के तत्त्वज्ञान और आत्मानुभवमय गूढ़ स्तवनों पर विवेचन होना बहुत आवश्यक था, यद्यपि श्री ज्ञानविमलसूरिजी[1] ने उसपर टब्बा

---

[1] आप भिन्नमालके ओसवाल वासव की पत्नी कनकावती के पुत्र थे। आपका जन्म सं० १६९४ दीक्षा सं० १७०२, सं० १७२७ में पन्यास पद, सं० १६४८ में सूरिपद प्राप्त हुए। सं० १७७० में आपके उपदेश से शत्रुंजय का एक संघ निकला। आपने संस्कृत और भाषा में अनेक ग्रंथों की रचना की जिनके सम्बन्ध में जैन गूर्जर कविओ भाग २/३ में देखना चाहिये। आपके रचित स्तवनादि सैकड़ों की संख्या में उपलब्ध हैं जिनके संग्रह रूप २ भाग प्रकाशित हुए है। सं० १७७७ पाटण में आपका श्रीमद् देवचन्द्र जी से मिलना हुआ था। उनके सहसकूट जिनों की नामावली बताने पर आप बहुत प्रभावित हुए थे। सं० १७८२ में खंभात में आपका स्वर्गवास हुआ था। आपकी सं० १७२८ से सं० १७७५ तक रचनाएं उपलब्ध हैं। तपागच्छीय श्रीरविमल गणि के आप शिष्य थे।

लिखा था। पर श्रीमद् के चिर अध्ययन की कसौटी पर वह विचारपूर्ण और खरा नहीं उतरा। अनेक स्थानों में अर्थ स्खलित और अविचारपूर्ण लिखे गये। फलतः श्री ज्ञानविमलसूरिजी का रचित बालावबोध, अनायास ही श्रीमद् के आलोचना का विषय हो गया और उसपर आपको कड़ी और मार्मिक आलोचना करनी पड़ी। यद्यपि आपका यह बालावबोध प्रकाशित हो चुका है फिर भी प्रकाशकों ने उन आलोचना के अंशों को छोड़कर मनमाना संस्करण प्रकाशित किया है अतः पाठकों की जानकारी के लिये बालावबोध के समालोचनात्मक अंशों को यहां उद्धृत किया जाता है :—

"ज्ञानविमलसूरि कृत टब्बा में थी जोइयै धारी नै लिखियै पिणते टब्बानै जोयु ते किहां एकतौ अर्थ लिखतै अत्यन्त थोडूंज विचार्यू तेउना लिखवा थी जणाय छै ते कोई पूछै किहां ते जणाऊं, ए अभिनन्दन ना पद मां 'अभिनन्दन जिनदर्शन तरसियै, एहनो अर्थ अभिनन्दन परमेस्वर ना मुख नुं देखवु तेनै तरसियै छै एतलै कोई रीते मिलै ते वांछियै एहवूं लिखतै एतलूं नहीं विचार्यु दर्शन शब्दे जैन दर्शन नुं कथन छै किम एज गाथा मे त्रीजे पदे "मत २ भेदे रे जो जइ पूछियै" ते परमेश्वर ना मुख देखवा मां मत मत भेदे स्युं पूछस्यै नै तेज अर्थ हुवै तो आगल पद मां 'सहु थापै अहमेव' ते परमेश्वर ना मुख दर्शन मां सर्व मत भेदी अहं एवूं स्युं थापे पर अंत ताइं इमज लिख्यै गयु"

ज्ञानविमल करतै अरथ, कर्यौ न किमपि विचार।
तेथी ए तवना तणौ, लेख लिख्यौ अविचार ॥१॥

"कोईकहिसी विना विचार्यौ स्युं लिख्यौ ते, पहिली गाथा मां

'मत मत भेदे जो जइ पूछियै सहु थापै अहमेव' ए पद मां परमेश्वर ना मुख दर्शन नो स्यौ विशेषण फिरी दर्शन शब्दें सम्यक्त अर्थ लिख्यु तिहां इम न विचार्यु अभिनन्दन जिन दर्शन, जैन दर्शन ते विना मत मत भेदे पूछतै अहंएव स्यूं थापै फिरी अति दुर्गम नयवाद, आगमवादे गुरुगम को नहीं, धीठाई करी मारग संचरु, एउ मां मुख नो सम्यक्त्व नों स्यो विशेषण मुख्य विचार्यों ज थोड़ौ"

(अभिनन्दन स्त० बाला०)

"इहां चन्द्रप्रभुजी नी स्तवना मां प्रथम ज्ञानविमलसूरि इम लिख्यु हिवैं शुद्ध चेतना अशुद्ध चेतना प्रतें कहै छै। अनादि आतमायें उपाधि भावें आदर्या माटैं सपत्नी भावै सखि कही पिण शुद्ध चेतना नैं सखी सुमति श्रद्धादि सम्भवें जिम ★ ★ ★ ए स्वपक्षी वचन सूत्रकर्तायेज कह्यौ ते सूत्रकर्त्ता तौ भद्रक न हुतो परं अर्थकर्त्ता इम लिख्यु, ते ते जाणै।" (चन्द्रप्रभ स्त० बाला०)

"ज्ञानविमलसूरि महा पण्डित हुता, तेउए उपयोग तीक्ष्ण प्रयुँज्यो हुंत तौ समर्थ अर्थ करी सकता। तेउए तौ अर्थ करतैं विचारणा अत्यंत न्यूनज करी, नें मैं ज्ञानसारें मारी बुद्धि अनुसारैं सम्वत १८२६ थी विचारतै विचारतै सम्वत १८६६ श्रीकृष्णगढ़ मध्ये टवौ लिख्यौ पर मैं इतरा वरसां बिचार विचारतां ही सी सिद्धि थई ऐहवौ मोटौ पंडित विचार विचार लिखतौ तौ सम्पूर्ण अर्थ थातौ परं ज्ञानविमलसूरिजी ये तौ असमझ व्यापारी ज्युं सौदो वेच्यो करै नफौ तोटौ न समझै तिम ज्ञानविमलसूरिजीयें पिण लिखतां लेखण न अटकावणी एज पंडिताई नो लक्षण निर्द्धार कीनौ, अर्थ

व्यर्थ अर्थ समर्थित नी गिणत न गिणी ।"(सुविधिजिन स्तवन वाला०)

सूत्रकर्त्तायें शीतल जिन नी स्तवना मां "शक्ति व्यक्ति त्रिभुवन प्रभुता निग्र'थता संयोगे रे" ए गाथा मां पांच द्विक संयोगी त्रिभंगी बतावी छै नै अर्थकरता ज्ञानविमलसूरै एहवु' लिख्यु'--शक्ति पामी ने करुणा तीक्ष्णता कर्म हणवानैं विसै व्यक्तज छै त्रिभुवन प्रभुता पामी ने उदासीनता ए त्रण गुण निग्र'थता नै संयोगे अथवा शक्ति व्यक्ति ! त्रिभुवन प्रभुता अने निग्र'थता ३ ए त्रिभंगी तुझ मांहि सामठी छै ए लिखत तिहां थी ज लिख्यो छै । आंई उपयोग प्रयु'जना थोड़ी प्रयू'जी, फिरी "इत्यादिक बहु भंग त्रिभंगी" तिहां बहु भंग त्रिभंगी ने स्थाने ए त्रिभंगी लिखता ही थोडु' विचार्यु कां उत्पति १ नास २ परमेश्वर मां नथी संभवता सत् १ असत् २ सद् सत् ३ ए त्रिभंगी नौ संभव न छै "(शीतल जिनस्त० वाला०)

"अर्थ करतै ज्ञानविमलसूरै "श्री श्रेयांस जिन अंतरजामी" एहनु' अर्थ लिख्यु' यथा-श्रीश्रेयांसजिन अंतरजामी मारा मन मां वस्या छो, ते मारी विचारणाये इम न जोइये, किम एतौ सुमति सहित आनन्दघन नौ वचन परमेश्वर थी छै यथा"—इत्यादि

"अर्थ करताये अर्थ करते थतै आंई प्रमाद वशैं ना भ्रांति वशै लिख्यो जणाय छैं । ★ ★ ★ एक अनेक रुप नयवादे एहनू' अर्थ इम लिख्यु' छै शुद्ध निश्चै नये करी नयवादी अनेक रुपी छै ए वर्ण लिख्या छैं ए वर्णों नो रहस्यार्थ लिखवा वालै ने भास्यो हुस्ये बीजू' ए लिखत असंवद्ध प्रलाप भासै छै ।"

(श्रेयांस जिनस्तवन बाला०)

"अर्थ कर्त्ता ज्ञानविमलसूरै ए गाथा नो अर्थ करतां, हूं छु तो महामूर्खशेखर परं आंई तो सामूर थोडूं ज विचार्यं जणाय छै यथा— ★ ★ ★ स्यूं संभव परं रागंगी नुं वाय सरवूं ही मलार" (विमल जिन स्तवन वाला०)

"ए स्तवन नो अर्थ करतां अर्थकर्त्तायें मूल थीज न विचार्यु— धार तरवार नी तो सोहिली परं १४ जिन नी चरणकमल सेवा मां विविध किरिया स्यूं सेवौ, फिरी चरणसेवा मां गच्छ ना भेद तत्त्व नी वात उदर भरण निज काज करवानों स्यों सम्बन्ध ? फिरी चरणसेवा मां निरपेक्ष सापेक्ष वचन, झूठा साचा नो स्यो सम्बन्ध ? फिरी देवगुरू धर्म नी शुद्ध श्रद्धा नो शुद्धता, उत्सूत्र सूत्र भासवा नो, पाप पुण्य नो सम्बन्ध स्यौ ? परं चरण सेवा—चारित्र सेवा ए अर्थ न पाम्युं चरणसेवा पदसेवा भास्यु तेह थी एज अर्थ ने सिधश्री थी मिती पर्यंत अंधोधुन्ध परं धकावता ज चाल्या गया।" (अनंतजिन स्तवन वाला०)

अर्थकर्त्तायें अर्थ करतां "देखै परम निधान" आंई निधान शब्दै धर्म निधान एहवो लिख्यो नै आंई "निधान" शब्दै स्वरुप प्राप्ति रूप निधान देखें ए अर्थ छै। धर्म प्राप्ति रूप निधान अर्थ नथी संभवतुं ★ ★ ★ एहनौ पिण अर्थ वलित छै परं लिखवानो स्थानक नथी" (धर्म जिनस्तवन वाला०)

ए स्तवन मां अर्थकारके 'कहो मन किम परखाय' ए पद नो अर्थ करते मन प्रसन्नवंत थई ने कहौ एहवं परमेश्वर थी कह्यु नें ए वचन विरुद्ध छै। परमेश्वर ने मननुं मनन न संभवै"

(शान्ति जिन स्त० वाला०)

ए तवन मां अर्थकर्त्तायें "नांखे अलवै पालै" ए पद नु अर्थ इम लिख्यूं जे चितवे कांइ अलवै वंक्रं करै ते ए पद नूं तो अक्षरार्थ, अलवै सहिजे, पास पद नु अर्थ जालि मां नांखै, शब्द नूं अक्षरार्थ जोइयै तो इम, परं सोटा विवुध, भाषा ने सहिज जाणी ने अर्थ नों कर्त्ता अर्थ करतां विचारणा थोड़ी राखै परं एहवी भासा नौ तो अर्थ, अर्थकरता नें जरूर विचारी ने अर्थ लिख्यूं जोइये किम "सितंवद एकं मा लिख:" एहवूं कह्यूं छे ते माटे फिरी आगल पिण लिखतौ थोडुं विचार्यु यथा—सूत्रकर्त्तायें प्रथम गाथा ना अंत पद मां ए पाठ कह्यु तिम तिम अलगुं भाजै ए पद नुं अर्थ कर्त्तायें लिख्यू तिम तिम अलगुं अवलु मुक्ति मार्ग थी विपरीत भाजै छे एहव टव्वा में लिख्यू पर अलगुं शब्द नु अवलुं किम थाय तेथी अर्थकर्त्तायें आंई तो अर्थ करतै मूल थी थोड़ी विचारणा कीनी फिरी ते "समझे न मारो सालो" एहनुं अर्थ लिख्युं माह रोसालो ते रीस घणी मन मां इर्ष्यावंत इम लिख्युं ते मन मां रोस विना काम क्रोधादि मन मां स्युं नथी संभवता तेथी माहरोसालो तो न संभवै फिरी तेहनुं पर्यायार्थ करी ने लिख्यू छै सालो ते देश विशेषे धणियाणी ना भाई नै कहै छै ते देश विशेषे नो जइये लिख्युं जोइये जो सर्व देश विशेषे धणियाणी ना भाई नै सालो न कहिता हुवे कोई देशे कहिता हुवे तो पर सर्वदेशो मां धणियाणी ना भाई सालोज कहै छै तइये ते देश विशेषे धणियाणी ना भाई ने सालो कहै ए लिखवानु स्यूं कारण" (श्रीकुंथु जिनस्तवन वाला०)

"ए तवना नो अर्थ करते अर्थकारके "परवडै छांहड़ी जिह पड़े" एह पद नुं अर्थ पर कहितां पुद्गल नी वड़ाई नी छाया तथा स्व

इच्छा जिहां पडे ते हिज पर समय नौ नित्रास एतले जे इच्छाचारी अशुद्ध अनुभव तेहिज परसमय कहिये। ए अक्षर लिख्यां पिण पर नो तो पुद्गलार्थ थाय परं वड़ शब्द नु वड़ाई अर्थ किम संभवै नै बड़ाई सी वृक्ष छै जेहनी छाया संभवै परं अर्थकर्त्तायें अर्थ करतें कांई थोडु विचार्य जणाय छै फिरी एक पखी लखि प्रीत नी तुम साथे जगनाथ 'हे जगनाथ तुम साथे एक पखी प्रीत लाखे गमे नरमी छे। सरागी ते लाख गमें शुद्ध व्यवहारें तुम साथे प्रीत बांधनार छै प्रथम तोए अक्षरार्थ मांहि कोई रहस्यार्थ नथी भासतुं फिरी गाथा ना उतरदल मां विरोधाभास भासे छै पूर्व दल मां तो परपक्ष सम्बन्धी अर्थ लिख्यु, उत्तर दलें कृपा करी ने तुम्हारा चरण तले हाथे ग्रही ने मुझने राखज्यो ए स्व पक्ष स्यु" (अरनाथ स्त० बाला०)

"अर्थकारके पांचमी गाथा ने बीजे पदे पामर करसाली पामर करसाओ नी अलि पंक्ति ते बे पदो नो एक पद करी ने भूंछ एकज अर्थ कयु फिरी दशमी गाथा ने अते त्रीजे पदे दोष निरूपण तिहां एक वार तो दोष नु निरूपण कहिवू ए अर्थ कयुं फिरी वा लिखी ने दोष नु निरूपण निर्दषण थया एहवु अर्थ करी दीधु फिरी आठवीं गाथा ने त्रीजे पदे जगविघन निवारक पद नु जगत ने विघनकारी ते निवारी ने एहवु अर्थ करी दीधु तेनु अर्थ मागे बुद्धि प्रमाणे लिख्यु ते जोज्यो. आनंदघन नु आशय आनंदघन साथे गयु" (श्री मल्लि जिन स्त० बाला०)

"अर्थकर्त्तायें 'जड़ चेतन ए आतम एकज' ए तीजी गाथा नु अर्थ विरुद्ध परं विरुद्धपण न कहाय ए एकज गाथा मां त्रण ठिकाणे

निरपेक्षेक वचन लिखी गयुं प्रथम जड़ चेतनेति ★ ★ ★
ए ऊपर लिखवानुं स्युं कार्य ए एक स्थानके लिख्युं परं अन्य
स्थानके लिख्युं तेहनु केतलूंक लिखूं परं मोटा"

(मुनिसुव्रत जिन स्त० बाला०)

अर्थकर्त्तायें जे जे स्थानके जे जे विरुद्ध लिख्युं ते ते मारै लघु मुखें मोटाओना अर्थ नो अपमान केतलोक लिखूं परं अर्थकारके अर्थ करतैं अल्प ही विचार्युं नहीं। अर्थकार मां विचारणा अल्प जणाय छै यथा—सदा सिद्धचक्राय श्रीपाल राजा—सूत्रकर्त्तायें तो आतम सत्ता विवरण करता इम गूंथ्यौ ने अर्थकारकैं अर्थ करतां लिख्युँ आत्मा नी सत्ता नै कर्त्ता नो विवरण आत्मा मां तिष्टमान छै ए स्यूँ लिख्यूं इणै तो आत्म सत्ता नै विवरण करता एहवुं रहस्य कहयुं तेथी सांख्य योग वेई आत्म सत्ता ना विवरण कारक कह्या फिरी एहथी आगल पदमां "लहौ दुग अंग" तेहनु अर्थकारकै लहो नो लघुसामान्य अर्थ कर्यां सत्रकार नौ रहस्य लहौ दुग अंग ताम ए बे अंग लहौ-लाभौ नाम पामौ फिरी एथी आगल तीजी गाथा मां त्रीजो पद लोकालोक अवलंबन भजिये एहवुं अर्थ लिख्युं लोक ते पंचास्तिकायात्मक अलोक ते आकाशास्तिकायात्मक वा लोक ते रूपी द्रव्य अने अलोक ते अरूपी द्रव्य इम लिख्युं ते भेद सौगत मीमांसक कह्या तेमा पंचास्तिकायात्मक लोक मां स्युं भेद अलोक आकाशास्तिकायात्मक मां स्युं अभेद फिरी वा लिखने लोक अलोक नुं अरूपी द्रव्य अर्थ लिख्युं ते सौगत मीमांसक मां पंचास्तिकायात्मक वा रूपी अरूपी द्रव्य एक तेऊ मां स्युं सम्भव परं लिख्या चल्या गया लिखतां

लेखण अटकावणी नहीं एज रहस्य विचार्यु जणाय छै फिरी आगल पिण घणै ठिकाणै इमज लिख्युं छै ने तमे ए टब्बामा अर्थ अने ते टव्वा नो अर्थ जोइ नै विचारस्यो तइये प्रकट जणावस्यै एमा मैं निर्बुद्धिये मारी मूढ मतें लिख्युं छै पर कर्ता नो गंभीराशय कर्त्ता समझै" (नमिनाथ स्तवन बाला०)

"अर्थ कारै अर्थ लिखतै" जिण जोणी तुझ ने जोऊं तिण जोणी जोवो राज एक बार मुझनै जोवो, ए पदो ने दोय स्थानकै जोवो राज मुझने जोवो राज नो अर्थ लिख्यो तुमे जोवौ हे राजन् मुझ नै जोवा नो अर्थ लिख्यौ, जौ पोताना दास भाव मुझ ने जोवो निरखो आंइ एतलो तो विचारवो हतो ए कविराज राजन् तौ अर्थ भिन्न बिना पुनरुक्ति दूषण दूषित पद योजना करवा थी रह्यो। तेथी भला आंइ तो कांइ विचार्यु हतुँ पर वेइ वार जोवो जोवौ अर्थ करी ने वेगला थई गया। "फिरी एक गुम्य घटतु नथी" तिहां गुम्य ए ठहिराव्यौ कै परणावा आव्या पिण पाछा फिरी गया ए स्यानौ गुम्य सर्व लोक थी प्रगट माटे फिरी कारण रुपी नो अर्थ लिख्यो प्रभूजीये पोतां नो उपादान शुद्ध थावा ने ए प्रभू निमित्तो रुप भज्यो सु प्रभू ए भज्यो एवो वचन राजीमती नो छे पर धकाव्ये गयो। (श्री नेमि जिन स्त० बाला०)

चन्द राजा रास की समालोचना :—

अठारहवीं शती में कवि मोहनविजय एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं, जिनकी कतिपय रास—चौपाई स्तवनादि की भाषा कृतियें उपलब्ध हैं। गत तीन शताब्दियों (१७ वीं से १९ वीं) में रासों का खूब प्रचार हुआ है। और हजारों की सँख्या में भाषाकृतियां निर्मित हुई।

व्याख्यान में प्रातः एवं मध्याह्न अथवा रात्रि के समय श्रोता लोगों के समक्ष रास गाकर कथा विवेचन करने की प्रणाली यति समाज में प्रचलित + थी। सत्तरहवीं शताब्दी के नैषध काव्य वृत्यादि के निर्माता विद्वान आचार्य श्रीजिनराजसूरिका 'अवध्य वचनी' के रूप में देवचन्द्रजी कृत साधु सभाय के टब्बे के अवतरणों में नाम आ चुका है। आपकी शालिभद्र चौपाई जैन समाज में खूब प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। इसकी सचित्र प्रतियां भी पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हैं। श्रीमद् ज्ञानसारजी के लिखे अनुसार मोहन-विजय जी ने शालिभद्र चौपाई के प्रतियोगियता में हीन दिखाने के लिए * कल्पित कथा चन्द्र राजा के रास' की सं० १७८३ में रचना की थी। श्रीमद् ने उस कृति की समालोचना बड़ी ही विद्वतापूर्ण और अपूर्व ढंग से लिखी है। इस कृति के छन्द-दोष, सम-विसम में मात्राओं का हीनाधिक्य, असंबद्धता, अलंकार दोष, उपमेयोपम व स्वपक्ष परपक्ष वचन असंवद्धता का निरसन करते हुए हिन्दी के ४१३ दोहों में (जिनमें भी सवैये कुण्डलिये भी हैं) मार्मिक आलोचना की है उन दोहों को पढ़ना प्रारम्भ करने पर छोड़ने की इच्छा नहीं होती,

---

+ तेरापंथी सम्प्रदाय में आज भी चातुर्मास में रात्रि के समय राम रास गाया जाता है।

* फलनः यह लोक कथा प्रतीत होती है व्रज में भी इस पर काव्य मिलता है देखो व्रज भारती का वर्ष ४ अं० १०।

१ व्यर्थ करन कारण करौ, मोहन चंद चरित्र
साल चरित्र रचना भई, साण चढायो शस्त्र। ३।

शालभद्र नी चौपाई रचना हीन दिखावण कारण ए चौपाई रची पर रचनो मां अंतर रवि काच तेज जेतलो छे।

इसमें केवल दोषों का उद्घाटन ही नहीं है अपितु उपन ासंगिक हेतु युक्ति और उपमाओं से युक्त दोहों को यथास्थान डाल कर आलोच्य रास की शोभा में चौगुनी अभिवृद्धि की है। अपने ढंग की यह एक ही रचना है और समालोचना का आदर्श उपस्थित करती है पाठकों की जानकारी के लिए यहां उसके थोड़े से अवतरण दिये जाते हैं।

ढाल २ गाथा १३ वीं तृतीय पाद में—नृप जालिका थई ऊतयों गूंथ्यो पर जालिये राजा किम समावैं छिद्र छोटा तेथी बारी गूंथवी योग्य हुती पर कवि की योजना मात्र उछक वृत्ति नी छैं।

स्वपक्ष पर पक्ष को, न कर सकै कवि यत्न,
सो दूषण अलकार को, कैसे करे प्रयत्न

★ ★ ★

इह दूषण अलंकार के, विवरण करे न जाय
इक दो चौ पट दस कहै, कौलों अधिक कहाय

★ ★ ★

जिह तिह चन्द चरित्र को, नाम लेत कविराय
चोरी प्रगटै चोर कैं, तो हू सौगन खाय

★ ★ ★

इह कवि ऐसे जान है, मेरे जैसी बुद्धि।
होय तवे को ज्यान है, याकी शुद्धाशुद्धि
अपनी बुद्धि प्रमान वर, कवि कविता कर लेत।
देखत कवि छंदादि सब, दूषण भूषन हेत ।२।

धर्म वाच वाचक अरथ, उपमा उर उपमेय
स्वपर पक्ष देसादिसव, वर कवि नर लख लेय । ३ ।
खिण में जाणे कूकड़ो, खिण में जाणै चन्द
को गज घोरा को लखै, घोरा कौन गयन्द
कर्ता असंभव नो, संभव करै छै ।

तूटौ दोरो तेह
नौ वरसां नट संग रहे, आसा रहि अवशेष
सोल वरस दोरो निमै, अचरज यही विशेष ? ॥

इस ग्रन्थ में सुभाषित व लोकोक्तियों का भी समावेश करने के साथ साथ उपमाओं को खचित करने में अपूर्व रचनाकौशल्य व पाण्डित्य का परिचय दिया है ।

कविवर वनारसीदास जी के समयसार में आई हुई कतिपय एकान्तवाद व निश्चय नय सम्बन्धी मान्यताओं की आलोचना आपने भाव षट्त्रिंशिका तथा जिनमताश्रित आत्मप्रबोध छत्तीसी में सृजन सौष्ठव व प्रासाद गुण युक्त कविताओं में की है । जिन्हें पाठकों को इसी ग्रन्थ में पढ़कर स्वयं ज्ञात कर लेना चाहिये ।

विद्वत्ता :—

आपश्री अपने समय के उच्चकोटि के विद्वान और गीतार्थ थे । आपश्री की कृतियों में आगमज्ञान, अनुभवज्ञान व छन्द अलंकार काव्यादि प्रत्येक विषय का पाण्डित्य झलकता है । यों तो आपकी कृतियां सभी विषय की हैं परन्तु आध्यात्मिक कृतियां मुमुक्षुओं को सन्मार्ग आरुढ़ करने के लिये बड़ी ही उपयोगी है । अपनी रचनाओं

में आपश्री ने पचासों जगह उदाहरण और अवतरण देकर विषय को स्पष्ट किया है। इन अवतरणों में जीवविचार, कर्मग्रंथ, चैत्यवंदनभाष्य, समयसार, आवश्यक निर्युक्ति, पुष्पमालाप्रकरण, विशेषावश्यक, आचारांग, स्थानांग, भगवतीसूत्र, उत्तराध्ययन, अनुयोगद्वार, प्रश्नव्याकरण, हेमकोश, अभयदेवसूरि कृत महावीर स्तोत्र, सारस्वत व्याकरण, तत्त्वार्थसूत्र आदि आगम प्रकरणों तथा श्री आनन्दघन जी, देवचन्द्र जी, यशोविजय जी, रूपचन्द्र पाठक, मोहनविजयजी, जिनराजसूरिजी आदि की कृतियों तथा वेदवाक्य, पाणिनी, कालिदास, कबीर, भर्तृहरि इत्यादि के वाक्यों का भी स्थान स्थान पर नामोल्लेखपूर्वक निर्देश किया है। आपने अपनी कृतियों के अवतरण तो पचासों स्थानों पर दिये हैं जिनमें कतिपय उद्धरण तो आपकी कृतियों में प्राप्त हैं, अवशिष्ट "सदुक्तियें" या तो प्रासंगिक हैं या वे जिन ग्रन्थों की हैं वे ग्रन्थ अप्राप्य हैं। इस ग्रन्थ में आये हुए अवतरणों को परिशिष्ट में देखना चाहिए। आपने स्वयं प्रसंगवश सन्मतितर्क,[1] वास्तुराज[2] प्रभृति ग्रन्थों के परिशीलन का उल्लेख विविध प्रश्नोत्तरादि ग्रन्थों में किया है।

---

१ सुप्रसिद्धसिद्ध सेन दिवाकर रचित जैन न्यायका यह प्राथमिक ग्रन्थ है। इसपर वादि पंचानन श्री अभयदेवसूरि की महत्वपूर्ण विशिष्ट टीका प्रकाशित हो चुकी है। श्रीमद् ने साधु सज्झाय के टब्बे में इस ग्रन्थ के ५५००० श्लोकों में से ४०० श्लोक स्वयं पढ़ने का उल्लेख किया है।

२ भारतीय वास्तुविद्या सम्बन्धी साहित्य बहुत विशाल है। इस

भाषा—

आपका जन्म राजस्थान (रियासत बीकानेर) में होने के कारण आपकी मातृभाषा राजस्थानी थी। आपने अपनी कृतियोंमें राजस्थानी तथा गुजराती मिश्रित राजस्थानी व हिन्दी भाषा का प्रयोग किया है। जैन कवियों ने अपने ग्रन्थों में गुजराती भाषा का प्रयोग इसीलिए किया है कि गुजरात-मारवाड़ आदि सर्व देशीय श्रावकों व संवको वे रचनाएँ समान रूपसे उपयोगी हो सके। पूर्वकाल में गुजराती और राजस्थानी में आजकी भांति अधिक अन्तर भी नहीं था फिर भी जैनाचार्यों के लालित्यपूर्ण गुजराती भाषा को प्रमाणभूत मानने का श्रीमद् ने आध्यात्म-गीता के बालावबोध में लिखा है :—

"बालबोध रचना रचूं, गूज्जरधर नी वाण।
पूर्वाचार्य अति ललित, जाणी करी प्रमाण।"

आपका राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी भाषा पर तो पूरा अधिकार था ही पर ब्रज, ग्वालेरी, सिन्धु आदि भाषओं की भी आपकी अच्छी अभिज्ञता थी। पूरव देश वर्णन छंद में बंगला भाषा के शब्दों का भी निर्देश किया है। अब आपकी कृतियों का भाषाओं की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाता है :—

विषय के छोटे-बड़े लगभग २०० ग्रन्थ पाये जाते हैं। श्रीमद् ने प्रश्नोत्तर ग्रन्थ पृ० ४०५ में वास्तुराज नामक ग्रन्थ के २००० श्लोक स्वयं पढ़ने का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ में गृहनिर्माण के १६ प्रकारों का वर्णन है। यह ग्रन्थ किसके रचित व कहां प्राप्य है, अन्वेषणीय है।

हिन्दी— छत्तीसी ४, पूरब देश वर्णन छंद, चंद चौपाई समालोचना, प्रस्ताविक अष्टोत्तरी, कामोद्दीपन, मालापिङ्गल, निहालबावनी, प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य, चौबीसी, ज्ञानसिंह आशीर्वाद, बहुत्तरी।

राजस्थानी—संबोध-अष्टोत्तरी, आत्मनिन्दा, नवपदपूजा, बासठ मार्गणा, हेमदण्डक, आत्मनिन्दा, ज्ञानसिंह आशीर्वाद वचनिका, प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका, विविध प्रश्नोत्तर नं० १-२, पंचसमवायविचार, विहरमानवीसी।

गुजराती—आध्यात्म गीता बालावबोध, साधुसज्झाय बाला०, आनंदघन चौबीसीबाला०, प्रश्नोत्तर ग्रन्थ नं० १ (हिन्दीके प्रश्नोंके उत्तर); आनन्दघन पद बाला० आदि ग्रंथोंमें राजस्थानी मिश्रित हैं, कहीं-कहीं तो शुद्ध राजस्थानी भाषा ही लिखी है।

मुहावरे—आपकी भाषा बड़ी मुहावरेदार थी जिसका यहां थोड़ा नमूना उपस्थित किया जाता है :—

"थे नगर सेठ छौ कांई डाढ़ में कांकरौ राख के लिख्यौ छै। परभव भय सुं निडर थका केई मुझ सरीखा इसौ ही कहिता हुसी। विना सुण्यां जाणीजै छै थे लिखी न हुसी........" "तें आध्यात्म गीता रा बालावबोधमें थोड़ौ लिख्यौ सो ऊपर लिखियौ जिणरो सारौ उत्तर दरावसी। हुंतो परभाव रो रागी हुऔ हूवूं छुं आपरी कृपासुं आछौ हुसी, इसो लिख्यो सो हुं तौ आछौ होयलूं

पछै थांनै आज्ञा कर देस्यूँ पहिलां आपरी दाढ़ी बुझ्यां पछै रातरा जी री बुझै छै इण रो उत्तर ओ छै"। (विविध प्रश्नोत्तर नं २)

"जद फुरमायो तूं अठै सुं विहार रा परिणाम करै छै सो सर्वथाप्रकार विहार कोई करण देवूं नहीं जद मैं अरज कोनी हूं तो बीकानेर इणहीज कारण आयौ छौ सो मनै बीस बरस उपरंत अठै हुय गया सो म्हारो चिटी आज ताई कोई नीकली नहीं, जिणसूं विहार रा परिणाम हुआ छै (जेसलमेर को दिये पत्र से)

रे चेतन तूं थारो उत्पत्ति तो देख! कोई वार मां पणै कई वार पुत्र पणै केई वार पुत्री पणो केई वार स्त्री पणो ऐ थारा नाच तौ देख। ठगरी बेटी कह्यो थो हे माताजी हे पिताजी हूं इतरा पाप करूं छुं सो कुण भोगवसी, बेटी करसी सो भोगवसी, तो धिक्कार पड़ो इण संसार नै × × रे चेतन ! तूं कहै हूं, रे तूं कुग ? विष्ठा मांहिली लट तूं हीज हुवै। (आत्मनिन्दा)

जद मैं कह्यो म्हारै तो मैग रो नाक छै हूं तो 'नमुकार विण व्रत नहीं' इसो पाठ कर देसूं। (भावषट्त्रिंशिका टिप्पण)

यद्यपि आप संस्कृत प्राकृतादि भाषाओं के सो प्रकाण्ड विद्वान थे पर जानतिक उपकार की दृष्टि से आपने सारे ग्रन्थ देश्य भाषाओं में ही लिखे। संस्कृत में रचित केवल दादासाहब की दो पूजाएँ तथा माधवसिंह आशीर्वादाष्टक उपलब्ध हैं।

भक्ति व कवित्व—

श्रीमद् का हृदय बाल्यकाल से ही जिनेश्वर भगवान के प्रति भक्ति से ओतप्रोत था। चौवीसी, बीसी तथा स्तवनादि पदों

में आपने बड़े ही मार्मिक रूप में भक्ति-उद्गार प्रगट किये हैं। कहीं दार्शनिक विचार तो कहीं तत्वज्ञान और कहीं उत्प्रेक्षाएं व भावावेश में वक्रोक्ति तथा उपालम्भ तो कहीं आत्मानुभव तथा शान्त, वैराग्य और करुण रस की भागीरथी बहायी है। बहुत्तरी व विहरमान बीसी में कहीं मतवाद स्थिति, कहीं आत्मदशा, कहीं रहस्यानुभव, तो कहीं सरल प्रभुभक्ति तो कहीं उपमाओं की छटा का निदर्शन किया है। उदाहरण कहांतक दिये जांय, पाठकों से अनुरोध है कि इसी ग्रन्थ में प्रकाशित कृतियों को आत्मसात् कर सैद्धान्तिक व आत्मानुभव द्वारा निकाले हुए नवनीत का रसास्वादन करें।

विचारधारा—

श्रीमद् को अपने दीर्घजीवन में ज्ञानानुभव द्वारा जो अनुभूति मिली, आपकी जीवनचर्या एक विशेष प्रकारसे खिल उठी। आपने जो कुछ लिखा वह परिष्कृत मस्तिष्क और मंजे हुए ठोस विचारों का परिणाम था। वाद-विवाद, क्रिया-कलाप और नाना प्रवृत्तियों के विषय में विचार करने से आपकी आत्मदशा बहुत ही उच्च श्रेणी की विदित होती है। वर्त्तमानकाल में शुद्ध चरित्र को अपेक्षाकृत दुष्प्राप्य मानते हुए भी आप क्रियाओं को एक आवश्यक अङ्ग मानते थे। अन्ध-क्रिया और पङ्गुज्ञान के समन्वय से मोक्षमार्ग की सुलभता, निश्चय-व्यवहार मार्ग, मथानीकी डोरके सदृश खींचने व ढीला छोड़नेमें मक्खन प्राप्ति, क्रिया त्याग में आकाश में उड़ते हुए पतंग की डोर तोड़ने सदृश, वंचक

चारित्र का परिहार, भावविशुद्धि इत्यादि विषयों पर छत्तीसीयां पद और वालावबोधादि आपकी सभी कृतियां प्रेक्षणीय हैं।

लोकोक्तियों का प्रयोग

श्रीमद् ने विषय का स्पष्ट समझाने व हेतु युक्ति व प्रमाणादि से प्रत्यक्षीकरण के लिये अपने ग्रंथों में लोकोक्तियों का प्रचुरता से प्रयोग किया है। संबोध अष्टोत्तरी तथा प्रस्ताविक अष्टोत्तरी इस विषय के ज्वलन्त उदाहरण हैं। पाठकों को स्वयं इन ग्रंथों का रसास्वादन करना चाहिये। चंद चौपाई समालोचना भी इस विषय की प्रचुर सामग्री प्रस्तुत करती है। आनन्दघन चौवीसी तथा दूसरे ग्रन्थों से कुछ लोकोक्तियां उद्धृत की जाती है :—

१ फिरे ते चरै, बांध्यो भूख्यां मरै, २ प्राणे प्रीत न थाय, ३ एकण हत्थ न वज्जइ, दो हत्थां ताली, ४ आस करियै तेनो आसंगो स्यो, ५ घरना छइया घरटी चाटै, पाडोसन नै पेड़ा। ६ पाछल वाही पीठे लागे, ७ रागंगी नुं वाय सखुं ही मलार।

यवनोक्ति —रीता भर भर्या ढुलकाव, अनभरिया नुं फेर भरै।
खुदाके हुकुम विगर दरखतका पत्ता भी हिलने न पावै।
दरखत का पत्ता भी तावे हुकम के है क्या मकदूर
विगर हुकम हिलै।

सिन्धु देशीय—"दिल अंदर दरियाव, खंधी लगौ छयौ फिरै
डुब्बी मार मंझाहि, मंझाही माणक लहै। १।
डुब्बी मारण दां खड़ी सद्रां लक्खां करन्न
ज्यांरो हीर न द्रिब्भगो डुब्बी से मारन्न। २।"

यवनोक्ति—हैवाने नातर् मनुष्य हैवाने मुतलक् पसू लाजमत्

विहरमान बीसी में भी इसी प्रकार कहावतों का प्रयोग किया है। जैसे—

१ "आसंगो किम कीजिये रे, करियै जेहनी आस"

(युगमंधर स्तवन)

२ "जिम गहिली नो पहिरणो हो" (सुजातजिन स्तवन)

३ "दूध दियंती गायनी, लात सहू सहै" (चन्द्रबाहु स्तवन)

४ जिम भीजै कामली रे, तिम तिम भारी होय (अजितवीर्य स्तवन)

५ ज्ञानसार वे वार चढ़ै नहीं काठ की रे (नेमजिन स्तवन)

चंद चौपाई समालोचना के भी थोड़े से अवतरण देखिये:—

१ "काला छा सो उड़ि गया, धवला बैठा आय।
तुळसीदास गढ़ पालटै, जरा पहुंती आय।" १।

२ "कनक कचोले विन कछु, सिंहनी पय न रहाय"

३ "पतंग काला किण्या"

४ बच्चों का खेल :—सूरज देवता तावड़ियोइ काढ रे
तावड़ियोइ काढ, थारा बालकिया ठंढा मरै

५ छोटा दूल्हा परणतै, लम्बो होत सुहाग।"

६ "को सुख को दुख देत है, पवन देत झकझोर
उलझै सुलझै आपही, धजा पवन के जोर। १।

बीकानेर के भण्डाण परगने के तरबूजे—मतीरे अद्वितीय स्वादिष्ट और मीठे होते हैं। उनका वर्णन इस प्रकार किया है :—

७ "को जाणै मंहाण के, मीठे होत मतीर।
जो मलयाचल वसत सो, जाणत सुरभि समीर।"

पशुओं की बोली जानने के विषय में प्रचलित लोक कथाः—

८ "तरु छींका कूंडा जले, खग षट मास पियंत
जन्मत सिसु घूंटी दियै, विहग वाण समसंत"

संबोधअष्टोत्तरी आदि कृतियां तो राजिया के दोहों की भांति स्वयं ही सुभाषित रूप हैं।

रचनायें

श्रीमद् ने बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक अपना जीवन गुरुकुलवास में बिताया था। इनकी शिक्षा-दीक्षा गुरुपरंपरागत विद्वानों के तत्त्वावधान में हुई थी। स्वकीय प्रतिभा और तत्त्वरुचि मिल जाने से सोने में सुगंध जैसा संयोग हो गया। आपने सभी विषय के ग्रन्थों व शास्त्रों का अवगाहन किया था। अतः आप एक सर्वतोमुखी प्रतिभासम्पन्न और समर्थ विद्वान तैयार हो गये। आपने जिस विषय को लिया अधिकार पूर्वक लेखनी चलायी। आपके ग्रन्थों के परिशीलन से आपके गहरे शास्त्रज्ञान, काव्य, कोश, छंद, अलंकार, व्याकरण, दर्शन, न्याय आदि सभी विषयों के सफलवेत्ता और पारगामी होने का सहज परिचय मिलता है। अब आपकी कृतियों का संक्षेप में परिचय कराया जाता है।

भक्ति काव्य

कृति	रचनाकाल	प्रकाशित पृष्ठ
(१) चौवीसी—सं० १८७५ मार्गशीर्ष सुदि १५ बीकानेर		१-१२
(२) विहरमानबीसी—सं०१८७८ कार्त्तिक शुक्ला १ बीकानेर		१३-३०
(३) स्तवनादि भक्ति पद—संख्या ३०		११३-१३३
(४) शत्रुंजय स्तवन—सं०१८६६ फाल्गुन वदि १४		१३५-१३६
(५) दादासाहब के २ स्तवन—		१३४
(६) पार्श्वनाथ—महावीर स्तवन (आनन्दघन चौवीसी) बालावबोध सं० १८६६		

शास्त्रीयविचार गर्भित

(१) जीवविचार स्तवन सं० १८६१ माघ जयपुर अभयरत्नसार†

(२) नवतत्त्व स्तवन सं० १८६१ माघ वदि १३ चन्द्रवार जयपुर ,,

(३) दण्डक स्तवन सं० १८६१ पौष शुक्ला ७ जयपुर ,,

(४) हेमदण्डक सं० १८६२ मार्गशीर्ष कृष्णा १४

(५) बासठ मार्गणा यन्त्र रचना स्तवन सं० १८६२ चैत्र शुक्ला ८ गाथा ११२

(६) ४७ बोलगर्भित चौवीसी सं० १८५८ दीपावली (११५१ स्तवन रत्न मञ्जूषा)

---

† यह ग्रन्थ हमारी ओर से सं० १९८३ में प्रकाशित हुआ था।

दार्शनिक

(१) षट दर्शन समुच्चय भाषाः—यह ग्रन्थ प्राप्त नहीं है, एक खरड़े में—जिसमें ४७ बोलगर्भित चौबीसी के स्तवन व पद भी हैं—निम्नोक्त अंतिम काव्य मिले हैं :—

चन्द्रायणौ—बुद्ध नयाइक सांख्य जैन दरसन लहै
जैमनीय वेशेष मिलै ते षट लहै
इन षट हू कौ भिन्न भिन्न वरनन करै
गिरवानी ते ज्ञानसार भाषा धरै ॥ १ ॥

दोहा :— गिरवानी भाषानतें, वड़ौ बीच तें बीच ।
पून्यु अम्मावस कहां, उजल जल अरु(किह) कीच ।२।
कोय कहैगो वावरौ, कोय कहैगो मूढ़ ।
इसै विसम सिद्धंत कौ तूं क्या जाणै गूढ़ ॥ ३ ॥
बुद्ध सुतीछन सारते, सुगुर छेद कर दीन
दोरा परज्यों मैं गतिकरी, कौन नवाई कीन ॥ ४ ॥
नयमग सोध विचारियै, अति भीसम नयवाद
आगम कौ गुरुगम नहीं, अति मोटौ विषवाद ॥५॥
तरक विचार विचारियै, वाद विवाद अभिवाद
अनुभव तै रस पीजियै, षट हू कौ इक स्वाद ॥६॥

प्रस्ताविक

१ संबोध अष्टोत्तरी सं०१८५८ ज्येष्ठ सुदी ३ दोहा १०८ पृ० १६३
२ प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सं० १८८० बीकानेर ,, ११२ पृ० २०५

३ गूढ़ बावनी सं० १८८१ „ ५४ पृ० २६३

इसका दूसरा नाम निहालबावनी है। पं० वीरचंद के शिष्य निहालचंद को उद्देश्य कर इसकी रचना हुई है। इसमें गूढ़ार्थ प्रहेलिकाएं गुंफित की गई हैं जिनका उत्तर फुटनोट में लिख दिया गया है। ये पहेलिकाएं बौद्धिक विकाश और मनोरञ्जन का उपयोगी साधन है।

छत्तीसी, वहुत्तरी आदि

१ आत्म-प्रबोध छत्तीसी पद्य ३६ पृ० १५५

२ मति-प्रबोध छत्तीसी गाथा ३७ पृ० १७२

३ भाव षटत्रिंशिका सं० १८६५ का० सु० १
किशनगढ़ गाथा ३६ पृ० १४०

४ चारित्र छत्तीसी गाथा ३६ पृ० १६५

५ वहुत्तरी पद ७४ पृ० ३१ से ७६

६ आध्यात्मिक पद संग्रह पद ३७ पृ० ६५ से ११२

गद्य रचनाएँ

१ आनन्दघन चौवीसी बालावबोध

२ आध्यात्म गीता बालावबोध सं० १८८० बीकानेर पृ० २८१से३५६

३ साधुसज्झाय (देवचन्द्रजी कृत) बालावबोध प्रकाशित
श्रीमद् देवचन्द्र भाग १

४ यशोविजय कृत तत्त्वार्थ गीत बालावबोध पृ० १८०

५ जिनमत व्यवस्था गीत बालावबोध पृ० ८० से ६४

पूजा साहित्य

छंद विज्ञान

मालापिङ्गल—पिङ्गल के छंद विज्ञान पर उदाहरण सहित १५४ पद्योंमें यह ग्रन्थ रचकर सं० १८७६ फाल्गुन कृष्ण ६ को वीका-नेरमें पूर्ण किया। इसकी रचना रूपदीप, वृत्तरत्नाकर, चिन्तामणि आदि छन्द ग्रन्थों के आधार से हुई है। नवकरवाली (माला) के १०८ मणकों और मेरु के मिलाकर कुल ११० छन्दों की रचना होने से इस ग्रन्थ का नाम भी 'मालापिङ्गल' रखा गया है।

आदि-दोहा—श्री अरिहंत सुसिद्ध पद, आचारज उवझाय।
सरव लोक के साधु कुं, प्रणमुं श्री गुरु पाय ॥१॥
प्राकृत तें भाषा करुं, मालापिंगल नाम।
सुखै वोध वालक लहै, परसम को नहि काम ॥२॥

असंख्यात सागर सबे, उपमा कैसैं होय ।
श्रुत पूरब चवदै सकल, है अन्त इह लोय ॥३॥
जो विद्या सब जगत की, इनमें रही मिलाय ।
नदीनाथ के पेट में, ज्यों सब नदी समाय ॥४॥
पिंगल विद्या सब प्रगट, नागराय ने कीन ।
लोग वहिर वुद्धे कहै, पुन विचार अति खीन ॥५॥
सेषनाग वाणी रहित, फुनि विवेक तें हीन ।
लघु दीरघ गण अगण की, संकलना किम कीन ॥६॥
उरपर दुजिहा जात में सेषनाग है मुख्य ।
छंद शास्त्र रचना रचै, सो नहिं निपुण मनुष्य ॥७॥
ए सब कल्पित बात हैं, विद्या चवद निधान ।
पूरब है उनतें भयो, षट भाषा को ज्ञान ॥८॥

अंत—आदि मध्य मंगल करण, संपूरण के हेत ।
अंतिम मंगल हर्ष को, कारण कवि संकेत ॥ १४४ ॥
जो दधि मंथन की क्रिया, ताको तोलूं खेद ।
माँखन निकसें मथन को, उद्यम खेद निषेध ॥ १४५ ॥
परि समाप्ति ग्रंथे भई, इष्ट कृपा आयास ।
नौका विन दधि तिरनको, को करि सकै प्रयास ॥ १४७ ॥
जंबूद्वीपे मेर सम, अवरन को उतुंग ।
त्युं शरीरमें गच्छ सकल, खरतर गच्छ उतमंग ॥ १४७ ॥
गीर्वाग्वाणी सारदा, मुख ते भई प्रगट्ट ।
याते खरतर गच्छ में, विद्या को आमंट्ट ॥ १४८ ॥

ताके शिखा समान विभु, श्रीजिनलाभसूरीश।
ज्ञानसार भाषा रची रत्नराज गनि सीस ॥ १४९ ॥
चौपाई—संवत कायैं फिर भय देय, प्रवचन माये सिद्धसिलेय।
फागुन नवमी ऊजल पक्ष, कीनौ लक्षण लक्ष विपक्ष॥१५०॥
रूपदीपते वावन किये, वृत्तरत्न ते केते लिए।
चिंतामणि तें केइ देख, रचना कीनी कवि मति पेख॥१५१॥
नहिं प्रस्तारन कर उद्दिष्ट, मेरु मर्कटिन कियो नष्ट।
आधुन कालीन पंडित लोक, ग्रंथ कठिन लखि देहैं धोक॥१५२॥
दोहा—इक सौ आठ दो मेरके, वृत्त किए मति मंद।
यातें याकूं भाषियौ, नामैं माला छंद ॥ १५३ ॥
॥ इति मालापिंगल छंद संपूर्णम् ॥

समालोचना :—

चंद चौपाई समालोचना—कवि मोहनविजय की चन्द राजा चौपाई पर विशद आलोचना लिखकर श्रीमद् ने हिन्दी साहित्य की वड़ी भारी सेवा की है। हिन्दी में संभवतः इस दिशा में यह पहला प्रयत्न था। सं० १८७७ मिती चैत्र कृष्णा २ को वीकानेर में ४१३ पद्यों में इसकी रचना हुई। इसका कुछ विवरण 'समालोचक' रूप में श्रीमद् का परिचय कराते समय दिया जा चुका है। यहां ग्रन्थ के आदि और अन्तिम भाग उद्धृत किये जाते हैं।

आदि—ए निचै निच्चै करौ, लखि रचना कौ सांझ।
छंद अलंकारै निपुण, नहिं मोहन कविराज ॥ १ ॥

दोहा छंदै विसम पद, कही तीन दस मात।
सम में ग्यारै हू धरै, छंद गिरंथै ज्ञात ॥ २ ॥
सो तौ पहिले ही पदै, मात रची दो वार।
अलंकार दूषण लिखूं, लिखत चढ़त विस्तार ॥ ३ ॥
प्राकृत विद्या में निपुण, नहिं वाकौ यह हेत।
प्रथम शब्द दो थानकै, एक पढम कर देत ॥ ४ ॥
ऐसें केते थानके, मात्रा अधिकी देख।
एक थानकै लिख दियौ, कौलौं लिखूं अशेष ॥ ५ ॥

अन्त—घट विनघटनी घटतता, घटता विना घटत्त।
अन्योन्यें असंबद्धता, त्योंही चंद चरित्त ॥ १ ॥
यामें तीनूं, मधुरता, रचना वचन संवन्ध।
मुगध लोक याते कहै, सबतें मिष्ट प्रवन्ध ॥ २ ॥
कविता कविता शास्त्र के, सम्मत भूषण देख।
अलंकार दूसण लखै, सबते अर्थ विशेष ॥ ३ ॥
हीनाधिक मात्रा पदै, लिखत लेख को दोष।
अंतै गुरु मात्रा बधै, सो शास्त्रे निरदोष ॥ १ ॥
पद आदें अंतै गुरु, तैसे ही लघु होय।
हीनाधिक मात्रा वहै, लहु गुरु मानो सोय ॥१॥ इत्यादिपाठः
वर कवि कृत कविता वहुत, नई करन को हेत।
परभव पहुंता जोजना, बुद्ध परीक्षा देत ॥ १ ॥
दूषण सव कवितानि के, भूसन विवुध लहंत।
करवर वदनें वुहत तउ, नयनहीन न लखंत ॥ २ ॥

नां कवि की निंदा करो, ना कछु राखी कान ।
कवि कृत कविता शास्त्र के, सम्मत लिखी लयांन ॥ २ ॥
दोहात्रिक दश च्यार सै, प्रस्तावोक नवीन ।
खरतर भट्टारक गछै, ज्ञानसार लिख दीन ॥ ३ ॥
भय भय पवयण साय सिध, थान त्राम लिख दीध ।
चैत किसन तृतीया दिनें, संपूरण रस पीध ॥ ४ ॥

इति श्रीचंद चरित्रं संपूर्णं। संवन्नवत्यधिकान्यष्टादश शतानि अमिते मासोत्तम मासे चैत्र कृष्णैकादश्यांतिथौ मार्त्तण्डवारे श्रीमद्बृहत्खरतर गच्छे पं० आणदंविनय मुनिस्तच्छिष्य पं० लक्ष्मी-धीर मुनिस्तस्य पठनार्थ मिदंलि । श्री । श्री लूणकरणसर मध्ये ॥

इस प्रति की पत्र संख्या ८७ और भीनासर के यति उ० श्री सुमेरमलजी के संग्रह में है। अक्षर सुन्दर व सुवाच्य हैं। ढालों के किनारे पर उस राग की अन्यान्य ढालों के उदाहरण हैं। अनेक स्थानों में कठिन शब्दों पर टिप्पणी भी लिखी हुई हैं। ज्ञानसारजी के दोहे आदि मूल के चारों ओर=संकेतों के साथ लिखे हुए हैं तथा पंक्ति व गाथा का भी निर्देश किया हुआ है।

अलंकारिक वर्णन व वचनिकाएँ

प्रतापसिंह समुद्रबद्ध काव्य वचनिका—यह कृति जयपुर नरेश प्रतापसिंह के वर्णन में ३२ दोहों में चित्रकाव्य रूप में रचा है। अन्त में चन्द्रायणा छंद दिये हैं। इसी की वचनिका बालावबोध टीका बड़ी मधुर राजस्थानी भाषा में लिखी है।

कामोद्दीपन—यह ग्रन्थ वि० सं० १८५६ मिती चैत्र शुक्ला ३ को जयपुर नरेश प्रतापसिंह की प्रशंसा में बनाया गया था। इसकी भाषा शुद्ध हिन्दी है, उपमालङ्कारों की छटा और कवि की प्रतिभा पद-पद पर झलकती है। कामदेव के साथ महाराज की तुलना करते हुए श्रीमद् ने इसका नाम भी कामोद्दीपन रखा है। इसमें दोहा व सवैयादि कुल मिला कर १७७ पद्य हैं।

आदि—तारिन में चन्द जैसे ग्रहगन दिनंद तैसे,
मणिनि में मणिंद त्यों गिरिन गिरिंदयू।
सुर में सुरिन्द महाराज राज वृन्द हू में,
माधवेश नन्द सुख सुरतरु सुकन्द यू।
अरि करि करिंद भूम भार कौ फणिन्द मनौ
जगत को वन्द सूर तेज तें न मन्द यू।
आशय समंद इन्दु सौ त्रुंद ज्याकौ
मदन कर गोविन्द प्रतपै प्रताप नर इन्द यू॥१॥

अन्त :—संवत् सम्बन्धी दोहा :—

रस सर अरु गज इन्दु फुनि, माधव मास उदार।
सुकल तीज तिथ तीज दिन, जयपुर नगर मझार।७२।
वड़ खरतर जिनलाभ के, शिष्य रत्न गणि राज।
ज्ञानसार मुनि मन्दमति, आग्रह प्रेरण काज।७३।
ग्रन्थ करौ पद रस भरौ, वरनन मदन अखंड।

जसु माधुरिता तें जगति, खंड खंड भई खण्ड ।७४।
सुघरनि जन मन रस दियैं, रस भोगनि सहकार ।
मदन उदीपन ग्रन्थ यह, रच्यौ रुच्यौ श्रीकार ।७५।
जग करता करतार है, यह कवि वचन विलास ।
पै या मति को खण्ड हैं, हैं हम ताके दास ।७६।

इति श्रीमद् वृहत्खरतर गच्छे पं । प्र । श्री ज्ञानसार जिद्विरचितं कामोद्दीपन ग्रन्थ सम्पूर्णम् । संवत् १८८० वैं० सु० ३ श्री बीकानेरे लि० । पं० । लक्ष्मीविलास ।

पूरब देश वर्णन छन्द—यह ग्रन्थ १३३ पद्यों में है । डेढ़सौ वर्ष पूर्व बंगाल का, विशेष कर मुर्शिदाबाद जिले का वर्णन फिलम की तरह इस कृति में दिखाकर कवि ने अपनी अप्रतिम प्रतिभा और वर्णन शक्ति का अच्छा परिचय दिया है । इसका साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्त्व जानने के लिए पाठकोंको प्रस्तुत ग्रन्थके अन्तमें प्रकाशित इस कृति का स्वयं पठन करना चाहिए ।

प्रकाशित कृतियां

श्रीमद् की कृतियों में इस ग्रन्थके अतिरिक्त कतिपय रचनाएँ अन्यत्र प्रकाशित हैं । जिनमें १ जीवविचार स्त० २ नवतत्त्व स्त० ३ दण्डक स्तवन हमारी ओरसे प्रकाशित अभयरत्नसार में, ४ देवचन्द्रजी कृत साधु सज्झाय टबा 'श्रीमद् देवचन्द्र भाग २ में

तथा ५ आत्मनिन्दा, पंचप्रतिक्रमण की पुस्तकोंमें मूल तथा इसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हैं। दादासाहब की पूजा, श्री जिनदत्तसूरि चरित्र (उत्तरार्द्ध) व जिन-पूजा-महोदधि में प्रकाशित है। श्रीआनन्दघनजी कृत चौवीसी के बालावबोध के कई संस्करण भिन्न-भिन्न स्थानों से प्रकाशित हुए हैं।

आनन्दघन चौबीसी बालावबोध को श्रावक भीमसी माणेक ने प्रकाशित तो किया है पर वह संस्करण सर्वथा भ्रष्ट और परिवर्तित रूप से प्रकाशित हुआ है। श्रीमद् ने बालावबोध की भाषा राजस्थानी मिश्रित लिखने के साथ साथ इसमें श्री आनंदघन जी आदि के पदों के अवतरण, प्रसंगानुसार भावों के स्पष्टीकरणके हेतु स्वनिर्मित दोहोंको "मदुक्ति" की संज्ञा से संयुक्त देकर कृति को विशिष्ट चमत्कार पूर्ण बना दिया है। इसमें श्रीमद्ने आनन्दघनजी, जिनराजसूरि, यशोविजयजी, मोहनविजयजी, देवचन्द्रजी, कालिदास और कवीर की उक्तियों के अवतरण उद्धत किये हैं जिससे साहित्यकी दृष्टिसे भी इसके महत्वमें अभिवृद्धि हुई है पर प्रकाशक महाशय ने उन सुमधुर उक्तियों को निकाल कर कृति का प्राण हरण कर लिया है तथा भाषा को भी वर्त्तमान गुजराती का रूप दे दिया है। जिससे तत्कालीन भाषा, लेखनपद्धति और आत्मानुभव तथा तलस्पर्शी वचनों के आस्वादन से पाठकगण वञ्चित रह गये हैं। श्रीमद्ने जहां भी ज्ञानविमलसूरिजी के बालावबोध की मार्मिक समालोचना की है, प्रकाशक महोदय ने उन वाक्यों को सर्वथा निकाल

देने में ही अपनी सफलता समझी है। इससे श्रीमद् की समालोचन पद्धति और यथार्थ स्पष्टवादिता अन्धकारमें अन्तर्हित हो जाती है। प्रकरण रत्नाकर भाग १ की प्रस्तावना में प्रकाशक महोदय लिखते हैं कि :—

"चौथो ग्रन्थ श्री आनन्दघन जी महाराज कृत चौवीसो नो छे अने ते बालावबोध सहित छे। अध्यात्म ज्ञान ना शिखर ऊपर विराजमान थएला श्री आनन्दघनजी महाराज अने तेमनी चौवीसी जगप्रसिद्ध छे। तेमना अध्यात्म ज्ञान विषे अत्रे विशेष लखवानी कांईपण आवश्यकता नथी। वली साक्षर पुरुषो ज्यारे तेमनी चौवीसी वांचे छे तथा तेनु अध्ययन करे छे त्यारे तरत तेमना अन्तःकरण मां अध्यात्म ज्ञान नो विलास प्रगट थाय छे चौवीसी ऊपर ने बालावबोध प्राचीन गुजराती भाषा मां लखायेलो होवा थी तेनो आधुनिक गुजराती भाषा मां सुधरावी अमे आ ग्रन्थ मां छापेलो छे। कारण के ते प्रमाणे करवानी सूचना अमने अनेक अभ्यासिओ तरफ थी थयेलो हती। ते सूचना अमने वास्तविक लागवा थी उपकार नो हेतु जाणी तेम करेल छे अने ते प्रमाणे करता बालावबोध कर्ता बतावेलो आशय लेश मात्र पण दूर करवा मां आवेलो नथी जेथी अभ्यासिओ ने हवे ज्ञान नो उत्तम प्रकारे लाभ थवा संभव छे।

२२ स्तवनों के अर्थ पूर्ण करते हुए प्रकाशक लिखते हैं कि— इति श्रीआनन्दघनजी कृत बावीसी। आ बावीस स्तवन नो बालावबोध ज्ञानसारजीए कृष्णगढ़ मां रही संवत् १८६६ ना

भादरवा सुद १४ ना रोज सम्पूर्ण कर्यो ते प्रमाणे आशय लइ छापतां भूल थई होय ते वांचनारे सुधारी वांचवुं। वली बीजी प्रत ऊपर आनन्दघनजी ना छेल्ला वे स्तवनो हता ते पोतानाज करेला हता अने तेनी ऊपर ज्ञानविमलसूरिए वालाववोध कर्यो छे ते हवी पछी छाप्या छे "ध्रुवपद रामी हो," "वीर जिणेसर चरणे लागुं" इत्यादि। अंत—इतिश्री महावीर जिन स्तवनः श्री ज्ञानविमलसूरि जी ए वालाववोध[१] चौवीसे स्तवनो ऊपर कर्यो छे। देवचन्द जी ए कर्यो नथी अहीं ज्ञानसारजी नो वालाववोध छाप्यो छे अने हवे पछी ना तेमनाज वे स्तवनो छापेला छे—पासजिन ताहरा रूप नुं, चरम जिनेसर।

प्रकाशक महोदय ने वालाववोध कर्त्ता की प्रशस्ति भी प्रकाशित नहीं की। सम्भव है ज्ञानविमलसूरिजी पर की हुई स्पष्ट आलोचना ने प्रकाशक और अभ्यासी महोदय को आलोचना का अंश निकाल देने को प्रेरित किया हो।

प्रकाशक महाशय ने जिन दो स्तवनों को आनन्दघन जी का सूचित किया है वे श्री ज्ञानसारजी के वालाववोध में लिखे अनुसार श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत प्रमाणित होते हैं—

---

[१] यह वालाववोध भी परिवर्त्तित रूप से प्रकाशित हुआ है। जैन धर्म प्रसारक सभा द्वारा "आनंदघनजी कृत चौवीसी अर्थयुक्त तथा वीस स्थानक तप विधि नामक पुस्तक में छपी है। इसमें ज्ञानविमलसूरिजी कृत चौवीसी वाला० लिखा है पर वास्तव में वह माणकचन्द घेला भाई कृत ही है। सभा के प्रकाशकोंने ज्ञानविमलसूरि का नाम न मालूम कहां से लिख डाला है।

आनंदघन चौवीसी के २[२] स्तवनों पर यशोविजयजी के वालाववोध रचने का उल्लेख मिलता है पर वह अलभ्य है।

"चवदमा गुणठाणा ना अंत थी सिद्ध में विसे उन्नागर अवस्था होय जिम देवचन्द संवेगिये, आनन्दघन नी चौबीसी महावीरजी री तवना में कह्यु" —"आनन्दघन प्रभु जागे"
(मल्लि जिन स्तवन बाला० में)

"दोय तवन आनन्दघन नाम ना अहमदाबाद ना भंडार मांहि थी, दोय ज्ञानविमलसूरि, दोय स्तवन देवचन्द संवेगी कृत देखी ने मारी मति तवन रचना करवाने उल्लसी इति सटंक
[पार्श्वप्रभु स्त० बाला०]

"आनन्दघन प्रभु जागे" पद जो देवचन्द्रजी कृत ऊपर सूचित किया है वह ठीक आनन्दघन नामात्मक स्तवन में प्राप्त होता है अतः यह कृति श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत होनी चाहिए। श्रीआनन्दघनजी ने यथासम्भव २२ स्तवन ही रचे होंगे। व महावीर स्तवन जो जो पूर्त्ति स्वरूप रचे गये, उपलब्ध हैं, उनका वर्गीकरण इस प्रकार है—

पार्श्वनाथ स्तवन

आदि पद — प्रकाशक—

१ प्रणमुं पदपंकज पार्श्व ना गा० ७ टबासह स० माणकचंद घेलाभाई (आध्यात्मोपनिषद्) जैनयुग वर्ष २ में भी

२ पासजिनताहरा रूपनुं गा ७ ज्ञानसार टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग १

३ ध्रुवपद रामी हो स्वामी माहरा गा० ८ देवचंद्रजी टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग १ माणेकचंद घेलाभाई

४ पास प्रभु प्रणमुं सिरनामी ज्ञानविमल टबासह प्र० जैनयुग वर्ष २ पृ०-१४६

स्तवन नं० ३ का टबा गा० ७ का छपा है पर हस्तलिखित प्रति में गा० ८ देखी गयी है।

महावीर स्तवन

१ वीर जिनेसर परमेसर जयो गा० ७ टबासह प्र० माणकचंद घेलाभाई टबासह प्र० जैन युग वर्ष २ कपूरविजयजी टबा०

२ चरम जिनेसर विगत स्वरूपनुं रे गा० ७ ज्ञानसार टबासह प्र० प्रकरण रत्नाकर भाग-१

३ वीर जिन चरणे लागुं, देवचंद्र टबासह " "

४ करुणा कल्पलता श्रीमहावीर नो रे ज्ञानविमल टबासह जैन युग वर्ष २ पृ० १४६

श्रीमद् के बालावबोध को सा० झवेरभाई भगवानदास ने भी प्रकाशित किया है पर वह भी भीमसी माणक के अनुसार ही है। तथा नवतत्त्व स्तवन 'नवतत्त्व साहित्य संग्रह' में भी प्रकाशित हुआ है पर उसे भी गुजराती भाषा के सांचे में ढाल दिया गया है। आपके कई पद कई संग्रह ग्रन्थों में प्रकाशित हैं।

भ्रान्तिपूर्ण कृतियें

श्रावक भीमसी माणक महाशय ने जसविलास, विनयविलास और ज्ञानविलास आदि का संग्रह ग्रंथ प्रकाशित किया है जिसकी प्रस्तावना में ज्ञानानन्दजी के रचित ज्ञानविलास को श्रीमद् ज्ञानसारजी कृत सूचित किया है।

इसी के आधार से हिन्दी जैन साहित्य के इतिहास पृ० ७८ में श्रीमद्के विषयमें पं० नाथूरामजी प्रेमीने इस प्रकार लिखा है:—

८ ज्ञानसार या ज्ञानानन्द—"आप एक श्वेताम्बर साधु थे। संवत् १८६६ तक आप जीवित रहे हैं। आप अपने आप में मस्त रहते थे और लोगों से बहुत कम सम्बन्ध रखते थे। कहते हैं कि आप कभी कभी अहमदाबाद के एक श्मसान में पड़े रहते थे। सज्झायपद अने स्तवन संग्रह नाम के संग्रह में ज्ञानविलास और संयमतरंग नाम से दो हिन्दी पद संग्रह छपे हैं जिनमें क्रमसे ७५ और ३७ पद हैं, रचना अच्छी है। आपने आनन्दघन की चौवीसी पर एक उत्तम गुजराती टीका लिखी जो छप चुकी है। इससे आपके गहरे आत्मानुभव का पता लगता है।"

प्रेमीजी के उपर्युक्त कथन में कोई ऐतिहासिक तथ्य नहीं, श्रीमद् के कभी भी अहमदाबाद के श्मसानों में रहने का प्रमाण नहीं देखा गया। हां, बीकानेर के श्मसानों के निकट रहना कहा जा सकता है। ज्ञानसार और ज्ञानानन्द दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति थे, किन्तु ज्ञानानन्दजी के पदों को ज्ञानसारजी कृत बताने की भ्रमणा के उत्पादक श्रावक भीमसी माणक हैं। प्रेमीजी ने तो उनका अनुकरण मात्र किया है। वस्तुतः ज्ञानविलास में ज्ञानसारजी का एक भी पद नहीं है। ज्ञानानन्दजी काशी वाले श्रीचुन्नीजी (चारित्रनंदि) महाराज के शिष्य और सुप्रसिद्ध श्री चिदानन्दजी महाराज के गुरुभ्राता थे। ज्ञानानन्दजी के सम्बन्ध में हमारा लेख 'जैन सत्य प्रकाश' में प्रकाशित हो चुका है।

आनंदघन वहोत्तरी टबो—श्रीमद् बुद्धिसागरसूरिजी महाराज ने आनंदघन पद संग्रह भावार्थ के पृ० १५६ में श्रीमद् ज्ञानसारजी की इस कृति का इस प्रकार उल्लेख किया है।

"श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी के जेमणे सं० १८६६ ना भाद्रवा सुदि १४ ना दिवसे श्रीमद् आनंदघनजी नी बहोतरी ऊपर टबो पूर्यो छे। तेमणे आनंदघनजी साधु वेष धारण करता हता एम स्पष्ट टवा मां दर्शाव्युं छे। श्रीमद् ज्ञानसा (ग) र जी पण बीकानेर ना श्मसान पासे झूंपड़ी मां साधु ना वेषे रहता हता अने साधु ना वेषे पंच महाव्रत नी आराधना करता हता।"

यह उल्लेख भी स्मृति दोषसे ही हुआ विदित होता है क्योंकि उपर्युक्त संवत् आनन्दघन चौबीसी बालाबबोध का है। बहुत्तरी के तो कुछ ही पदों पर श्रीमद् का बालावबोध उपलब्ध है जो इसी ग्रंथ के पृ० २२४ से २६२ में मुद्रित है।

ज्ञानसारजी का व्यक्तित्व महान् था, सारी उन्नीसवीं शताब्दी उनकी जीवन प्रवृत्तियों से आन्दोलित थी। आपकी रचनाएं बड़ी महत्त्वपूर्ण और विशाल हैं इसलिये आपके व्यक्तित्व एवं रचनाओं पर स्वतन्त्र ग्रन्थ ही निर्माण हो सकता है पर रचनाओं के साथ जीवन परिचय के पृष्ठ सीमित ही हो सकते हैं, इसलिये हमने संक्षेप में ज्ञातव्य सारी बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। अन्त में आपके गुणवर्णन में विभिन्न कवियों द्वारा रचित श्रद्धाञ्जलियों में से थोड़ी सी चुनकर यहां दी जा रही हैं जिनसे समकालीन व्यक्तियों का आपके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में जो मन्तव्य था स्पष्ट हो जायगा।

(१) श्रीमद् ज्ञानसार जी गुण वर्णन

उदैचंद सुत ऊपज्यो लियौ विधाता लोच।
देव नारायण दाखवुं को अजब गति अलोच ॥१॥
अढारै इकड़ोतरै, छाक मैंल री छांड
मात जीवन दे जनमीया, सांड जात नर सांड ॥२॥
वास जेगलै वैत सूं; दीवां जनम उदार।
वरस वार वौली गया, वारोतर री वार ॥ ३ ॥
श्रीजिनलाभसूरीसरू, भट्टारक भूपाल।
बीकानेर ज वंदियै, चढती गति चौसाल ॥ ४ ॥
सीस वड़ाला वड़मती, वड़ भागी वड़ रीत।
रायचंद राजा ऋषि, प्रगट्यो पुण्य प्रवीत ॥ ५ ॥
तिण पाटै इण कलि तपै, जाण्यौ थो निरहेज।
वायैं डंबर वीखरै, तरण पसारै तेज ॥ ६ ॥
प्रणमें सूरतसिंह पव, सिलयो जनम रो मींत।
ज्ञानसार संसार में, आखै लोक अदीत ॥ ७ ॥
सीस सदासुख साहरै चलि आवै चौ राज।
श्रवणे तो मैं सांभल्यो आणर दीठौ आज ॥ ८ ॥
बाबाजी वायक अखै, अखै राठोड़ौ राज।
खरतर गुर सगला अखै, रतन अखै महाराज ॥९॥

(२) सोरठीया दूहा

कायम जस कीधाह, लाहो लीयो लोक में।
परम अमृत पीधोह, नीको तै होज नारणा ॥१॥

जणणी धन जायोह, नर तौ जेहडो नारणा।
भूपति मन भायोह, संतारै सिर सेहरौ ॥२॥

रथ भड चाकर राज, पुण्य प्रमाणै पांमीया।
जालम जोगीराज, छोडै बैठो छिनक में ॥३॥

तो जेहडो तूं हीज, करणी करडी तूं करै।
बावा धरणी बीज, निहचै राखै नारणा ॥४॥

नारण कारण न्याय, गूढो तूं भरीयो गुणे।
थिर जस कीरत थाय, निरमल जगमें नारणा ॥५॥

मीत तणी मनुआर, मुनिवर मांनै मौज सुं।
अवसर में उपगार, सदा करीजै सैण सुं ॥६॥

जाणै जाणणहार, मूरख भेद न जानही।
पांपण रै फुरकार, चित में समझै चतुर नर ॥७॥

इक धन लेत छिनाय कर, इक धन देत हसंत।
ससिर करत पतझार तर गैहरा करत वसंत ॥८॥

(३)

दूहा :—मैं वंदन निसदिन करूं, पल पल वारू प्रांन।
वड़े दयाल नरांन जू सागर वुद्धि सुजांन ॥ १ ॥

सवैयौ—सील संतोष समझकै सागर ज्ञान विवेक गुनन के भारे।
अर्थ धरम अरु मोख मुगत्तैं जोगजुगत्त के जांननहारे॥
काम किरोध कूं मार हटावत कूड कुवुद्ध कलंक तैं न्यारे।
सभू न सेलल खेल निसंक जू हाथ खडग क्षमा उरधारे ॥१॥

क्षमा खंजर ज्ञान गुपती ध्यांन बगतर धारियं।
तत्व तुरकी मत्त मंडप सत सभाही सारियं॥
लिव तणी लंगाम ल्यावौ प्रेमपाखर पारियं।
सेल सम रस ठेल छोड़ा पेल पांचू मारियं॥१॥

दूहा :—पांच पचीसूं पेलके खेलै दसमैं द्वार।
अनहद बाजे गगन में, जहा सबदरि रंकार॥१॥

खंड ब्रहमंड कूं जीतहै, सो कहीयै निज सूर।
ब्रह्म तेज ताकै बस, छाना रहै न नूर॥२॥

नूर चंद ज्यूं झलहलै, सहिस किरणजुं सूर।
मिट्यो अंधेरो भरम सब, गयो करम अघ दूर॥१॥
गिरवा गोरखनाथ ज्यूं, दत्त ज्यूं दरस दयाल।
ऐसे जती नरानयू, पूरन परम कृपाल॥१॥
परमारथ स्वारथ सकल, दयावंत निजसंत।
सपत दीप सोभा करै, महिमा कोट अनंत।१।
लछ्या पैं ई...करो, तुम दाता मैं दीन।
मै तो महा मलीन हो, तुम हो बड़े प्रवीन।१।

(४)

ज्ञानी देख नरांयण गुरुजी, सकल लोक ने समझाया।
अद्भुतरूप अखंड तप आवै. भूपति रे पिण मन भाया। ज्ञा० ।१।
देवन कै सी ऋद्ध सिद्ध देखूँ, मांनव भव कौ पद पाया।
लल्क लिइयौ जू पुण्यकी लता सुं, नर भव इम्रतफल लाया। ज्ञा० ।२।

देखन में तो जोगी जंगम, पीर पैकंबर सब आया।
सांमी सन्यासी मुसाफर धूता, पारनइ को नही पाया। ज्ञा० ।३।
गछ चउरासी में गिरुया गिरुया गुण गौतम में गिर राया।
लबधि लबधि में नांम इनूँको, फरस्या अष्टापद पाया। ज्ञा० ।४।
एण अरै में नांम नारायण, परतिख देवल पूराया।
धन्य धन्य भाषा सब लोकन को, जपैदुति दुति २ काया। ज्ञा० ।४।

(मुकनजी संग्रह)

(५) लावणी

सकल बुध परवीन सरस है। जुग में शोभा है भारी।
इन कलयुग में करी तपस्या, पाय वंदत है नर-नारी।
काला गोरा सब वीर कह्या में, पूरण परचा यूँ देवै।
चोसठ योगिन सदा गुरांरे, अष्ट पहर हाजर रैवे ।।१।। स०
गुरु नराण अरू शिष्य सदासुख, सारी वातां सुभकारी।
राज रीत सबै जस नामी चार खूंट जाणै सारी ।।२।। स०
ज्ञानी वडे वचन के साचै, सूरवीर है सरसाइ।
यक्षराज की महर हुइ है, कमी न रैवें अब कांइ ।।३।। स०।
चिंतामण सामी सचराचर, पूरण परचा यूँ देवे।
महाराज की कृपा मोटी, हिल मिल के वातां कैवै ।।४।। स०
दरसन देख्यां सब सुख उपजै, कवियण यूँ उछरंग करै।
हाथी घोड़ा और पालखी, खरतर गच्छ तप तेज सीरै।
संवत अठारै वरस चोरासियै, फागुन सुदी चौदस दिनै।
खुशी होय बिकाणा मांहि, कृपाराम स्तुति गिणै ।।६।। स०।

(६)

दोहा :—आरंभ थारा ईसवर, नर कुण लखै नराण।
गछ खरतर चढ़ते गुमर, झलहल दगो भांण ॥१॥
मिढ न आवै मींढरा, इढविया गच्छ आज।
नर पुर सिरै नराणरा, लायक गछ भुज लाज ॥२॥
पूरब पछिम पेखीया, जती दीठा सहु जोय।
नारायण नर पुर सिरै, हुवो जिके घर होय ॥३॥
सतवादी जतीयां सिरा, जत मत गोरख जेम।
मुनिराजां नारायण मुगट, निहचल रेहिसी नेम ॥४॥
नायक ओपै वेहरा, वेद च्यारुं मुख वांण।
सतजुग नारण सांपरत, तारग वंस तुल ताण ॥५॥
नरायण नर पुर सिरै, जणणीं बीजो न जायो।
सिध चेलो रायां सुतन, अवतारी अंश आयो॥६॥

(चतुरभुजजी संग्रह पत्र १ से)

(७)

दोहा :—जुग में नारायण जती, सुरवृक्ष तणोसरूप।
लाजा वृक्ष पट बीलीया, भृकुटी नवावै भूप
ओ मन वेग अपार वागां नहीं रागा विढंग।
ओ धुरत असवार, जग में नारायण जती॥
ओ मन मस्त अपार, हालै निज वाह्यो हसत।
इण माथै असवार जडीया निज सांकल यती॥

आशा नदी अपार, नर वाहण लांघै नहीं
ओ अंब खेवट असवार, जोय रे तट पैले जती ॥

दोहा :—परमभक्त जिन राजके, ज्ञानसार परवीन ।
सत सीलहि पाले सदा, रहे तपस्या लीन ॥

(८)

कवित्त :—पंडित प्रवीण ज्ञान गहरो समुद्र जैसो.
काटै भवफंद अंध, दूर ही गयो रहे ।
पंचव्रत धारै साधु गुन ही अंग विचारै,
प्रसिद्ध नराण हिरदै क्षमा लीयो रहे ॥
विद्यमान देत हे वखान सब श्रावककुं,
भाखै भगवंत सूत्र अरथ को दयो रहै ।
नहीचै विचार देखो ऐसो मुनिराजजूकूं,
जिनराज जुके पद पंकज गह्यो रहे ॥

दोहा :—साधु संवेगी भेटीया, भयो मनोरथ पूर ।
सुख संपत्ति आनन्द थयो, गयो दलिदर दूर ॥१॥
चतुरता की चूंप कुं, लखै न कोऊ टांक ।
जैसे मृग के सीग में, सुधै ही में वांक ॥
नयन वयन अरु नासिका, है सबके इकठौर ।
कहवो सुनवो अमलवो चतुरन को कछु ओर ॥
गिर सरवर यों मुकरसे, भार भीजवो नांहि ।
सुख दुख दोऊ होत है, ज्ञानी के घट मांहि ।
नयण वयण अमृत रसे, रूप अनोपम सार ।
ज्ञानसार गुरु माहरा, सुगल तणा दातार ॥

(६)

सवैया :—गुला में गोपाल कमल में कमल नैन,
सेवता में सीताराम वनमें वनवारी है ।

वेल में बाहारा चंपेली में चतुरभुज,
केवडा कनाया नारा पानी वारी है ॥
गुलदा वदा में दीनवंध ज़ाफरा में जगन्नाथ,
सोतियम सदन व मेंदी में मुरारी है ।
रूप मंजरी में राधेकृष्ण केतकी में केसोराय,
देखो नाराण नाम फुली फुलवारी है ॥

(१०)

(कवित्त बाबाजी श्रीनराणजी को कह्यो सेवग नवलरायजी कौ अजमेर मध्ये)

सोभत गुण सागर, है बुद्धि को उजागर ।
गुनियन को आगर सो वड़ो जैनमती है ॥
सवही विध लायक, है अमृत से वायक ।
ये दीपै गच्छनायक, यों कान्त हद रही है ॥
रायचंदजू के शीश तेरे यशचिहुं दिश ।
स। सील संतोष बिच, ओपे अधिक सतो है ॥
कवि कहै नोललाल जाकी वाणी है विशाल ।
यो दाता गुरुदयाल, ऐसो नारायणजती है ॥
कविता में पुनित ऐसो रीति राजनोत हूं में ।
जीत के प्रबल काम, कीत जस कंत को ॥
करमें विश्वकरमा सो, हुनर हजार जाके ।
वैद्यक में जान सब जोतक मंत्रतंत्र को ॥
बोधि भव जीवनको गौतम सो ज्ञान वाके ।
मान दानराण जानै वान हित संत को ॥
जिनलाभसूर चंद राय शिख राजत यो ।
निहचै नरायण है भेष भगवंत को ॥

श्री ज्ञानसारजी की समाधि (स्वस्तिकांकित)
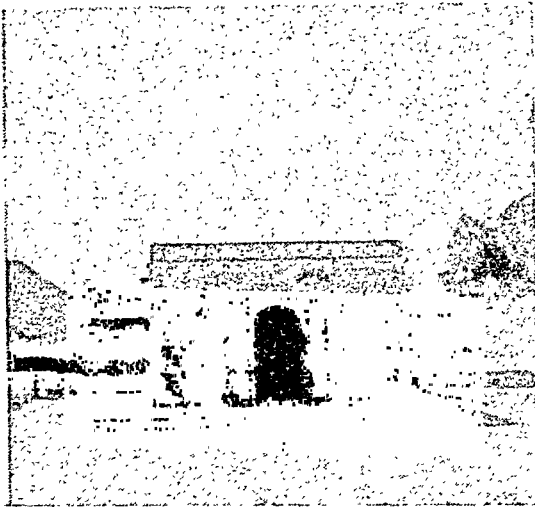
श्री ज्ञानसारजी के समाधि-मंदिर का प्रवेश द्वार

श्री ज्ञानसारजी (नारायण जी)

हरसुखजी, खूबजी और सदासुखजी को उपदेश करते हुए

ज्ञानसार ग्रन्थावली-खण्ड १

ज्ञानसार पदावली

चौवीसी

१—श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

राग भैरव—(उठत प्रभात नाम जिनजी को गाईयै—एहनी)

ऋषभ जिणंदा, आणंदकंद कंदा,
याही तैं चरण सेवै, कोटि सुर इंदा ॥ ऋ० ॥ १ ॥
मरुदेवा नाभिनंद, अनुभौ चकोर चंदा,
आप रूप कौ सरूप, कोटि ज्युं दिणंदा ॥ ऋ० ॥ २ ॥
शिव शक्ति न चाहूं, चाहूं न गोविन्दा।
ज्ञानसार भक्ति चाहूं, मैं हूं तेरा बन्दा ॥ ऋ० ॥ ३ ॥

२—श्री अजित जिन स्तवनम्

राग भैरव—(जागे सो जिन भक्त कहावै, सोवे सो संसारी)

अजित जिनेसर काया केसर, तूं परमेसर मेरा।
सिद्ध बुद्ध सुविशुद्ध मुक्ति मग, प्रापक है पद केरा ॥अ०॥१॥
अकल अमूरतीक अविनासी, आतम रूप उजेरा।
अलख निरंजन अकल अकाई, असहाई पद तेरा ॥अ०॥२॥

अज अरुजी चिद्‌वन अनहारी, अभिधा शब्द घनेरा* ।
दीनवन्धु हे दीन दयानिधि ! ज्ञानसार तुहि चेरा ॥अ०॥३॥

३-श्री संभव जिन स्तवनम्

राग भैरव

(राम मंत्र भज ३ हरे २, हरे राम कहि २ राम नाम कहि हरे हरे)
संभव संभव संभव कहि कहि, संभु सभु मति कहे कहे ।
संभु सयंभू संभव नामा, यातैं मन मति भरम गहे ॥सं०॥१॥
संभव संभु सयंभू अभिन्ना, इह सभू मिथ्यात मए ।
शक्तिमंत विन पद संज्ञा तैं, कनक धतूरैं नांहि लहे ॥सं०॥२॥
राग दोष मिथ्या परणिति वट, मिट भव भ्रमण सरूप वहे † ।
ज्ञानसार कहि उन संभू में, सभव रूप न भिन्न कहे ॥सं०॥३॥

४-श्री अभिनंदन जिन स्तवनम्

राग वेलावल

अभिनंदन अवधारौ मेरी, मैं हूं पतित तिहारौ ॥अ०॥
पतित उधारन विरुद अनादी, वाकी ओर निहारौ ॥मेरी०॥१॥
केते पतित उधार विरुद लहि, मेरी वेर विसारौ ।
एक उधारी अपनै विरुदे, क्युं नाही उजवारौ ॥मेरी०॥२॥

पाठान्तर— * अनेरा † दहे

थोरे कारज बडि बात सिद्ध ह्वै, क्युं न आलस टारौ।
अवसर समझी विनती करहुँ, ज्ञानसार निसतारौ ॥मे०॥३॥

५-श्री सुमति जिन स्तवनम्

राग भैरव (जागे सो जिन भक्त कहावै, सोवे सो संसारी)

सुमति जिणेसर चरण शरण गहि, कारण करण तिरण की ॥
बहिरातमता छोड आपनी, अन्तर आतम भावै।
थिरता जोगैं चरण शरण की, कारणता सद्भावै ॥सु०॥१॥
जिन सरूप संजोगैं आतम, समवाई गुण चीनै।
समवाई गुण गुणि अभिन्नैं, आप सुभावैं लीनैं ॥सु०॥२॥
आतम सुभावैं आतम पदता, व्यापकता सरवंगैं।
ज्ञानसार कहि चरण शरण की, आतम अरपण रंगे ॥सु०॥३॥

६-श्री पदमप्रभु जिन स्तवनम्

राग वेलाल

पद्म प्रभु जिन तूं मुंहि स्वामी, तूहीं मेरा अंतरयामी।
हूँ बहिरातम छूं अघरूपी, तूं परमातम सिद्ध सरूपी ॥प०॥१॥
हूँ संसारी गति थितकारी, तैं गत्यादिक दूर निवारी।
हूँ कामादिक कामी रागी, तूं निःकामी परम विरागी ॥प०॥२॥
हूँ जड संगी जड भिखारी, तूं आतमता परणित धारी।
दीन हीन तैं करुणा कीजै, ज्ञानसार नै निज पद दीजै ॥प०॥३॥

७-श्री सुपार्श्व जिन स्तवनम्

राग वेलावल (मेरे एतौ चाहिये)

श्री सुपास जिन ताहरौ, सुध दरसण चाहूँ।
आधुनकी नी उक्ति नी, मन संका ल्याऊं ॥श्री॥१॥

शुद्धाशुद्ध नयै करी, पुन निश्चै भाद्रू।
विवहारी नय थापतां, अत ही उलझाऊं ॥श्री॥२॥

वस्तु गतो जिन दर्शनी, तसु सीस नमाऊं।
ज्ञानसार जिन पंथ नौ, मैं भेद न पाऊं ॥श्री॥३॥

८-श्री चन्द्रप्रभु जिन स्तवनम्

राग रामगिरि (कुंथु जिन मनडौ किम ही न बाजै)

मनुऔ समझायौ नहि समझै, समझायौ नहि समझै।
ज्युं ज्युं सठ हठ कर समझाऊं त्युं त्युं उलटौ उलझै ॥म०॥१॥

ध्यानारूढ थई जो धारूं, तौ मांमूरी मूंझै।
एहवौ कुण[1] समझावण[2] हारौ, जे समझी नै सुलझै[3] ॥म०॥२॥

चन्द्रप्रभु जौ करैय सहाई, तौ क्यूं ही पडिबूझै।
ज्ञानसार कहै मनुआ नै, तौ क्यूं ही आंख्यां सूझै ॥म०॥३॥

पाठान्तर—१ कोई २ सुलझावण ३ समुझै।

९–श्रीसुविधि जिन स्तवनम्

ढाल (रे जीव जिन धर्म कीजिये)

सुविधि जिनेसर ताहरो, मत तत जे जाणै ।
ते मिथ्या मति नवि ग्रसै, मत ममत न ताणै ॥सु०॥१॥
थापक उत्थापक मती, ए सरव ममत्ती ।
तिह किण जिन मत देम नै, मति समझौ सुमति ॥सु०॥ २॥
ज्ञानसार जिन मत रता, ते रहिम[1] पिछाणै ।
शुद्ध सुपरणित परणामी, अनुभव रस माणे ॥सु०॥३॥

१०–श्रीशीतल जिन स्तवनम्

राग—सोरठ

ऊजला राम नाम मनाजी ॥ ऊ० ॥
थांसू लेखौ चोखौ राखूं, उलभयां उलभण ठाम ॥मना०॥१॥
थां मांहे छूं नहि तुझ बाहिर, शीतल शीतल धाम ।
रांमयै मिथ्या ताप समावण, जिन गुण तरु आराम ॥म०॥ऊ०॥२॥
राखी जनम थकी मित्राई, सारचो ह्वै शुभ काम ।
ज्ञानसार कहै मन माता, भाखौ दाखी नाम ॥म०॥ऊ०॥३॥

११–श्रीश्रेयांस जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(पद्म प्रभु जिन ताहरो, मुझ नाम सुहावे)

श्री श्रेयांस जिन साहिबा, सुण अरज हमारी ।
समरथ सामी सू मिल्या, रहिया जनम भिखारी ॥श्री०॥१॥

पाठान्तर—१ रहस्य

दीनदयाल कृपाल नो, जो विरुद धरावै ।
अन्तर आतम रूप नी, ते सगति जगावै ॥श्री०॥२॥
शक्ति सहाई आप ह्वै, तो निज पद लीजै ।
ज्ञानसार अरदास नी, आशा सफल करीजै ॥श्री०॥३॥

१२-श्रीवासुपूज्य जिन स्तवनम्

राग—वेलावल

वासुपूज्य जिनराज नो, मुहि दरसण भावै ।
मत-मत ना उनमादिया, यौंहि जनम गमावै ॥वा०॥१॥
मत-मद नी उनमत्त थी, तत्वातत्व न बूझै ।
राग दोष मति रोग थी, पर भव नहिं सूझै ॥वा०॥२॥
ज्ञानसार जिन धर्म नै, सग नय समवाई ।
अनुगामी नै संपजै, आतम ठकुराई ॥वा०॥३॥

१३-श्रीविमल जिन स्तवनम्

राग—कलिंगडो

भाई मेरे विमल जिनेसर सामी ।
आतम रूप नौ अंतरयामी, परणामै परणामी ॥मा०॥१॥
अविरोधी गुण गणीय अभेदी, साधकता नी सिद्धै ।
तेहिज सक्कै तूं मुहि तारक, चेतनता नी ऋद्धै ॥मा०॥२॥
रूप अभेदै शक्ती अभेदी, विमल विमलता भावै ।
आतमता परणमन प्रयोगे, ज्ञानसार पद पावै ॥मा०॥३॥

१४-श्री अनंत जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(पद्मप्रभु जिन ताहरौ, मुहि नाम सुहावे)

तूं ही अनंत अनंत हूं, वलि चरण नौ चेरौ ।
मान मेल साहिब कर्यो, तौ ही अवगुण हेरौ ॥तूं० ॥१॥
चूक भर्यो चाकर सदा, ते सनमुख देखौ ।
तौ सेवक स्वामी तणौ, स्यौ गहिसी लेखौ ॥तूं० ॥२॥
सौ गुनहा वगसै जदै, स्वामी सलहीजै ।
ज्ञानसार नै साहिबा, निज पद सौंपीजै ॥तूं० ॥३॥

१५-श्री धर्म जिन स्तवनम्

राग पंचम—(मारूं मन मोह्यूं रे श्री०)

धर्म जिनेसर तुझ मुझ धर्म मां, भेद न होय[1] अभेद रे ।
सत्ता एकै धर्म अभिन्नता रे, तौ स्यौ एवड़ौ भेद रे ॥ध० ॥१॥
राग दोष मिथ्या नी[2] परणितै रे, परणामियौ परिणाम रे ।
हूं संसारै तेह थी संसरूं रे, ताहरूं शिवपद धाम रे ॥ध० ॥२॥
तूं नीरागी तूं ही निरमदी रे, निरमोही निरमाय रे ।
अजर अमर तूं अक्षय अव्ययी रे, ज्ञानसार पद राय रे ॥ध० ॥३॥

पाठान्तर—१ नहीं य २ मिथ्यात्वी

१६–श्री शांति जिन स्तवनम्

राग सारंग

जब सब जनम गयौ तब चेत्यौ
पाछल वूही पीठै लागे, चेत्यौ सो ही न चेत्यौ ।।ज० ।।१।।

शब्द रूप रस गंध फरस में, अजहू रहत अचेत्यौ ।
संवर करणी सुणतां सिरकै, आश्रव मांहि अगेत्यौ ।।ज० ।।२।।

संयम मार्ग प्रवर्त्तन समयै, आतम रहत पछैत्यौ ।
संत जिनेसर ज्ञानसार को, मन कबहूं नहिं जेत्यो ।।ज० ।।३।।

१७–श्री कुंथुनाथ जिन स्तवनम्

(कहा अज्ञानी जीव कूं)

कुन्थू जिनेसर साहिबा, सुन अरज हमारी ।
हूं शरणागत ताहरौ, तूं शिव मग चारी ।।कुं० ।।१।।

शिव मग नै अवगाहतैं, तैं शिव गति साधी ।
आतम गुण परगट करी, आतमता लाधी ।।कुं० ।।२।।

दीन जाण करुणा करी, शुध मार्ग बतावै ।
ज्ञानसार जिनधर्म थी, शिव पदवी पावै ।।कुं० ।।३।।

१८–श्री अरि जिन स्तवनम्

(तूं आतम गुण जाण रे जाण)

अरि जिन अशुध श्रद्धान विधान,
सर्व क्रिया निष्फलता मान ।।अ० ।।१।।

तीन तत्व नी जे ओलखाण, तेहिज शुद्ध श्रद्धान तूं जाण ।
वलि उत्सूत्र न भाषै जेह, बीजुं लक्षण एहनूं एह ॥अ०॥२॥
तीजूं अवंचक करणी करै, ते निज रूप नै निहचै वरै ।
ज्ञानसार शिव कारण अमूल, अर जिन भाख्यूं श्रद्धा मूल ॥अ०॥३॥

१९ श्री मल्लिजिन स्तवनम्

राग रामगिरी (आज महोछव रंग रली री)

मल्लि मनोहर तुझ ठकुराई ॥म०॥
सुता भयै तैं सूप वजाई, घंट सुघोषा देव घुराई ॥म०॥१॥
जय जय घोष न मायो जग में, अनमिष नारकिये सुख पाई ।
सुर वनिता मिल गाई वधाई, सुरपुर में बांटंत वधाई ॥म०॥२॥
इंद्राणी वर आंगण नाचै, भर मुक्ताफल थाल वधाई ।
ज्ञानसार जिन जनम जगत की, हरख हकीगत किन वरणाई ॥३॥

२०—श्री मुनिसुव्रत जिन स्तवनम्

राग वेलावल—(श्री महाराज मनावौ)

मुनिसुव्रत जिन वंदौ[1], प्रहसम अरूचिनिकंद आनंदौ ॥मु०॥
ह्वै सदबुद्धैं वंदन रुचिता, उदयैं अनुभव चंदौ ॥मु०॥१॥
वस्तु गतैं निज तत्व प्रतीतैं, मिथ्यामति अति मंदौ ।
कुशल विलास आतमता वृत्तैं, परचै परमाणंदौ ॥मु०॥२॥
कारण जोगै कारज सिद्धी, ह्वै जाणै मतिमंदौ ।

पठान्तर—१ चंदो

ज्ञानसार की ज्ञानसारता, सम भासै जिण चंदो ॥मु०॥३॥

२१ श्री नमि जिन स्तवनम्

राग आस्या—अब हम अमर भए न मरैंगे

अंबर देहो मुरारी, ए विण)

नमि जिन हम कलि के संसारी, पुदगल के सहिचारी ॥न०॥
क्या बूझै हम वंदन पूजन, नमन भाव शुध तारी[१] ॥न०॥१॥
पुदगल खावै पुदगल पीवैं, पुदगल पथर पथारी ।
पुदगल संगै हमही सोवैं, पुदगल लगत सुप्यारी ॥न०॥२॥
वंदनादि नो आतम अर्पण, विन संबंध न वारी ।
ज्ञानसार नी ज्ञानसारता, नमि जिनवर सहिचारी ॥न०॥३॥

२२ श्रीनेमि जिनस्तवनम्

राग वसंत ढाल—(परमगुरु जैन कहो क्युं होवे)

एसै वसंत लखायौ, नेमि जिन एसै वसंत लखायौ ।
धरम ध्यान सिघरी की तापै, मिथ्या शीत घटायो ।
किंचित शीत रह्यो भव थित कौ, यातैं मांगण आयौ ॥न०॥१॥
शुक्ल ध्यान गुदरी बगसैं विन, कैसे शीत न जावै ।
ठंड घट्यां विन पाचूं इंद्री, मन गरमी नहिं पावै ॥न०॥२॥
विन गरमी विन हाथ पैर सूं, साधु क्रिया किम कीजै ।
साधु क्रिया विन ज्ञानसार गुन, शिव संपद किम लीजै ॥न०॥३॥

पठान्त —१ भारी

२३ श्रीपार्श्व जिन स्तवनम्

राग रामगिरी—(अंवर दैहो मुरारी)

पास जिन तूं है जग उपगारी, तूं है जग उपगारी ।
जग उपगारी विरुद धारकै, लीजै खवर हमारी ॥पा०॥१॥
जगवासी में जो मोहि राखो, तो मौकूं ही तारौ ।
विरुदैं धारौ जो नहि तारौ, मोहि करन[1] कौ सारौ ॥प०॥२॥
पतित उधारन विरुद तिहारौ, वाकूं क्यूं विसरीजै ।
ज्ञानसार की अरज सुणीजै, चरण शरण राखीजै ॥प०॥३॥

२४ वीर जिन स्तवनम्

राग भैरव—(जब लग आवे नहि मन ठाम)

वीतराग किम कहि वधमान ॥वी०॥
सम विसमी विन समता राखै,
हीनाधिक नौ स्यौ अभिधान ॥वी०॥१॥
भतत्तै ऋद्धयादिक देखी, परिषद में आपै सनमान ।
अयमत्तौ जलक्रीडा करतौ, तारयो सीस विनीतौ मान ॥वी०॥२॥
गोशालै नै अविनीतौ लख, असंख भवे दीवौ शिव थान।
ज्ञानसार नै हजियन आपै, दो दीठैं देखै न समान ॥वी०॥३॥

पाठान्तर— १ करम

कलश-प्रशस्ति, राग—धनाश्री (भजगुण जिनके)

गौडेचाजी तैं मुहि, सुधि बुधि दीधो ।
तुझ सहायैं बुद्धि पंगुर थी, जिन गुण नग गति सीधी ॥गौ०॥१॥
अक्षर घटना स्वपद लाटनी, भाव वेध रस बीधी ।
अंध बधिर आशय नहीं समझू, सी श्रुत ऊंधी सीधी ॥गौ०॥२॥
काला-वाला सहु थी करि लै, भक्ति वृत्ति रस पीधी ।
सुमति समय तिम प्रवचन माता, सिद्ध वाम गति लीधी[1] ॥गौ०॥३॥
वर खरतर गछ रत्नराज गणि, ज्ञानसार गुण वेधी ।
विक्रमपुर मिगसर सुदि पूनम, चौवीसू स्तुति कीधी ॥गौ०॥४॥

इति पदं

पं० प्रवर ज्ञानसारजिद्गणिः कृत चतुर्विंशितिका समाप्ता ।

१ सुमति=५, समय=७, प्रवचन माता=८, सिद्ध=१ वि० सं० १८७५

॥ विहरमान बीसी ॥

श्री सीमंधर जिन स्तवनम्

राग—करेलड़ा घरदे रे

क्रिम मिलियै क्रिम परचियै, क्रिम रहियै तुम पास।
क्रिम वत्रियै तवना करी, तेह थी चित्त उदास ॥१॥
सीमंधर प्रीतड़ी रे, करिये कौण[1] उपाय, भाखो कोई रीतड़ी रे।
ते देसैं जावूं नहीं, मिलवै स्यौं सम्बन्ध।
चौ निजरै मिलवूं नहीं, सी परिचय प्रतिसंधि[4] ॥२॥ सी०॥
प्रथम प्रकृत नैं अभिलखी, पाछ्ल करिये वात।
ए अनुक्रम जाणया विना, परिचय नौ प्रतिघात ॥३॥ सी०॥
परिचय विण कोई सदा, न दियै वैसण पास।
पासै ही वैसण न दे, रहिवा नी सी आश ॥४॥ सी०॥
जौ रहियै पासै सदा, तौ अवसर अरदास।
करियै पिण मोटा कदे, न करै निपट निराश ॥५॥ सी०॥
को कालै तुझ चरण नी, सेवा करस्यूं साम।
इण कालै मुझ वन्दना, प्रीछेज्यो परिणाम ॥६॥ सी०॥
दूर थकां कमठी परै, महर नजर महाराज।
ज्ञानसार थी राखज्यो, सरस्यै तौ सहु काज ॥७॥ सी०॥

पठान्तर—१ केण ४ मिलाव

२ श्री जुगमधर जिन स्तवनम्

(वीरा चांदला। ए देशी)

जुगमंधर जिनराज जी रे, तुमसूं निबड़ सनेह।
करवा वांछूं बापजी रे, किम तुम दाखौ छेहो रे ॥१॥
जुगमंधर जिन, सबल विमासण एहो रे।
साम विरागिया, राग विना नहीं नेहो रे ॥जु०॥ २॥
मूल विना नहीं तरुवरा रे, ग्राम विना नहीं सीम।
सास विना जीवित नहीं रे, राग नेह नी नीमो रे ॥जु०॥ ३॥
हूँ इण भरत नौ कीड़लौ रे, तुं शिव वासी सिद्ध।
सरिखा विण न हुवै कदै रे,प्रीत रीत नी सिद्धो रे ॥जु०॥ ४॥
आसंगौ किम कीजियै रे, करियै जेह नी आस।
ज्ञानसार नै प्रीछज्यो रे, चरण कमल नौ दासौ रे ॥जु०॥ ५॥

३ श्री बाहु जिन स्तवनम्

(भवसायर हुँती जो हेलै)

बाहु जिनेसर सेवा तारी, हूँ जाणूं विध सुविधैं सारी।
द्रव्य भाव पूजा बे भेदैं, प्रथम अभय अद्वेष अखेदैं ॥१॥
मन निश्चल तिम रुचि पूजा नी,अखेदी विण ए न हुवानी।
अंग अग्र द्रव्य पूजा जेह, तेहनी शुचिता वांछै एह ॥२॥

असंख्यात मन ना पर्याय, भाव पूजा ना भेद कहाय ।
उपशम चीण सयोगी ठाणैं, चौथो पड़वत्ति भेद वखाणैं ॥३॥
जे प्रवचन नौ वचन न छेदै, ए भाख्यौ जिन पंचम भेदै ।
किरिया करै समय[1] अनुसारै, वंचकता नौ लक्षण वारै ॥४॥
निमतौ[2] एकंत पक्ष न ताणै, ते जिन सत्तम भेद वखाणै ।
ज्ञानसार जिन पड़िमा जेह, जिन सम मानै अट्ठम एह ॥५॥

४—श्रीसुवाहु जिन स्तवनम्
(ललनां नी देशी)

श्री सुवाहु जिणंद नौ, परम धरम परमाण ॥ललना॥
कीधौ त्रिकरण शुद्ध थी, जिन आगमगम[3] जाण ॥ल०॥१॥श्री॥
इग विह सम सत्ता मई, दुविहै दो नय धार ॥ललना॥
तीन तत्व त्रिविधै भण्यौ, चौ दानादिक च्यार ॥ल०॥२॥श्री॥
पण विह पंच महाव्रते, छव्विह जीव निकाय ॥ललना॥
सग विह सग भय निरभई, अड़ विह प्रवचन माय ॥ल०॥३॥श्री॥
इत्यादिक वहु भेद थी, धर्म कह्यो विवहार ॥ललना॥
निश्चय आतम रूप थी, तद्गत धर्म विचार ॥ल०॥४॥श्री॥
असंख भवै उदयै हुवै, ते विवहार सरूप ॥ललना॥
निश्चय अंतिम भव लहै, ज्ञानसार रस रूप ॥ल०॥५॥श्री॥

पाठान्तर—१ सिद्धांत । टिप्पणी—२ निर्मम छतौ ३ मार्ग ।

५–श्री सुजात जिन स्तवनम्

ढाल—(हिवरे जगत गुरु)

मैं जाण्यो निश्चै करी हो जिनजी, जिन धर्म सम नहीं कोय ।
सकल नयासय[1] जाणनै हो जिन, धर्म जगत ना जोय ॥१॥
सुण रे सुजात जिन, तुझ धरम समो वड़ को नहीं ।
तिण इण भव हो मुझ शरणौ एह कै, इण विन को[2] जग
मैं सही ॥२॥सु०॥

जिम गहिली नौ पहिरणो हो जिन, तिम सहु धरम कथन्न ।
कर्म-रहित करता कहै हो जिन, इम किम मिलैय वचन्न ॥३॥सु०॥
ईश्वर प्रेर्यो स्वर्ग में हो जिन, नरकैं जावैं जीव ।
भूत मई केई कहै हो जिन, यदृगच्छायैं सदीव ॥४॥सु०॥
मिथ्या मत मद मोहिया हो जिन, स्यूं जाणैं नय वाद ।
ते विन कुण समझी सकै हो जिन, 'ज्ञानसार' संवाद ॥५॥सु०॥

६–श्री स्वयंप्रभ जिन स्तवनम्

(महिर करो जिनजी).

श्री स्वयंप्रभु ताहरौ जिनजी, विरुद सुण्यौ मैं कानकै ।
परम पुरुष जिनजी ॥
सेवा सांची साचवै जिनजी, तेहनै द्यै शिव थानकै ॥प०॥१॥

टिप्पणी—१ नय का आशय । पाठान्तर—२ न गमें ।

क्यु करि पहुँचूं तुम कनै, तो किम सारूं सेव कै ॥प०॥जि०॥
अलगां थी ही ताहरी जि०, आण धरूं नितमेव कै ॥प०॥२॥
जौ निजरां सन्मुख रहूं जि०, तौ फल प्रापत होय कै ॥प०॥जि०॥
पंखी हो पहुँचै नहीं जि०, मुझ संभव नहीं कोय कै ॥प०॥३॥
इंहांथी ही अवधारज्यो जि०, वीनति वारंवार कै ॥प०॥जि०॥
तुझ सरिखौ समरथ धणी जि०, पाम्यौ परम उदार कै ॥प०॥४॥
तूं जगतारक हितकरू जि०, स्वयंप्रभु जिनराय कै ॥प०॥जि०॥
ज्ञानसारनै तारवा जि०, कीजै वेग उपाय कै ॥प०॥जि०॥५॥

७ श्री ऋषभानन जिन स्तवन ।

राग-(श्रेणिक मन अचरिज थयौ)

तुझ परणाम नै परणम्यै, हूं निजरूप नौ कर्ता रे ।
तूं मुहि साधक सिद्ध हूं, तूं हूं सम इग सत्ता रे ॥
ऋषभानन जिनरायजी ॥१॥

पूर्व रूप नै अभिलषी, जो निरखूं निज रूपो रे ।
पर परिणाम नै परणम्यै, हूँ कारक भव कूपो रे ॥२॥ऋ०॥
मिथ्यात्वादिक हेतु नै, परिणामैं परिणामी रे ।
हूं वांछूं अठ कर्म नै, कर्म फलौं नौ कामी रे ॥३॥ऋ०॥
संवेगादिक लक्षणे, चेतनता नौ रामी रे ।
हूं कर्ता निजरूप नौ, ज्ञानादिक गुण पामी रे ॥४॥ऋ०॥

ए गुण गुणिय अभेद हूँ,[1] 'शिव अचलौ निरबाधी रे।
अरुज अपुनरावर्त थी, ज्ञानसार गति साधी रे ॥५॥ऋ०॥

८ *श्री अनतवीर्य्य जिन स्तवन।*
राग-(सासंधर करजो मया)

इग मींढ्यां हूं तुम कनै, दो मींढ्यां अति दूर।
तीनूं लच्चण मेलव्यां, चिदानन्द रस पूर ॥१॥
अनंतवीरज अवधारज्यो, गुपति रहिस नी ए बात।
मोटा मरम न दाखवै, तेम पराई जे तात ॥२॥अ०॥
चौ मेल्यां थी सहु समौ, अन्वय लच्चण धार।
व्यतिरेकी नै मेलव्यां, पंचम गति दातार ॥३॥अ०॥
हूं तुम भेद न एकता, तौ किम इवड़ौ जी भेद।
जुंजन करणौं ताहरैं, पर परणित नौ ए खेद ॥४॥अ०॥
तुझ मुझ अंतर मेटवा, ज्ञानकरण गुण धार।
ज्ञानसार गुण एकता, चेतनता नौ व्यापार ॥५॥अ०॥

९ *श्री विशाल जिन स्तवन।*
राग-(कड़वा फल छै क्रोधना)

श्रीविशाल जिनराय नौ, परम धरम सुपवीतौ रे।
करम नाश नै कारणै, ए सम अवर न मीतौ रे ॥१॥
जय जय जिन धर्म जगत में ॥

पाठान्तर—१ तूं।

शब्द अरथ नय एकता, वलि सापेक्ष वचन्नो रे।
भाख्यो अनंत भगवंत जे, तिम भाखै ते धन्नो रे ॥२॥जय०॥
पण इण दूसम काल ना, मत ममती उनमादी रे।
के तुझ थापै ऊथपै, तेह वितंडावादी रे ॥३॥जय०॥
थापकवादी इम कहै, जिन पूजा नै काजौ रे।
कलिय कतरवी बींधवी, इम जंपै जिनराजो रे ॥४॥जय०॥
ऊथापकवादी कहै, पूजा नहीं आचरणा रे।
विण आरंभ पूजा नहीं, जिन धर्म नहीं विण जयणा रे ॥५॥जय०॥
फूल कली नै कतरवै, जिन मुनि हिंसा दाखी रे।
साठ दया ना नाम में, जिन पूजा जिन भाखी रे ॥६॥जय०॥
मत वादी मत ताणतौ, धर्म तत्व स्यूं जाणै रे।
ज्ञानसार जिन मत रता, ते मत ममत न ताणै रे ॥७॥जय०॥

१० ॥ श्री सूरप्रभ जिन स्तवन ॥

राग—(धन २ संप्रति साच्चौ राजा)

जौ हूँ गायौ गाउं ताहरौ, तौ पिण जाणै न माहरौ रे।
मारग चलतां आरैं मारौ, तौ स्यौ दास नौ सारौ रे ॥१॥
सूरप्रभु जिन तुम किम रीझै ॥
सैमुख सूं परपूठे कीधी, अधिकी सेवा जाणौ रे।

जौ कोई चूक करी ते बगसौ, पिण इवड़ौ स्यूं ताणौ रे ॥२॥सू०॥
जे कोई दास करेसी सेवा, अवसर अरज जणावै रे।
जो बगसेवा नी नहीं मनसा, तौ किम सेव करावै रे ॥३॥सू०॥
सेव करावी देवा टाणौ, हसि नैं दांत दिखावै रे।
ते स्वामी नैं सेव करातां, क्युं ही लाज न आवै रे ॥४॥सू०॥
कहिवा नौ विवहार सेवक नौं, करवौ स्वामी सारू रे।
ज्ञानसार नी खबर लहेस्यौ, तौ सहु कहिस्यैं वारू रे ॥५॥सू०॥

११ ॥ श्री वज्रधर जिन स्तवनम् ॥

राग—(आदर जीव क्षमा गुण आदर)

श्री वज्रधर सूं संमुख मिलवां, चाहूँ छूं मुझ मन्न जी।
ग्रह उठी नैं समवसरण में, वांदे ते धन धन्न जी ॥श्री०॥१॥
न सकूं तुम थी संमुख मिलिवा, तौ पिण तुमचै पास जी।
आण धरूं शिर ऊपरि ताहरी, तेण करूं अरदास जी ॥श्री०॥२॥
जो इतला बीजा नैं तारौ, मुझ मांहि सी भूल जी।
पांत भेद जिनराज करैं जौ, तौस्यौ करवौ सूल जी ॥३॥श्री०॥
अवसर समझ करी अरदासैं, जौ पूरवस्यौ हांम जी।
वहितैं वारैं आस न पूरौ, पछतावै स्यौ आम जी ॥४॥श्री०॥

पाठान्तर—१ पड़ी।

पेट बांध नें सेवा सारैं, ते राखीजैं दास जी ।
ज्ञानसार थी सेवा चाहो, किम नवि पूरौ आस जी ॥५॥श्री०

१२—श्री चन्द्रानन जिन स्तवनम्

राग—(इण पुर कंवल कोई न लेसी)

चन्द्रानन जिन पूर्व उपाई, करम प्रकृत तैं उदयैं आई ।
आरज देश आरज कुल पायो, जैन धरम नैं सरणैं आयो ॥१॥
रूप रंग बल लांबी आय, पांचू इन्द्री परगट पाय ।
सुगुरु संयोगे संयम लीधौ, मन वचने नहीं पालन कीधौ ॥२॥
हुन्नर केता हाथे कीधा, ते पण उदय उपायैं सीधा ।
जस उपजायो जस उदयैं थी, मंद लोभ ते मंदोदय थी ॥३॥
पाछलि पूंजी सरवे खाई, एहवैं वृद्धावस्था आई ।
ज्यान वयैं करणी नहीं कीधी, हिव इन्द्रिय दमनैं सी सिद्धि ॥४॥
पिण पछतायां गरज न काई, जौ किम स्वामी होय सहाई ।
अंत्य समाधि मरण शुध देज्यो, ज्ञानसार वीनति मानेज्यो ॥५॥

१३—श्री चन्द्रबाहु जिन स्तवनम्

राग—(महिलां ऊपर मेह)

मैं जाण्यो महाराज कै, राज निवाजस्यौ हो लाल ॥रा०॥
वीतो सहु जमवार कै, लाज नौ काज स्यौ हो लाल ॥ला०॥
सेवीजैं तरु छोड, ते अंते फल दियै हो लाल ॥आं०॥

न दियै तौ पिण पंथी, वीसामौ लिये हो लाल ॥वी०॥१॥
आज लगै कर जोड़ी, सेवीजै सदा हो लाल ॥से०॥
कीधी ह्वै बगशीश, संभालीजै कदा हो लाल ॥स०॥
तो पिण खिण इक भूलूं, फिर तुझ सांभरूं हो लाल ॥फि०॥
बगसेवा नी वार, वांक सब माहरूं हो लाल ॥वां०॥२॥
जेहनै देवा होय, वांक न्यायै कहै हो लाल ॥वां०॥
दूध दीयंती गाय नी, लात सहु सहै हो लाल ॥ला०॥
भव भव ओलग कीनी, साम संभारियै हो लाल ॥सा०॥
हिव पिण सेवा सारूं, किम न विचारियै हो लाल ॥कि०॥३॥
मांगू न तुम पास, अनंती ऋद्ध कहै हो लाल ॥अ०॥
माहरी मुझ नै देतां, जीव न किम वहै हो लाल ॥जी०॥
ऋद्धि पराई आप, दबावी राखसी हो लाल ॥द०॥
इण लक्षण कुण साम, अनंती दाखसी[1] हो लाल ॥अ०॥४॥
त्रिजगत स्वामी बिरुद, अनादि ताहरो हो लाल ॥अ०॥
हूँ पिण जगवासी, तूं साहिब माहरौ हो लाल ॥तूं०॥
चन्द्रबाहू जिन महिर, निजर भर राखसी हो लाल ॥नि०॥
ज्ञानसार नौ जीव, हुलस यश दाखसी हो लाल ॥हु०॥५॥

पाठान्तर—१ भाखसी।

१४ ॥ श्री भुयंगम जिन स्तवनम् ॥

(आज निहेजी रे दीसै नाहलौ)

सैंमुख तुम थी किम ही न मिल सकूं, तौ शी मन नी वात ।
कहियै कुण सुण नै धीरप दियै, इम सोचूं दिन रात ॥१॥सैं०॥

काल अनंते जे मैं दुःख सह्या, तूं जाणै जिनराज ।
हिव जोनी संकट ना भय थकी, राखीजै महाराज ॥२॥सैं०॥

तुम विण किण थी ए वीनति, करूं कीधां शी हुये सिद्ध ।
जे पोते संसारे संसरै, ते किम आपै सिद्धि ॥३॥सैं०॥

संकट मिटवा कारण सेवियै, पोतै संकट धाम ।
डूबंता नै बाँहै विलगीयै, निहचै डूबै आम ॥४॥सैं०॥

तारचा तारै तूंहीं तारस्यै, तूं तारक निरधार ।
अरज करूं हिव साम भुयंगम, ज्ञानसार नैं तार ॥५॥सैं०॥

१५ ॥ श्री नेम जिन स्तवनम् ॥

(करतां सूं तौ प्रीत सहू हूंसी करै रे)

नेम प्रभु हिव केण विधै, धीरज धरूं रे ।
वौली सहु जमवार, काज किम ही न सरयूं रे ॥
तौ ही सेवक ताहरौ, अवर न मन गमै रे ।
पिण फल प्रापत विण, मुझ आशा किम समै रे ॥१॥

धींग धणी कर अवर, देव इण भव करूं रे ।
तौ प्रभु तुमची आंण, वांण किम ही न फिरूं रे ॥
पिण हिव इम किम निभसी, साम विचारियै रे ।
मुझ मन धीरज हुय, तिम किमपि उचारियै रे ॥२॥

नीरासी असवार, केण पर बौलियै रे ।
विण आस्यायै मनुज, जनम किम बौलियै† रे ।
शरणाई साधार, बिरुद जौ धारस्यौ रे ।
तौ इवड़ी सुण वात, तात हिव तारस्यौ रे ॥३॥

तार्‌या केता तारिस, तारै छै बहु रे ।
मुझ वेला आलस कर, बैठौ सूं कहूं रे ।
आज लगे जो अवर, देव नै सेवतौ रे ।
तौ जगवासी सर्व, देव कर पूजतौ रे ॥४॥

पिण तुझ आगम वाण, सुणी तिण नवि रुचै रे ।
धोरी चक्र फिरंतां, अन्न किम ही न पचै रे ।
श्रद्धा धोरी चक्र, वासना खाटकी रे ।
ज्ञानसार वे वार, चढै नहीं काठ की रे ॥५॥

† डुबाएँ

१६ ॥ श्री ईश्वर जिनस्तवन ॥
राग—(वीरा चांदला)

आपणपै तेहवै विना रे, गति कहौ केम जणाय ।
जौहरी विण जिम रतन नौ रे, मोल किणै नवि थायौ रे ॥१॥
किम करि कीजियै, सेवा भेद अपारो रे ।
किण परि लीजियै, वाहैं लवण* नौ पारौ रे ॥२॥कि०॥
दीधा विण दातारता रे, सूंबै केम लखाय ।
ओलग विण ओलग तणी रे, रीत न जाणी जायै रे ॥३॥कि०॥
आज लगै ओलग तणौ रे, जाण्यौ नहींय विवेक ।
ते हिव किण विध कीजियै रे, सबल विमासण एको रे ॥४॥कि०॥
दूर थकां ही राखज्यो रे, मुझ सेवक पर भाव ।
तुझ सरिखै समरथ विना रे, कइयैं नहि निरभावौ रे ॥५॥कि०॥
वादल विण गिरवर तणी रे, छाया अवर न थाय ।
सूर विना असि धार में रे, केणैं डग न भरायौ रे ॥६॥कि०॥
समरथ सूर विना कदे रे, कमलन वन विकसाय ।
गयवर कुंभ प्रहार नौ रे, सिंह विना किण थायो रे ॥७॥कि०॥
जलधर विण सरवर तणौ रे, पेट न अरट भराय ।
सबल पवन प्रेरैं विना रे, केणैं धोर धरायौ रे ॥८॥कि०॥

* लवण समुद्र

मन वंछित देवां भणी रे, कल्पवृक्ष समरत्थ ।
तिम शिव सुख नै आपवा रे, तूं लाधो परमत्थो रे ॥६॥कि०॥
प्रीत इकंगी पालिस्यो रे, ईसर जिन जिनराज ।
ज्ञानसार नैं तौ हुस्यै रे, निश्चै शिवपुर राजो रे ॥१०॥कि०॥

१७ ॥ श्री वीरसेन जिनस्तवन ॥

राग—(हिवरे जगतगुरु शुद्ध समकित नीमी आपियैं)

मैं मांडी अति गति घणी हो जिनजी,
छोड़ दिया छै पाव ।
इण खोटे पंचम अरै हो जिनजी, तुम हाथे निरभाव ॥१॥
सुण रे दयाल राय, मुझ महिर निजर भर निरखियै ।
तुझ सुनजर हो तुझ सुनिजर साम कैं,
मेघ अमी घण वरसियैं ॥२॥सु०॥
जे पोतानो भाजनौं हो जिनजी, तेहथी अधिकी हूँस ।
कीनी पिण नवरै पड़ी हो जिनजी,
कूड़ कहूँ तौ सूंस ॥३॥सु०॥
आपमती मानूं नहीं हो जिनजी, केहनी हितनी सीख ।
हित करणी नहीं आदरूं हो जिनजी,
न धरूं हित मग वीख ॥४॥सु०॥

आंधो भींत वरण्यो रहूँ हो जिनजी,

ज्यूं ही दिन ज्यूं रात।

कहितौ किमपि न भय करूं हो जिनजी,

सम विषमी जे बात ॥५॥ सु० ॥

पतित उधारण ताहरौ हो जिनजी,

विरुद गरीबनिवाज।

मुझनैं जौ न निवाजस्यौ हो जिनजी,

तौ किम रहसी लाज ॥६॥ सु० ॥

हूँ सेवक प्रभु तूं धणी हो जिनजी, वीरसेन जिनराय।

ज्ञानसार गुणहीन नी हो जिनजी,

करस्यौ राज सहाय ॥७॥ सु० ॥

१८॥ श्री देवयशा जिन स्तवन ॥

ढाल—श्री संखेश्वर पास जिनेश्वर भेटियै

आज लगै फल प्रापति सो तुम थी थई,

स्यु करसी परकाश, सहू छानी नहीं।

स्वामी थी नहीं कहियै, तौ केह थी कहूँ,

अवसर पाम्यै भ्रात, वात किम नवि कहूँ ॥१॥

सहु नी सेवा छोड़, साचवी ताहरी,

सी तैं कीध सहाय, सांकड़ै माहरी।

देवल देवल देव, घणा जन पूजता,
दीठा घणा कण कंचन आशा पूजता[1] ॥२॥

हूं तौ अवर न मांगूं, जो चारित पलै,
तुझ सहायै मुझ मन नी आशा फलै।

एहवै अवसर दास नै, आप न जाणस्यो,
पास अनंती रिद्ध नै, कहियै माणस्यौ ॥३॥

तौ पिण सेवा सारूं, पिण गिणती नहीं,
साम सेवक सबंध नी, वात न का रही।

राखेवौ सम्बन्ध, तो आज निवाजियै,
देवयशा जिन लोक नै मोसै[2] लाजियै ॥४॥

जे पोते निरंजन, तुमनैं स्युं दियै,
कवड़ी नहीं जे पास, रीझावी स्युं लियै।

पिण जिनराज नी महिर, लहिर एके हुस्यै,
ज्ञानसार संसार-निवास थी छूटस्यै ॥५॥

१६ ॥ श्री महाभद्र जिन स्तवनम् ॥

राग—(हिवरे जगत गुरु)

मैं तो ए जाण्यौ नहीं हो जिनजी, मुझ थी इवड़ौ भेद।
पुरसोत्तम थई राखस्यौ हो जिनजी, एहिज मुझ मन खेद ॥१॥

पाठान्तर—१ पूरता २ ताने।

कहि रे महाभद्र तुझ करुणानिध किण विध कहूँ ।
मुझ ऊपर हो करुणा नहीं अंश कै,
हूँ करुणानिध किम लहूँ ॥२॥क०॥
जो सेवक नै तारस्यौ हो जिनजी, तौ पूरवस्यौ लाड ।
चालैं विलग्यौ राखसौ हो जिनजी,
तो स्यौ करिस्यौ पाड ॥३॥क०॥
तारचा केता तारसी हो जिनजी, तारै छै जगनाथ ।
आज लगै हो माहरी हो जिनजी, चीठी न चढ़ी हाथ ॥४॥क०॥
हिव वहिली बाहर करो हो जिनजी, राख्या चाहौ लाज ।
ज्ञानसार नै तारवा हो जिनजी, ढील न कर जिनराज ॥५॥क०॥

२० ॥ *श्री अजितवीर्य जिन स्तवनम्*

राग—कागलियौ करतार भणो सी पर लिखूं

साहिबियौ साहिबियौ ससनेही किहां निरागियौ रे,
जे चालै तुझ छंद ।
तेहनैं आपै अनंती संपदा रे, हो तोड़ी भव भय फन्द ॥१॥सा०॥
जे नहीं चालै ताहरै कथन में रे, न करै वचन प्रमाण ।
तेहनै आपै नरक निगोद तूं रे,
निरुपम दुःख नी खाण ॥२॥सा०॥

छूं अपराधी पिण तुझ आण नैं रे, सिर पर धारुं साम ।
इम जाणी नैं जो तुम तारस्यौं रे,
तौ सरसी मुझ काम ॥३॥सा०॥
जो अपराधी मौड़ौ तारस्यौ रे, तुमची दोरप* जोय ।
अरज करूं जिम भीजै कांवली रे,
तिम तिम भारी होय ॥४॥सा०॥
नींति रीति समझी नैं साहिबा रे, अजितवीरज अरदास ।
धीरज न कीजै वहिलौ दीजियै रे,
ज्ञानसार शिव वास ॥५॥सा०॥

॥ कलश-प्रशस्ति ॥

(ढाल—शालिभद्र धन्नौ, ऋषिराया)

इम वीसूं जिनवर जिनराया, आतम संपद पाया जी ।
जैन लाभ खरतर अकषाया, अभई अमम अमाया जी ॥इ०॥१॥
रत्नराज गणि गणि मणि शीसे, ज्ञानसार सुजगीसैं जी ।
श्रावक आग्रह प्रेरण फरसै, भाव सहित अति हींसैं जी ॥इ०॥२॥
संवत अठार अठ्यंतर वरसैं, गौतम केवल दिवसैं जी ।
विक्रमपुर वर कर चौमासैं, तवन रच्या उल्लासै जी ॥इ०॥३॥

इति पं० श्री ज्ञानसारजिद्गणि कृत विंशति जिन स्तुति सम्पूर्णम् ।

---

* कठिनता

बहुत्तरी पद संग्रह

(१) राग—भैरव

कहा भरोसा तन का, अवधू भिन्न रूप छिन जिनका ॥क०॥
छिन में ताता छिन में सीरा, छिन में भूखा प्यासा।
छिन में रंक रंक तैं राजा, छिनमें हरख उदासा ॥क०॥१॥
तीर्थंकर चक्री बलदेवा, इंद चंद्र धरणिंदा।
आसुर सुरवर सामानिक वर, क्या राणा राजिंदा ॥क०॥२॥
संसारी जीव पुदगल राचै, पुदगल धर्म विनाशा।
या संगति तैं जन्म मरण गन, ज्यूं जल बीच पतासा ॥क०॥३॥
भिन्न भाव पुदगल तैं भावै, तूं अनकल अविनाशा।
ज्ञानसार निज रूपे नाहीं, जनम मरण भव पाशा ॥क०॥४॥

२ राग भैरव

एही अजब तमासा, अवधू, जल में वासा प्यासा।
है नांहि है द्रव्य रूप तैं, है है नांही वस्तु।
वस्तु अभावै बंधादिक नौ, संभव नहीं अवस्तु ॥ए०॥१॥
बंध विना संसारी अवस्था, घटना घटै न कोई।
पुण्य पाप विण राउ रंक नौ, भिन्न भाव नहीं होई[1] ॥ए०॥२॥

पाठान्तर—१ कोई

सिद्ध सनातन शुद्ध सभावैं, जो निश्चय नय भावैं।
तो बंधादिक नौ आरोपण, तीन काल नहिं पावैं ॥ए०॥३॥
हृदय कमल करणिका भीतर, आतमरूप प्रकाशा।
याकूं छोड़ दूर तर खोजै, अंधा जगत खुलासा ॥ए०॥४॥
सावमई सरवंगी मानै, सत्ता भिन्न सुभावैं।
स्यादवाद रस नौ आस्वादी, ज्ञानसार पद पावैं ॥ए०॥५॥

३ राग—भैरव

और खेल मत खेल बावरे, आतम भावन भाय रे ॥औ०॥
ऊपत विनाश रूप रति परिणाम, जड़ के गत थित काय रे।
अविनाशी अनघड चिदरूपी,
काले तूं न कलाय रे ॥औ०॥१॥
रोग सोग नहिं सुख दुख भोगी,
जनम मरण नहिं काय रे।
चिदानंद घन चिद आभासी,
अभई अमम अमाय रे ॥औ०॥२॥
गज सुकुमालादिक मुनि ध्यायो,
जड़ संबन्ध विभाय रे।
ततखिण केवल कमला अविचल,
अक्षय शिवपद पाय रे ॥औ०॥३॥

इत्यादिक दृष्टान्त घनेरे, केते लौं कहिवाय रे।
आतम तत वेदी तप निथ नी,
अन्य श्रमण न कहाय रे ॥औ०॥४॥
ज्ञान सहित जो किरिया साधै, आतम बोध लखाय रे।
ज्ञान विना संयम आचरण,
चौगति गमण उपाय रे ॥औ०॥५॥
तूं जो तेरे गुण को खोजै, तो मैं कछु न सगाय रे।
ज्ञानसार तुझ रूपे अविचल[1],
अजर अमर पद राय रे ॥औ०॥६॥

(४) राग—भैरव।

पर[2] परणमन विभावै, आतम अजा कृपाणी न्यायै ॥प०॥
मिथ्यात्वादि हेतुमय आतम, आपही बंध उदीरै।
आप ही उदयैं सुख दुख वेदै, गत्यागति थित भीरै ॥प०॥१॥
अैसो मूढ़ न अवर अगूढ़न, आतम धरम न सूझै।
सिद्ध सनातन तूं सवकालै, फिर क्यूं करम अरूझै ॥प०॥२॥
सत्ता द्रव्य सुभाव लछन तें, सम अनादि सिद्ध तूं ही।
निज सुभावमय ज्ञानसार पद, काल लब्धि सिद्ध सूं ही ॥प०॥३॥

---

१ अनचल २ पर परिणति मन भाय।

(५) राग—भैरव।

जव[1] जड़ धरम विचारा, अवधू तब हम तें जड़ न्यारा।
छेदन भेदन भव भय रूपी, जड़ कै नास विकारा।
शब्द रंग रस गंध फरसमय, उपत सटित आकारा[2] ॥ज०॥१॥
अन्य सयोगी जौ लौं आतम, तौ लौं हम सविकारा[3]।
पर परणित सैं भिन्न भए जव, तब विशुद्ध निरधारा[4] ॥ज०॥२॥
वंध मोख नहीं तीनूं कालै, नहीं हम जड़ संबन्धी।
ज्ञानसार जब रूप निहारयौ, तब निहचै निरबन्धी[5] ॥ज०॥३॥

टिप्पणी—

१ जब नाम=जिवारै जड़ रो धर्म सडण पडण विध्वंश छै ते धर्म विचारतां नै म्हारो चेतनत्व धर्म छै, तेथी हम से जड़ न्यारा।

२ उपजणो, सटित-सड़णो, आकार स्वरूप ऐ इणारा धर्म छै

३ अन्य म्हांसूं जो जड़ादिक उण जड़ रा म्हे संजोगी हुवा तिवारै म्हारो आतमा सविकारा—विकार सहित हुओ, शब्द, रूप, गंध, स्पर्श रो वांछिक हुओ।

४ तिके हीज म्हे पर परणित से भिन्न भए, जब नाम=जिवारै तब नाम=तिवारै, निरधार निश्चे संघाते विशुद्ध छां, निर्मल छां।

५ निर्मल स्वरूपवान हुवां छतां म्हे मनन कीनो नाम="युक्तिभिः पर चिंतनं मननं" म्हारै बन्ध मोक्ष तीनूं कालै ही

(६) राग—भैरव

चेतन[1] धर्म विचारा, अवधू तब हम तैं जड़ न्यारा ॥
मिथ्यात्वादि चार नहीं कारण, वंधन हेतु हमारै ।
चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान सकति विस्तारै[2] ॥चे०॥१॥
ज्ञान[3] सकति निज चेतन सत्ता, भाखी जिन दिनकारै ।
सत्ता अचल अनादि अबाधित, निश्चय नय अवधारै[4] ॥चे०॥२॥

नहीं म्हारै जड़ सूं किसौ संबन्ध इसो विचार म्हे म्हांरो ज्ञानसार आत्मिक स्वरूप म्हे निहारयो देख्यो, तब नाम= तिण विरियां म्हे विचारयो म्हेतो तीनूं काले निरबन्धी छां। इति सटंक।

१ आत्मत्त्व धर्म सम्बन्धी कथन आत्मा रो आत्मत्व धर्म कहो अथवा चेतनत्व धर्म कहो अवधू नाम=हे आत्माराम! "तब हमतैं जड न्यारा" म्हारै जड़ सूं तीनूं ही काल में असंबन्ध छै।

२ मिथ्यात्त्वाविरत कषाय योगाः ए ज्यो च्यारै ही बंधन रा कारण छ सो हमारै नाम=म्हारै नहीं। कारण नाम=कारण नहीं। क्युं कारण नहीं? म्हे तो चेतनता परिणामी छां। चेतना धर्मवन्त छतां छां तिण सूं म्हे तो ज्ञान सकति नै हीज विस्तारण करां इसा छतां म्हारो तो ओ हीज धर्म छै।

३ पूर्व कही जो ज्ञानशक्ति ते निज चेतन सत्ता निज नाम आत्मिक स्वरूपे सहित जे चेतन. तेनी सत्ता नाम="सत्तेव तत्त्व" जिन दिनकारै नाम=जिन सूर्यै एवं एव उक्तं ते सत्ता केहवी छै? अचल छै सूक्ष्म निगोदें पिण ते चली नहीं यथा "अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाड़ियोचिट्ठइ" इति सिद्धान्त वचन प्रमाण्यात् अतएव अनादि अबाधित पीड़ा रहित।

४ निश्चय नयें अवधारणा कीनो।

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु थी, तुझ मुझ अंतर एतो।
तूं परमातम हूं बहिरातम[5] तम रवि अंतर तेतौ ॥चे०॥३॥
यातैं दास भाव लखि अपनौ, कृपा कसर नहिं कीजै।
दीनबन्धु हे अन्तरयामी! ज्ञानसार पद दीजै ॥चे०॥४॥

(७) राग भैरव

जब हंस[1] रूप प्रकाशा, अवधू जगत तमाशा भासा ॥ज०॥
टांगां वस्त्र न सिर पर भारी, तामैं भूखा प्यासा।
रोग जरजरी देही जीरण, ऐतै पर फिर हासा[2] ॥ज०॥१॥
रूप रंग नहीं तनुबलवस्था, भिक्षासन नीरासा।
सानुरूप वनिता सूं संगति, फिर हासै परिहासा ॥ज०॥२॥
चाहिये रुदन तहां कूं[3] हासा, मोह छाक छकियासा[6]।
ज्ञानसार कहि जगवासी की, बाहिर बुद्धि प्रकाशा ॥ज०॥३॥

(८) राग—भैरव

मनुआ बस नहीं आवै, अवधू कैसे रोय दिखावै ॥म०॥
ज्ञान क्रिया साधन तैं साध्यौ, खातर में न खतावै।

---

५ यत्सत्वे यत्सत्व मन्वयः तदभावे तदभावो व्यतिरेकः। तूं परमातम हूँ बहिरातम तारै मारै सूर्य अंधारै जिम अंतरो।

६ "मोह छाक छकि" नाम=ऊपर कर फिर गई। फिर आशा नाम= तृष्णा।

पाठान्तर—१ जग २ फिर एते पर हासा ३ क्यूं।

सोवत जागत बैठत ऊठत, मन मानैं जिह जावै ॥म०॥१॥
आश्रव करणी में आपेही, विण प्रेरयो उठ धावै।
संजम करणी जो आरोपूं, तो अत ही अलसावै ॥म०॥२॥
नौ इन्द्रिय संज्ञा है याकूं, पै सवकूं धूजावै।
इनकूं थिर कीना सो पुरपा, अन्य पुरपा न कहावै ॥म०॥३॥
सुर नर मुनिवर असुर पुरंदर, जो इनके वश आवै।
वेद नपुंश इकेलो अनकल, खिण में रोय हसावै ॥म०॥४॥
सिद्ध साधनै सव साधन तैं, एही अधिक कहावै।
ज्ञानसार कहि मन वश याकै, सो निहचै शिव पावै ॥म०॥५॥

(६) राग—विभास

भोर भयो अव जाग वावरे ॥भो०॥
कौन पुण्य तैं नर भव पायो,
क्यूं सूता अव पाय दाव रे ॥भो०॥१॥
धन वनिता सुत भ्रात तात को,
मोह मगन इह विकल भाव रे।
कोय न तेरउ तू नहीं काकउ,
इस संयोग अनादि सुभाव रे ॥भो०॥२॥
आरज देश उत्तम गुरु संगत,
पाई पूरव पुण्य प्रभाव रे।

ज्ञानसार जिन मारग लाधउ,
क्यूं डूबै अब पाव नाव रे ॥भो०॥३॥

(१०) राग—पट

जाग रे सब रैन विहानी।
उदयो उदयाचल रविमण्डल,
पुण्यकाल क्यूं सोवै प्राणी ॥१॥
कमल खण्ड वन-वन विकसाने,
अजहूं न तेरी दृग उघरानी।
चेतन धर्म अनादि तुमारौ,
जड़ संगत तैं सुध विसरानी ॥जा०॥२॥
तुम कुल दोय अवस्था पइयै,
नींद सुपन ए जड़ निसानी।
आतमरूप संभार आपनौ,
कब तुमरै घर कुमति घरानी ॥जा०॥३॥
सुधि बुधि भूलै निरुपम रूप की,
यातैं घट वढ़ होत कहानी।
निश्चै ज्ञानस्वरूप तुमारौ,
ज्ञानसार पद निज राजाधानी ॥जा०॥४॥

(११) राग—वेलावल

मेरा कपट महल बिच डेरा।

आतमहित चित नित प्रति चाहूँ, न तजुं सांझ सवेरा ॥मे०॥१॥

सोवत वैठत ऊठत जागत, याको खरच घनेरा।

मरणुपकंठै आय लग्यो हूँ, अब क्युं हिव अधिकेरा ॥मे०॥२॥

द्वार प्रवेश जिन मत संबंधी, लिंग क्रिया अनुसेरा[1]।

दान शील तप भाव उपदेशन, च्यार साल चौ फेरा ॥मे०॥३॥

प्रवृत्ति निवृत्ति वाह्याभ्यंतर[2], जालीए सुविसेरा।

प्रगट निरुद्ध जिन चरण प्रवर्तूं, एह झरोख झुकेरा[3] ॥मे०॥४॥

टिप्पणी—१ 'लिंग क्रिया अनुसेरा' नाम लिंग रो ही ज अनुसरण छै क्रिया रो ही अनुसरण छै नाम=प्रवर्त्तन छै किञ्चिदिति शेषः।

२ साधु धर्म सम्वन्धित प्रवृत्ति निवृत्ति इतरै साधु धर्म में प्रवर्त्त न सकूं वाह्य सम्वन्धी तो म्हारै प्रवर्ती छै, अभ्यन्तर सम्बन्धी निवृत्ति छै। इतरै साधुपणो म्हारै देखावणरूप तो छै, पालण रूप नथी।

३ परमेश्वरे भाख्यो जे आचारांगादि में साधुपणै रो प्रवर्त्तन ते प्रवर्त्तन थकी प्रगटपणे विरुद्ध प्रवर्त्तूं छूं। एह नाम=तद्रूप "झरोख झूकेरा" नाम=महिल नो झरोखो झुक रह्यो छै।

मेरे पद लखि भरम धरै कोउ, आतम तत्व उजेरा।
निहचै घट तट प्रगट भया तब, ऐसा वचन उचेरा[४] ॥मे०॥५॥
कपट कदाग्रह लखि गच्छवासै, तज गच्छ वास वसेरा।
हिरदै नयण जो नीका निरखूं, इह किंचित अधिकेरा ॥मे०॥६॥
आतम तत्व लच्छन नवि दीसै, जिह तिह ममत घनेरा।
ज्ञानसार निज रूप न निरख्यो, तेतैं सब उरझेरा ॥मे०॥७॥

(१२) राग—वेलावल

जिन चरणन को चेरउ, हूँ तो जिन० ॥
आगै पीछै तूंहिज तारिस, तो क्यूं करै अवेरो ॥जि०॥१॥
चरमावर्त्तन चरम करण विन, कैसे मिटे भव फेरो।
तूं स्यूं तारिस तूं तारक स्यो,[५] जो हूं करिस निवेरो ॥जि०॥२॥

---

४ "मेरा पद" म्हारा पद, लखि नाम=देखने कोई प्राणी भरम धारै इसा इणरै मुख स्युं निरासी वचन निकल्या तौ दीसै छै इणनै आत्मतत्त्व रो निश्चे संघाते एना घट तट में प्रगट थयो जणायछे, पर ए कथन मात्र छै, स्वरूप ज्ञानाभावात्।

५ परमेश्वर स्यूं प्रत्युत्तर, "जो हूँ करिस निवेरो" नाम=हूँ हिज चरमावर्त्तन करिस्युं, हूँ हीज चरम करण करिस्युं तो हे परमेश्वर तूं तारक स्थानो ? नाम=केनो, तूं स्यानो तारक ? "तिन्नाणं तारयाणं" ए विरुद थारो स्यानौ ?

निज सरूप निश्चय नय निरखूं[२] शुद्ध परम पद मेरो।
हूं ही अकल अनादि सिद्ध हूं,
अजर न अमर अनेरो ॥जि०॥३॥

अन्वय अरु व्यतिरेक हेतु लखि[३] मेट रूप अंधेरो।
परमातम अंतर बहिरातम, सहिज हुओ सुरफेरो ॥जि०॥४॥

---

२ "निज सरूप निश्चै नय निरखूं" नाम=म्हारो स्वरूप निश्चै नय निरखूं तो शुद्ध परम पद म्हारो हीज छै अकल अनादि सिद्ध सो पिण हूँ हीज। "अजर न अमर अनेरो," नाम=अजर अमर पण अनेरा। न नाम=अन्य नहीं।

३ अहो परमेश्वर! अन्वय हेतु दूजो व्यतिरेक हेतु ए बे नो लक्षण लखि नै, मेट नाम=मिटायो, में रूप सम्बन्धी अंधेरो अत्र अन्वय लक्षणमाह—यत्सत्वे यत्सत्त्वमन्वयः स्वरूप सत्वे परमात्मता सत्वं! अथ व्यतिरेक लक्षणमाह—"तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः स्वरूपाभावे परमात्मता भावः" मारे विषै स्वरूप नो अभावी पणो तेथी हूँ बहिरातमा तेथी तूं परमात्मा छै। हूँ बहिरातमा छूं तेथी तूं साहिब, हूँ तारो चेरो छूं, पर दीनबन्धु तारो विरुद छै। तेथी तुमे पतित ऊपर महिर निजर नो भराव कर, तइय तो "ज्ञानसार पद मेरो" सिद्ध पद नेरो नाम=नैड़ो हीज छै। इति सटंक।

तूं परमातम हूँ बहिरातम, तूं साहिब हूँ चेरो ।
दीनबन्धु कर महिर निजर भर, ज्ञानसार पद मेरो ॥जि०॥५॥

(१३) राग—वेलावल

कंत कह्यो हू न मानैं, माई मेरो कंत० ।
कित्ती वेर कहि कहि पचि हारी,
प्रगट कह्यो कहि छानैं ॥मा०॥१॥
समझइयेगो सो सिर सजनी, क्या कहियै मईया नैं ।
दुरी वात अपने भरता की, कहियै नकौ वहानैं ॥मा०॥२॥
हारी वार वार कहि सजनी, तब प्रगटी कहिवा नैं ।
माया ममता कुबुद्धि कूबरी, उनके संग डरानैं ॥मा०॥३॥
निज स्वरूप वालक नहिं जानैं, पर संगति रति मानैं ।
अबै स्वरूप ज्ञान तैं भगिनी, अपने पर पहिचानैं ॥मा०॥४॥
तब तेरे परसग परैगो, क्यूं एतौ दुख मानैं ।
ज्ञानसार तै हिल मिल खेलै, सिद्ध अनंत समानैं ॥मा०॥५॥

(१४) राग—वेलावल

अनुभव हम कब के संसारी ।
मर जनमे न अनादि काल में, शिवपुर वास हमारी ॥अ०॥१॥

राग दोष मिथ्या की परिणित, शुद्ध सुभाव न समावै ।
अनकल अचल अनादि अबाधित, आतम भाव समावै ॥अ०॥२॥
बंध मोख नहीं तीनूं कालैं, रूप न रंग न रेखा ।
निश्चै नय जिन आगम सेती, शुद्ध सुभाव परेखा ॥अ०॥३॥
काय न माय न जाय न आय न, भाय न माय न जाता ।
शुद्ध सुभावैं ज्ञानसार पद, पर[1] भावे पर नाता ॥अ०॥४॥

(१५) राग—वेलावल

अनुभव हम तो राउ रै खोरैं ।
फौजवगस के लरके होकर, वारगिरी में दोरैं ॥अ०॥१॥
देशविरति जीवाई यामैं, क्या खावैं क्या जोरैं ।
गांठ गरथ घर के घोड़ विन, कैसैं अरि दल तोरैं ॥अ०॥२॥
घर-विकरी सब वेचै खाई, हाथ हलावत डोरैं ।
ज्ञानसार जागीरी लेकर, कैसे मूंछ मरोरैं ॥अ०॥३॥

(१६) राग—वेलावल

ज्ञान कला गति घेरी, मेरी, यातैं भइय अंधेरी ॥मे०॥
मिथ्या तिमिर अमर पसरन तैं,
सूझत नहीं घर सेरी ॥मे०॥१॥

पाठान्तर—१ विवहारे

भ्रम भूला इत उत ढंढोरू, है चेतनता नेरी ।
या विन खबर न अपनै पर की, परत सवेर अवेरी ॥मे०॥२॥
चरमावर्त्तनादि कारण कर, पाकेगी भव फेरी ।
ज्ञानसार जब दृष्टि खुलेगी, अजर अमर पद केरी ॥मे०॥३॥

(१७) राग—वेलावल

ज्ञान पीयूष पिपासी, हम तो ज्ञान ॥०॥
अनंत काल भव भ्रमण अनंतै, ए आशा नवि घासी ॥ह०॥१॥
मिथ्यात्वादि बंध कारण मिल, चेतनता जड़ भासी[1] ।
खीर नीर सप्रदेश अव्यापक, त्यों व्यापक अविभासी ॥ह०॥२॥
भव परिणित परिपाक काल मिल, चेतनता सुप्रकाशी[2] ।
ज्ञानसार आतम अमृत रस, तृपत[3] भए निरआशी ॥ह०॥३॥

टिप्पणी—

१—जड़ करनै भासी, नाम=मिश्रित हुई, पर क्षीर नीर छै, ते सप्रदेशे अव्यापक छै, प्रदेशे भिन्न-भिन्न छै । खीर रो प्रदेश भिन्न छै, नीर रो प्रदेश भिन्न छै त्यों अविभासी छै नाम=चेतनता जड़ै करनै भासी छै नाम=चेतनता नें जड़ ना दलिया नै संयोग संबंध छै पिण समवाय संबंध नहीं ।

२—चेतन रै विषै चेतनत्व धर्म तेहनै विषै रही चेतनता सो सुप्रकाशी जड़ कर ने भिन्न थई गई स्वरूपवान थई ।

३—अनन्त ज्ञान दर्शनादि के कर नै तृप्त थई गया संपूर्ण पामवा थी, अतएव निराशी ।

(१८) राग—वेलावल

पर घर घर कर माच रह्यौ री ॥प०॥

किती वेर गहि गहि करि छारचो,

कैसे अपनौ याति कह्यो री ॥प०॥१॥

मर जनम्यौ विरच्यौ नहीं तब ही,

कबही न परभव संग वह्यौ री ।

आयु भाड़ौ दीनो जेतैं, तेतैं तुभकूं वसन दयौ री ॥प०॥२॥

तूं न सरीर सरीर न तेरो, सोपाधें निज मान रह्यौ री ।

ज्ञानसार निज रूप निहारी,

अकल अमर पद अमर भयो री ॥प०॥३॥

(१६) राग—वेलावल

साधो, क्या करिये अरदासा, वे जग पूरक आसा ॥सा०॥

मानव जनम देश कुल आरिज, जनम दिया जिन खासा ॥सा०॥१॥

वंश उकेश लिंग जिन दरशण, रूप रंग बल भासा ।

प्रगट पंच इन्द्री नर हुन्दर[1], पूरण आयु प्रवासा ॥सा०॥२॥

पाठान्तर—१ हुनर ।

याकी महिर बाहिर खीरोदधि, रजधानी चौरासा ।
शिवनगरी अभिव्याप लोक कौ, राज दियौ रिद्धरासा ॥सा०॥३॥
याके अंग रंग की संगति, जग करता सुप्रकाशा ।
ज्ञानसार निज गुण जब चीने, हम साहिब जड़ दासा ॥सा०॥४॥

(२०) राग—रामकली

अनुभव ज्ञान नयन जब मूंदी, तब तैं भई चकचूंदी ॥अ०॥
करण कषाय अव्रत जोगादिक, सरब विरत रति छूंदी ॥अ०॥१॥
मूल निधान अनादि काल कौ, मोकूं सूझत नाहीं ।
भ्रम भूलौ इत उत टंटोरी[1], है इह ही कौ इहां ही ॥अ०॥२॥
सुगुरु कृपा करि प्रवचन अंजनि, वाणि सिलाई आंजे ।
हृदये भीतर ज्ञानसार गुण, सूझै सहिज समाजै ॥अ०॥३॥

(२१) राग—रामकली

अवधू घरणी विन घर कैसो ॥अ०॥
दीपक विन ज्यूं महिल न शोभै, कमल बिना जल जैसो ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ ढंढेरू ।

गृह कारज घरणी अधिकारी, पाणिनीय पण गावै ।
यामैं झूठ भूल नहिं कहिहूं, सौंगन कैसे खावै ॥अ०॥२॥
सरधा कहि चलियै समता घर सपरिवार सू मिलियै ।
विरह दुसह ज्ञानसार ज्ञान तैं, अपने आतम कलियै ॥अ०॥३॥

(२२) राग—रामकली

अवधू हम विन जग अंधियारा, है हम तैं उजियारा ॥अ०॥
चेतन ज्योत अखण्डित व्यापक, अप्रदेश अविशेषैं ।
प्रतिबिंबित सूरादिक मणिमय, पुदगल धर्म विशेषैं ॥अ०॥१॥
अप्रदेश सप्रदेशी पृच्छा, हैं नांहि है देशा ।
रूपारूपी की पृच्छायैं, रूप अरूप प्रवेशा ॥अ०॥२॥
रूपी द्रव्य संजोगै रूपी, अवर अनादि अरूपी ।
रूपारूपी वस्तु अभावै, भंग संग न प्ररूपी ॥अ०॥३॥
सत्ता भिन्न सुभावै जेनी, सरवंगे समभावैं ।
ज्ञानसार जिन वचनामृत नौ, परमारथ पथ गावै ॥अ०॥४॥

(२३) राग—रामकली

माई मेरो आतम अति अभिमानी ।
मैं तो मन वच क्रम रस राती,
कीरपि[1] क्रिमपि न आनी ॥मा०॥१॥

अर्थ—१ दया

आभूषण तन सब रंग मांड्यौ, प्रीतम गति न पिछानी ।
ज्युं ज्युं हूँ हित नित प्रति चाहूँ, त्युं त्युं करत रुषानी ॥मा०॥२॥
कैसैं काज निभेगौ घर को, क्युं कर निसपति ठानी ।
ज्ञानसार निरधार निगम गति, पय पानी को पानी ॥मा०॥३॥

(२४) राग—रामकली

अनुभव आतम राम अयाने, सो तुम तैं नहि छानै[1] ॥अ०॥
गयै अनादि काल दर पुश्ती[2], खोलै तीन खजाने[3] ॥अ०॥१॥
पर परिणिति के हाथ आपनी, पूंजी खूंपै छानै ।
घटति रकम जवाब न पूछै, खाता मेल न जाणै ॥अ०॥२॥
बाकी रकम और के खातैं, कोई सूं न सरूभै ।
देसावर आसामी काची, सो तो मूल न सूझै ॥अ०॥३॥
कैसे काम रहेगो इनकौ, रखे धक्को नहिं खावै ।
ज्ञानसार जो पूंजी खूंपै, तो लज्जा रहि जावै ॥अ०॥४॥

टिप्पणी १ हे अनुभव नाम=आत्मिक स्वरूप चिन्तवन कर्‌यां छतां अनुभौ प्रतै स्वरूप चिन्तवन'रो वाक्य छै । 'आत्माराम अयाने' नाम=म्हारो आत्मा अजाण छै सो तुमतैं नहीं छानै नाम=थांसूं छानो नहीं ।

२ दरपुश्ती नाम=सात पीढी रा ।

३ खोले तीन खजाने नाम=ज्ञान दर्शन चारित्र ना ।

(२५) साखी

आतम अनुभव अंग को, नवलो कोई सवाद।
चाखै रस नहीं संपजै, ज्ञानै गति निरबाध ॥१॥

राग—सारंग रामकली

अनुभव अपनी चाल चलीजै।
पर उपगारी बिरुद तुमारो, वाकूं क्यूं विसरीजै ॥अ०॥
तुम आगम बिन हमकूं कबहि न, प्रीतम मुख निरखीजै।
आज काल आवन नहिं कीजै, कैसे कर जीवीजै ॥अ०॥२॥
अब तो वेग मिलाय पिया कूं, किंचित ढील न कीजै।
ज्ञानसार जो न बनै तुम तैं, तो नौ उपर दो+ दीजै ॥अ०॥३॥

(२६) राग—सारंग

अनुभव ढोलन कब घर आवै ॥अ०॥
शशि मुख वचनामृत बिन कैसे, हृदय कमल विकसावै ॥अ०॥१॥
मोहनीय के लरका लड़की, हँस हँस गोद खिलावै।
चौगति महिल कुमति रति रस गति, रमते रैन विहावै ॥अ०॥२॥

+ ९ और २=११ होना अर्थात् भाग जाना।

झूठी बात तुमारै आगै, कैसे कर बतलावै ।
सुमता नाम सुनत हीश्रवनन, आतम अति कटि जावै ॥अ०॥३॥
कहा कहै जो सुनै सयानी, मोसूं मन न मिलावै ।
ज्ञानसार आपा पर चीने, विन तेड़ै उठ आवै ॥अ०॥४॥

(२७) राग—सारंग

प्रीतम पतिया क्यों न पठाई ॥प्री०॥
लाडी संगत अति रति राते, यातैं हम विसराई ॥प्री०॥१॥
कुलटा कुटिल की मोहन संगति, इन तैं साम सुहाई ।
फल किंपाक समो आसादन, परिणामे दुखदाई ॥प्री०॥२॥
अंत विरानी सैं घर न वसै, समझ सुचेतन राई ।
ज्ञानसार सुमता संजम घर, हिल मिल प्रीति वढाई ॥प्री०॥३॥

(२८) राग—सारंग-वेलावल

प्रीतम पतियां कौन पटावै ।
वीर विवेक मीत अनुभो घर, तुम विन कवहुँ न आवै ॥प्री०॥१॥
घर नो छइयो घरटी चाटै, पेड़ा पाडोसण खावै ।
कवहुँ न मुजरो घर धरणी नो, पर घर रैन विहावै ॥प्री०॥२॥

ए सब संदेसे लिख कागद, अनुभौ हाथ वचावै ।
ज्ञानसार एते पर नावत, तौ कहा रोय बतावै ॥प्री०॥३॥

(२६) राग—सारंग

नाथ विचारौ आप विचारी ।
दासी तैं हित निव रति खेलैं, यामें शोभ तुमारी ॥ना०॥१॥

घर अपछर सी सुन्दर नारी, छोरी खेलत जारी ।
अभख भखै कूर तज सूकर, त्यों याने झख मारी ॥ना०॥२॥

संयम रमणी रागी आतम, पर संगत अति ख्वारी ।
देख देख निज वर घरणी सूं, प्यार करत अणपारी ॥ना०॥३॥

सुमति पठायौ अनुभौ आयौ, पर घर परठ निवारी ।
सुमता वर में ज्ञानसार कूं, ल्यायो लगिय न वारी ॥ना०॥४॥

(३०) राग—सारंग

नाथ तुमारी तुमही जाणौ ॥ना०॥
घर अपछर सी घरणी परहर, पर रमणी रति माणौ ॥ना०॥१॥

कर पीड़न कर पीहर घर धर, अजहूँ न कीनौ आणौ ।
अति आग्रह परणी घर घरणी, क्यूं एती अति ताणो ॥ना०॥२॥

कंत अंत घर बिन नहीं सरसी, निहचै आप पिछाणी ।

ज्ञानसार एती सुनि आए, बीतत दुख विसराणी ॥ना०॥३॥

(३१) राग—सारंग

माई मेरो कंत अत्यन्त कुवाणी ॥मा०॥

पर परणित से नाता जोरत, तोरत निज तैं ताणी ॥मा०॥१॥

सुमति विरत्ति श्रद्धा गुण परणाम, बोलत अवली वाणी ।

माया ममता अविरति कथने, करिय कुमति पटराणी ॥मा०॥२॥

याद्दं मेरे वैरी ज्याह्नं, मिलत आपणै जाणी ।

आणैं प्रीति बणाऊं कैसें, ज्ञानसार रस दाणी[1] ॥दा०॥३॥

(३२) राग—सारंग

अनुभव यामैं तुमरी हांसी ॥अ०॥

मीत अनीत रीति नहीं हटको, पावौ कहा स्याबासी ॥अ०॥१॥

पर घर घर घर भटकत डोरत, कैसी पदवी पासी ।

कौन पिता कुल किनको धौटा, संग रमै सो दासी ॥अ०॥२॥

पाठान्तर—१ खाणी

कर उपाय मिथ्या संग टारौ, नहीं भव भव भटकासी ।
"ज्ञानसार" मिल मिल समुझावै,
सहिजैं समझै जासी ॥अ०॥३॥

(३३) राग—सारंग

कहा कहियै हो आप सयान तैं ॥क०॥
अंत दुखाय कह्यो नहीं जायै, प्यारी अपनी यांन तैं ॥क०॥१॥
अन्योक्ति दृष्टान्त सुनावै, कोई घाट बयान तैं ।
एते पर भी मूर न बूझै, प्रगट देख अखियान तैं ॥क०॥२॥
उद्यम सिद्ध निदान सरमवर, सुमति कहै सखियान तैं ।
जाय मिलै अब ज्ञानसार तैं, कौन गरज लजियान तैं ॥क०॥३॥

(३४) राग—सारंग

प्रभु दीनदयाल दया करियै ।
मैं हूं अधम तुम अधम उधारण,
अपनै विरुद कूं निरवहियैं ॥प्र०॥१॥
अधम उधार अधमउधारण, विरुद गह्यो चित चितइयै ।
मोहि उधार प्रतच्छ प्रमाणो; विरुद मनुज लोगे छइयै ॥प्र०॥२॥

तो सौ तारक अधम न मोसौ, उधरन कस क्यूं ना करिये ।
ज्ञानसार पद राज विराजै, सहिजैं भवसागर तरिये ॥अ०॥३॥

(३५) राग—आसा रामगिरी

अवधू ए जगका आकारा, कोई करचा न करणैहारा ॥अ०॥
पृथिवी पाणी पवन अकाशा, देखत होत अचंभा ।
इत्यादिक आधेयैं परगट, दीसत कोय न थंभा ॥अ०॥१॥
या भरमैं भूलै जगवासी, करता कारण गावै ।
करम रहित जग करता कारक, कैसे कर संभावै ॥अ०॥२॥
करतु अकरतु अन्यथा करणै, समरथ साहिब माया ।
घट पट घटनायैं पुन पटवी, या रच जग निरमाया ॥अ०॥३॥
करचौ न कोई करैय न करसी, एह अनादि सुभावै ।
विनस्यौ कदे ही न विनसे ए जग, जिन आगम जिन गावै ॥अ०॥४॥
अगन शिला पंकज नहीं प्रगटै, शसिक ऊंठ नहीं सींगा ।
आकासे न हुवै फुलवाड़ी, कैसौ माया अंगा ॥अ०॥५॥
कृत विनास अकृत अविनासी, शब्द प्रमाण प्रमाणै ।
ए लक्षण तुमरी लक्षणायै, शंकर दूषण आणै ॥अ०॥६॥
अन्त आद विन लोक न कहिस्यौ, घण अहिरण संडासी ।
प्रथम पछै घटना नहिं संभव, समकालै ही घड़ासी ॥अ०॥७॥

प्रथम पछै पुरसा नहीं नारी, तैसैं इण्डा पंखी।
बीज बिरख नहीं पाछैं पहिला, है समकाल अपेखी ॥अ०॥८॥
लोक अनादि अनंत भंग थी, है षट द्रव्य बसेरा।
याकैं अंते ज्ञानसार पद, सब सिद्धं का डेरा ॥अ०॥९॥

(३६) राग—आसावरी

अवधो हम बिन जग कछु नाहीं,
अ० जगत हमारे माहीं ॥अ०॥
हम ही नै कीया संसारा, हम संसार की पूंजी।
पांच द्रव्य हमरो परिवारा, हम बिन वस्तु न दूजी ॥अ०॥१॥
उपति नास थिति मय संसारा, सो हमरो व्यवहारा।
उपति खपत थिति करता हम ही, यातैं हम संसारा ॥अ०॥२॥
एक कला हमरी हम छोड़ै, सब जग कूं निरमावै।
वाही कला हम मांहि मिलावै, हम में जगत समावै ॥अ०॥३॥
एक कला व्यापी जो हम घर, यातैं असंख विभागैं।
हमरो सरव कला व्यापी घर, ज्योति अखंडित जागै ॥अ०॥४॥
ज्ञानसार पद अकल अखंडित, अचल अरुज अविनासी।
चिदानंद चिद्रूप परमपद, चिदघन वन अभिध्यासी ॥अ०॥४॥

३७ राग—आसा

अवधू आतम तत गति वूझै, आपही आप सरूझै ॥ अ०॥
आतम देव धरम गुरु आतम, आतम सिप सिप शिक्षा ।
आतम शिवपद करता करणी, आतम तत्व परीक्षा ॥अ०॥१॥
आतम गुण थानक आरोहण, क्षायिक चरण वितरणी ।
आतम केवल दंसण नाणी, अचल अमर पद धरणी ॥अ०॥२॥
अरिहंत सिद्ध आचारज पाठक, साधू संयमवंता ।
आतम मेरौ ज्ञानसार पद, अव्याबाध अनंता ॥अ०॥३॥

(३८) राग—आसा

अवधू या जग के जगवासी, आस्या धार उदासी ॥अ०॥
जलधि उलंघै गिरोय न अंगै, जिय जोखम में पैसे ।
जो निरआसी खुश न उदासी, दिल चाहै उठ बैसे ॥अ०॥१॥
वैदेहक विन जो निरआसी, सोई विडंबन भासी ।
याकी आस्या विन आस्या नो, बीज कौन उगासी ॥अ०॥२॥
कामादिक सब याकी संतति, पर परणित की मासी[1] ।
यातैं योगी सोय सरोगी, जौ आस्या नहीं घासी ॥अ० ॥३॥
ब्रह्मरंध्र मधि अनहद धुनि कूं, सहिजैं आप घुरासी ।
आतम परमातमा अनुसर, ज्ञानसार पद पासी ॥अ०॥४॥

१ भासी

(३६) राग—आसावरी

अवधू आतम भरम भुलाना, यानै आतम तत न पिछाना ॥अ०॥
आतम तत में भ्रम तम नाहीं, निज सरूप उजियारा।
जनम मरण गति आगति नाहीं, शिवपद विच वसियारा[1] ॥अ०॥१॥
जिह नहिं रोग सोग नहिं भोगा, अचल अनादि अगाधा।
याकौं अभिधा ज्ञानसार पद, अक्षय अव्याबाधा ॥अ०॥२॥

(४०) राग—आसा

अवधू सुमति सुहागिनी जागी, कुमति दुहागिन भागी।
अविसंवाद पक्ष फल अन्वित, जिन आगम अनुयाई।
ऐसे शब्द अरथ की प्रापति, याको संगति पाई ॥१॥
विध प्रतिपेध करी आतम थो, रूप द्रव्य अविरोधी।
ऐसौ आतम धरम गहण विध, ग्रहीयो गहण विरोधो ॥२॥
न रह्या भरम भया उजियारा, तद्‌गत धरम विचारा।
ज्ञानसार पद निह्चै चीना, जलमय जल व्यापारा ॥३॥

(४१) राग—आसा

अवधू आतम रूप प्रकासा, भरम रह्या नहीं मासा ॥अ०॥
नहीं हम इन्द्री मन वच तन वल, नहिं हम सास उसासा ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ वास तुम्हारा

क्रोध मान माया नहीं लोभा, नहीं हम जग की आसा ।
नहीं हम रूपी नहीं भव कूपी, नहीं हम हरख उदासा ॥अ०॥२॥
बंध मोक्ष नहिं हमरे कबही, नहीं उतपात विनाशा ।
शुद्ध सरूपी हम सब कालै, ज्ञानसार पद वासा ॥अ०॥३॥

(४२) राग—आसा

अवधू आतम धरम सुभावैं, हम संसार न आवैं ॥अ०॥
यही भरम हम मय ससारा, हम संसार समाये ।
उदित सुभाव भानु आतम घट, भ्रम तप तें भरमाये ॥अ०॥१॥
पट घट घटना घट पट न घटै, तीनूं काल प्रमायं ।
जलावधारण थी सीतातप, घट में कब न घटावैं ॥अ०॥२॥
तैसे आप धरम थी आतम, कोई काल न जावै ।
निभरम सदा काल तुझ मांहि, चेतन धरम रमावैं ॥अ०॥३॥
जल तरंग थी अनचल चंचल, छाया वृक्ष लखावै ।
ज्ञानसार पद मय निश्चै नय, सिद्ध अनादि सुभावैं ॥अ०॥४॥

(४३) राग—आसा

अवधू जिन मत जग उपगारी, या हम निहचै धारी ॥अ०॥
सरव मई सरबंगे मानै, सत्ता भिन्न सुभावै ।
भिन्न भिन्न पट मत गम भाखै, मत ममत्त हठ नावैं ॥अ०॥१॥

नयवादी अपनौ मत थापै, और सहू ऊथापै ।
एहनै थाप उत्थापक बुद्धि, इक इक देशैं व्यापै ॥अ०॥२॥

जे जे सिद्धान्तों में भाख्या, षट मत अंग सुणावै[1] ।
जिन मत नै सरवंगी दाखै, पिण विरोध न जणावै ॥अ०॥३॥

मत्त ममत्त वातौ न उदीरै, तदगत अशुद्ध सुभावै ।
वंदै नहीं नंदै नहीं सबकूं, यथायोग्य परचावै ॥अ०॥४॥

एहवो निक्रोधी निरमानी, अममाई अममत्ती ।
तेणे जिन मत रहिस पिछाण्यो, अन्य ते मत्त ममत्ती ॥अ०॥५॥

ऐसैं शुद्ध जिनागम वेदी, ते निज आतम वेदै ।
ज्ञानसार थी शुद्ध सुपरणित, पावै सिद्ध[2] अखेदै ॥अ०॥६॥

(४४) राग—आसा

अवधू कैसी कुटुम्ब सगाई, याकौ नहि संबन्ध सदाई ॥अ०॥१॥
मात पिता दयिता बैठे ही, सबजौ सुत मरजाई ।
उन बेठे ही मात पिता सुत, आंधी में उठ जाई ॥अ०॥१॥

पाठान्तर—१ बतावै २ शुद्ध ।

जननी जाया जाया जननी, मर पिय थायै माई ।
माता वनिता वनिता माता, पित माता पुन बाई ॥अ०॥२॥
दुख दोहग दुरगतैं इकेलो, जनमैं फिर मर जाई ।
बंध भोग में आप इकेलो, क्यूं समझै नहिं भाई ॥अ०॥३॥
शुद्ध अनादि रूप कूं सोचे, जड़ में तूं न समाई ।
समवाई गुन जो तुझ सूझै, ज्ञानसार पद राई ॥अ०॥४॥

(४५) राग—आसावरी

मेरा आतम अतिही अयाना, यानैं आतम हित नहिं जाना ॥
मेरा आतम अतिहि अयाना, यानै आतम हित नहिं जाना ।
काम राग अहित अति दारा, नेहादिक लघु दारा ।
मन वच काय करण विन रोधे, आश्रव द्वार उधारा ॥मे०॥१॥
उन आश्रव तैं करम रूप जल, सरवर जीव भराया ।
यातैं चौगति मांहि भमाया, अजहुं अंत न आया ॥मे०॥२॥
अब जिन धरम के शरणे आया, आतम रूप न पाया ।
ज्ञानसार गुन तेरो चीने तो, गति आगति नहीं काया ॥मे०॥३॥

(४६) राग—आसा

साधो भाई ऐसा योग कमाया, यातैं मुग्ध लोक भरमाया ॥सा०॥
बाह्य क्रिया दरसाई साची, अभ्यंतर तैं कोरा ।
मासाहस परिकर फिर सोचिस, रे रे आतम चोरा ॥सा०॥१॥
संयम पायो पुन संयोगैं, पाल्यौ नहीं तैं पापी ।
फिर ऐसो नहिं दाव बणैगो, चितवन चित्त अव्यापी ॥सा०॥२॥
क्या कहियै कछु कह्यो हू न मानै, रे रे आतम अंधा ।
ज्ञानसार निज रूप निहारै, निहचै है निरबंधा ॥सा०॥३॥

(४७) राग—आसा

साधो भाई आतम भाव परेखा, सो हम निहचै लेखा ॥सा०॥
नहीं व्यवहार संसार तैं कबही, नहीं हमरे कब लेखा ।
नहीं इनसैं खातौ नहिं बाकी, खाता खताई देख्या ॥सा०॥१॥
समवायैं आतम समवाई, तीनूं काल विशेखा ।
मिट गया भरम भया उजियारा, ज्ञानसार पद पेखा ॥सा०॥२॥

(४८) राग—आसा

साधो भाई आतम खेल अखेला, सो हम खेल न खेला ॥सा०॥
बंध मोख सुख दुख की घटना, आतम खेल न घटना ।

सिद्ध सनातन है सब कालै, उपत विनाश अघटना ॥सा०॥१॥
नाहीं पुरुष नपुंसक नारी, शब्द रूप नहीं फासा।
नहीं रस गंध नहीं बल आयु, नहीं कोऊ सास उसासा ॥सा०॥२॥
नहीं तन्द्रा सूतै नहीं जागै, नहिं ऊभै नहीं बैठे।
नाहीं जलैं जलन की झाला, नहीं समाधि में पैठे ॥सा०॥३॥
ए निश्चै आतम को खेला, इनमें कबहू न आए।
हम बिवहारी आतम हमरे, भ्रम तम तैं भरमाए ॥सा०॥४॥
गया भरम भया उजियारा, लोकालोक प्रकाशा।
ज्ञानसार पद निरूपम चीना, उनका यही तमाशा ॥सा०॥५॥

(४६) राग आसा

साधो भाई जग करता कहि माया, सोई हम निरमाया।
मिथ्या संग करो जब तब ही, माया पुत्री जाया।
जनमत घट पट घटना पटबी, यासूं जग उपजाया ॥सा०॥१॥
क्रोधादिक याको परिवारा, जग व्यापक अरणपारा।
उपति खपति थिति याकी संतति, सोई जग व्यौहारा ॥सा०॥१॥
यासूं भिन्न कहै करता नै, माया जिन निपजाया।
उवा[1] माया सूं जगत उपाया, ए झूठी अपवाया ॥सा०॥३॥

पाठान्तर—१. आ

करम रहित पुन माया कारक, एह असंभव वाता ।
छाणे विना इकेली अगनी, नहीं धूंआं उपपाता ॥सा०॥४॥
कर्त्तु अकर्त्तु अन्यथा करणे, हम ही हैं सामर्थी ।
पर परिणति से भिन्न भए जब, किंचित कर असमर्थी ॥सा०॥५॥
अचल अगाधि[1] अबाधित अव्यय, अरुज अनादि सुभावै ।
ऐसे ज्ञानसार पद में हम, जीत निसान घुरावै ॥सा०॥६॥

(५०) राग--आसा

साधो भाई जब हम भए निरासी, तब तैं आसा दासी ।सा०॥
राव रंक धन निरधन पुरुषा, सब ही हमरे सरिसा ।
निर आदर आदर गमनागम[2], नहीं कोई हरख उदासा ॥सा०॥१॥
राजा कोऊ पांव जो फरसै, तोहू तनक न राजी ।
दुर्वचनै जो कोऊ तरजै, तो आतम न विराजी ॥सा०॥२॥
जरा जनम मरण वस काया, यातैं नहीं भरोसा ।
विन प्रतीत को आसा धारै, छोड़ दिया तिण सोसा ॥सा०॥३॥
अब वेफिकर खुशी दिल सब दिन, वेतमाह मनमस्ती ।
यातैं उदै अस्त नहीं बूझै, क्या सूना क्या वस्ती ॥सा०॥४॥
भूख पिपासा शीत उष्णता, राखै[3] तनु न खमावै ।

पाठान्तर—१ अनादि २ नहिं सबको ३ सबै ।

सरस निरस लाभालाभै पुन[1], हरख शोक मन नावै ॥सा०॥५॥
एते पर आतम अनुभौ गति, मन समाधि नहीं आवै ।
मन समाधि विनु ज्ञानसार पद, कैसे हू नहीं पावै ॥सा०॥६॥

(५१) राग—आसा

संतो घर में होत लड़ाई, कौन छुड़ावै आई ॥सं०॥
घर को कहै मेरो घर नाहीं, परकीया कहै मेरो ।
मेरो मेरो कर कर मारयो, करयौ जगत को चेरो ॥सं०॥१॥
सुरनर पण्डित देखे सब ही, कौन छुड़ावै आई ।
झगड़ै वाला आप ही समझै, वांध छोड़ उन मांहि ॥सं०॥२॥
मिट गया झेरा हुआ सुरझेरा, आध्यातम पद चीना ।
केवल कमला रम सब[2] संगे, ज्ञानसार पद लीना ॥सं०॥३॥

(५२) राग—आसा

साधो भाई निहचै खेल अखेला, सो हम निहचै खेला ।
ना हमारे कुल जात न पांता, ए हमरा आचारा ।
मदिरा मांस विवर्जित जो कुल, उन घर में पैसारा ॥सा०॥१॥
वर्जित वस्तु विना जो देवै, सो सब ही हम खावैं ।
ऊनौ वा फासु अकरापित, धोवण जल सब पीवैं ॥सा०॥२॥

पाठान्तर—१ पिण २ वस ।

टिप्पणी—आत्मानि अधि इति अध्यात्मी ।

पड़िकमणा पांचूं नहीं लायक, सामायिक ले बैसैं ।
साधू नहीं जैन के जिन्दे, जिन घर विन नहीं पैसैं ॥सा०॥३॥
श्रावक साधू नहीं को साधवी, नहीं हमरे श्रावकणी ।
सूधी श्रद्धा जिन सम्बन्धी, सो गुरु सोई गुरणी ॥सा०॥४॥
नहीं हमरै कोई गच्छ विचारा, गच्छवासी नहीं निंदैं ।
गच्छवास रतनागर सागर, इनकूं अहनिशि वंदैं ॥सा०॥५॥
थापक उत्थापक जिनवादी, इनसे रीझ न भीजैं ।
न मिलणो न रिंदन वंदन, न हित अहित न धीजैं ॥सा०॥६॥
न हमरो इनसे वादस्थल, चरचा में नहिं खीजैं ।
किरिया रुचि क्रिया ना रागी, हम किरिया न पतीजैं ॥सा०॥७॥
किरिया वड़ के पान समाना, स्वतारक जिन भाखी ।
सोई अवंचक वंचक सो तौं, चौगति कारण दाखी ॥सा०॥८॥
पै किरिया कारक कूं देखैं, आतम अति ही हींसै ।
पंचम काले जैन उद्दीपन, एह अंग थी दीसै ॥सा०॥९॥
सब गच्छनायक नायक मेरे, हम हैं सबके दासा ।
पै आलाप संलाप न किणसूं, न कोई हरख उदासा ॥सा०॥१०॥
पड़िकमणा पोसा न करावै, करतां देख्यां राजी ।
पचखांणो व्याख्यान न आग्रह, आग्रह थी नवि राजी ॥सा०॥११॥

जो हमरी कोऊ करैं निन्दा, किंचित अमरस आवैं ।
फिर मन में जग नीति विचारैं, तब अतिहि पछितावैं ॥सा०॥१२॥
क्रोधी मानी मायी लोभी, रागी द्वेषी योधी ।
साधुपणा नो देश न लेश न, अविवेकी अपबोधी ॥सा०॥१३॥
ए हमरी हमचर्या भाखी, पै इनमें इक सारा ।
जौ हम ज्ञानसार गुण चीनै, तौ ह्वै भवदधि पारा ॥सा०॥१४॥

(५३) राग—शुद्ध वसन्त

क्यूं आज अचानक आए भोर,
कर महिर निजर ललनी की ओर ।
परभाव रूप अंधियार तोर, सुसुभाव उदै रवि के सजोर ॥१॥
अब शुद्ध रूप गहिकै अनूप, वरियै केवल कमला स्वरूप ।
तब ज्ञानसार पद तुझ सरूप, पायो आतम परमात्म रूप ॥२॥

(५४) राग—शुद्ध वसन्त

क्युं जात चतुर वर चित बटोर, इन प्रीत पच्छ नहिं चलत जोर ।
किन कहै निहोरे हेत मांहि, न चले हित प्रीतम आप चाहि ॥१॥
इक हाथै तारी नहिं बजंत, यानत क्युं खैंचत अंत संत ।
घरणी बिन घर कौ काज राज, को करिहै जिह एतो समाज ॥२॥
पर घर में क्या काढौ सवाद, जिनमैं एतौ लोकापवाद ।
यातैं अपनै घर चाल कंत, जिहि ज्ञानसार खेले वसंत ॥३॥

(५५) राग—शुद्ध बसन्त

कित[1] जइयै क्या कहियै बयान,

तुम जान सुजान[2] क्युं हो अयान ॥कि०॥

इह स्यादवाद कुल[3] की मजाद, पर घर पग धर नै क्या सवाद ॥१॥

अलबेली[4] अकेली हूं उदास, पैं खिण इक छोरूं नहीं आवास

अपने मुख अपनी क्या प्रशंस, बरने जब शोभा जात वंश ॥२॥

---

१ सुमति वाक्यं—'कित जइयै' नाम=म्हारो स्वरूप रूप घर तिण बिना म्हे कठै जावां, म्हारो जावणो कठै होज नहीं। हे आत्माराम भर्त्तार ! थारो स्वरूप घर सो छोड़ने ये पर घर में रम रह्या छो. तेनो बयान कथन क्या कहिये, म्हारे मुखे क्या कहूं लाज आवै, स्त्री जायत्वात्।

२ पुनः थे अयाण हुवो तो हूं क्यूंही कहूं, पिण थे सुजाण जाणता थका क्यूं हो अयाण नाम=क्युं अजाण हुवा छो इतरे थे विरूप में क्युं प्रवर्त्त रह्या छो, वित नाम=तदाकार वृत्तियै।

३ इह नाम=आ। थे प्रवर्त्तो जिका आ स्यादवाद कुल की मरजाद छै कांई ? थे पराये घरे नाम=जड़ादिक रै घरे भटक रह्या छो इणमें 'क्या सवाद' नाम=कांइ सवाद काढो छो। गत्यागति थित रै विषै असहनीय दुख सह रह्या छो।

४ हे भर्त्तार ! हूं अलबेली छूं, कालो कुदरांनी न छूं पिण इकेली

घर घरणी[५] कौं एतोपमान, जगवांदी[६] कूं क्युं देत मान।
समझाय वीर घर आन कंत, जिह ज्ञानसार खेलत वसंत ॥३॥

(५६) राग—धमाल

मनमोहन मेरे क्यों न आये हो,
आली री पूछियैं अनुभव मीठड़ै मीत ॥म०॥
आवै कौन कौन कूं ल्याउं, छौरै नहीं छिन साथ।
ममता संग रैन रंग* राते, मदमाते साथीड़ै साथ ॥म०॥१॥
कबहू नेक निजर नहि जोरे, बातन की कहा बात।
गूझ बूझ सबही उनहीं तैं, उन बेच दिये बिकात ॥म०॥२॥

थकी हूँ उदास छूं, पिण म्हारो जो घर खान्त्यादि तिणनै हीज नहीं छोड़ूं छूं। स्वमुखे स्वप्रशस्ति कांई करूं म्हारी प्रशस्त जाति तौ शुद्ध आत्मीक रूप वंश सुमतिवन्त आत्मा ए म्हारी शोभा करै वर्णन करै।

५ 'घर घरणी' शुद्ध सुमति जेहनौं तो एतलो अपमान करी मूंक्यो छै बतलावण पिण नथी।

६ 'जगवांदी' जे कुमति तेहनैं एटलो मान किम छै? हे वीर अनुभौ! तमे समझावी नैं स्वरूप घर मैं कां न लावो जिहां ज्ञानसार आत्मक स्वरूप प्रसन्न चित्ती छतो वसन्त खेली रह्यो छै।

* दिव

मेरी न तेरी गरज पिया कै, राते चित वित रंग।
अपनौं आप सरूप भूलकै, जोर रहे जड़ संग ॥म०॥३॥
तेरो पिया तेरे वश नाहीं, कौलों करैं हम जोर।
प्रथम करनलौं प्रीतम आये, अब जाय मिलौं करजोर ॥म०॥४॥
अनुभौ आय पिया समझाये, घर ल्याये धन रंग।
सुगति महिल मिल ज्ञानसार सूं, खेलै धमाल उमंग ॥म०॥५॥

(५७) राग—पूरबी

छकी छवि वदन निहार निहार।
प्रोषित पति अगमागम कीनौ, विसरी विगत विहार ॥छ०॥१॥
गये अनादि काल में ऐसौ, दीठो नहींय दीदार।
निरुपम निजर निहार निहारत, रंजिय रूप रिझवार ॥छ०॥२॥
अंतर एक मुहूरत अंतर, प्यार करी अणपार।
लीनैं ज्ञानसार पद भीतर, चेतनता भरतार ॥छ०॥३॥

(५८) रागणी—परज

सासरैरि आज रंग बधाई म्हारै०॥
गांव गोरवैं प्रीतम आये, ध्वनि श्रवण तसु पाईजी,† म्हारै ॥१॥
धसमस चलीय मिली संयम घर,
निरख हरख हरखाई जी, म्हारै०॥

†धुनि श्रवनन सुन पाई।

माया ममता कुबुद्धि कूबरी, रही वदन विलखाई जी, म्हारे०॥२॥
चेतनता केवल शिव कमला, सुमति सुचेतन राई जी, म्हारे०॥
ज्ञानसार सू' रस बस हिलमिल, लीनै कंठ लगाई जी, म्हारे०॥३॥

(५९) राग—मारू

पिया बिन खरी (थ) दुहेली हो, पि०॥
देर दिरानी सास जिठानी, सब दे राखी सूली हो ॥पि०१॥
पिय संगति अति व्याप्यौ जो सुख, सो सुख इन दुख भूली हो।
तलफू' बिन पानी ज्यू' मछली, विरहैं ग्रहण गहेली हो ॥पि०२॥
टेर टेर के वेर कहत हूँ, विसरन रह्यो इकेली हो।
न सासर न पीहर आदर, निर आदर अलवेली हो ॥पि०३॥
जलो जमारो विरहण नारी, सरधा कहैय सहेली हो।
ज्ञानसार सू' मिलियै यू'ज्यू', फूल सुवास चंबेली हो ॥पि०४॥

(६०) रागणी—धनयासी

पिया मोसू' काहे न बोलै, दे दे सोवै पीठ ॥पि०॥
सौतन संग पिया विरमाये, नेक न जोरै दीठ ॥पि०॥१॥

को जानै गति अंतर गति की, वाचूं कहा वसीठ ।
कौलौं कहिकहि पिय समझावूं, निठुर निलज है धीठ ॥पि०॥२॥
वीर विवेक पिया समझावे, ता पर अनुभौ ईठ ।
सरधा सुमता ज्ञानसार कूं, जाय मनावै नीठ ॥पि०॥३॥

(६१) राग—धन्यासी मुलतानी

प्यारे नाह घर विन, योंही जीवन जाय ॥ प्यारे ०॥
पिय विन या वय पीहर वासौ, कहि सखि केम सुहाय ॥१॥
हा हा कर सखि पइयां परत हूं, रूठड़ो नाह मनाय ।
घर मन्दिर सुंदर तनु भूसन, मात पिता न सुहाय ॥२॥
इक इक पलक कल्प सौ वीतत, नीसासैं जिय जाय ।
ज्ञानसार पिय आन मिलै घर, तौ सब दुख मिट जाय ॥३॥

(६२) राग—धन्यासी

घर के घर विन मेरो कैसो घर घर मांहि ॥घ०॥
मैं पीहर पीया परदेसी, लरका मेरे नांहि ॥घ०॥१॥
कुल कौहू नहिता नहि कबहू, जातन निहतन जांहि ।
ऐसै घर कूं चूंची लागौ, जोगन ह्वै निकसांहि ॥घ०॥२॥
वीर विवेक कहै सुण भैणी, एतौ दुख क्यूं कराहिं ।
आगम आवन कीनो भरता नै, ज्ञानसार गल बांहिं ॥घ०॥३॥

(६३) राग—सोरठ

रहै तुम आज क्युंजी वदन दुराय ॥र०॥

जिय जीवन सखियन में प्यारी, हारी हा हा खाय ॥र०॥१॥

अविरति घूंघट पट ऊघारी, अनुभव मुख निरखाय ।
एते पर भी मान न मेले, मूलैं व्याज वढ़ाय ॥र०॥२॥

भव परिणित परिपाक इते पर, आई धाई माय ।
अति आग्रह सब ज्ञानसार कूं, लीने कंठ लगाय ॥र०॥३॥

(६४) राग—सोरठ

रैन विहानी[1] रे रसिया, जाग निणद रा वीर कै रैन० ॥
मिथ्यो विभाव तिमिर अंधियारो, सूर सुभाव उगानी रे रसिया ॥१॥
तुम कुल इक ऊजागरवस्था, छार गहो है विरानी ।
यातैं हूं धकधूण उठावूं, क्युं सुध बुध विसरानी रे रसिया ॥२॥
अब अपने घर आप पधारौ, अन्त विरानी विरानी ।
ज्ञानसार सूं कुमति दुहागिन, भाग भई विलखानी रे रसिया ॥३॥

---

१ हे आत्माराम ! थारै छट्ठै गुणठाणै रो तौ अन्तर्मुहूर्त्त पूरौ थयौ सो तो तूं प्रमादी छौ, सातमे गुणठाणै री छाया प्रवर्त्ती तद्रूप जागणो कथं अप्रमादीत्वात् हे निणद ! शुद्ध चेतना तेहना भाई, अतएव विभावरूप तिमिर अन्धकार मिट्यो, सूर्य रूप स्वभाव उदै थयौ ।

(६५) राग—सोरठ

चारो नणदल वीर, कहूँ कोलूं ॥ चारो० ॥

मिथ्या गणिका पूंजी खाई, वणगे जनम फकीर ॥१॥

गई गई सो भलिय रही सो, घर घर मनको[1] धीर।

कोलूं धीर धरूं धीरज धर, विरहे जनम वहीर ॥२॥

भाल लाल बिन्दी नहीं भावै, आभूषण नहीं चीर।

ज्ञानसार वालो[2] आन मिलै घर, तौन रहे कोई पीर ॥३॥

(६६) राग—सोरठ। चाल, सांवरे रंग राची

लालना ललचावै, बाई मौने ॥लालना०॥

खिण में रूसण तूसण खिण में, खिण में रोय हँसावै ॥बा०॥१॥

अन्तर वेदन कोय न बूझै, प्रगट कही हू न जावै।

धोवै धूर उड़ाय इसैं घर, जंगल जाय वसावै ॥बा०॥२॥

वीर विवेक संग ले आए, सुमता कंठ लगावै।

ज्ञानसार प्यारी मृदु मुसकत, परमारथ पद पावै ॥बा०॥३॥

(६७) राग—सोरठ

मेली हूँ इकेली हेली, लगी तलावेली।

जिय जीवन सौतन सग खेलै, यातैं खरिय दुहेली ॥१॥

जक न परत खिन भीतर अंगन, तलफूं अति अलवेली।

खिण सोवूं खिण वैठूं ऊठूं, जाणे जनम गहेली ॥२॥

पाठान्तर—१ हरघर २ वाल्हो (=वल्लभ)

इतै अचानक प्रीतम आये, सेरी अनुभव रेली।
ज्ञानसार सूं हिलमिल खेलै, सरधा सुमति सहेली ॥३॥

(६८) राग—सोरठ

मरणा तौ आया माया अजुं न बुझाया।
बाहिर अभ्यंतर वग खग यूं, मानू जोग कमाया ॥म०॥१॥
निपट निकामी निपट निरागी, निरमोही निरमाया।
ध्यांनी आतमज्ञांनी जांनी, ऐसा रूप दिखाया ॥म०॥२॥
मान छोड़ मद छकता छोड़ी, छोड़ी घर की माया।
काया ससरूखा[1] सब छोड़ी, तउअ न छूटी माया ॥म०॥३॥
जगतैं इक श्वेताम्बर अधकी, सरब शास्त्र में गाया।
ज्ञानसार कै सबतैं वधती, माया पांती आया ॥म०॥४॥

(६९) राग—सोरठ होली

अरी मैं, कैसे मनावें री, मेरो पिया पर संग रमत है॥ कैसे०
सौतन संग रैन रंग रमतां, मुहिं न बुलावै री ॥मे०॥१॥
हाहा कर सखि पइयां परत हूँ, पीय मिलावै री। एरी कोई०
विरहानल अति दुसह पिया बिन, कौन बुझावै री ॥मे०॥२॥
सुमति संग ले अनुभौ आये, सब परठ सुनावै री॥ अरी सब०
ज्ञानसार प्यारी दो हिलमिल, सोरठ गावै री ॥मे०॥३॥

पाठान्तर—१ सुश्रूषा।

(७०) राग—होरी धूरिया, सोरठ मिश्रित

पर घर खेलत मेरो पिया, कछु बरजो नहीं अपने[1] भैया ॥प०॥

नकटोरिन[2] के संग नचत है, तत तत ताथेइ ताथेइया ।

चंग बजावै गाली गावै, कौन बनाव बन्यौ दइया ॥प०॥१॥

खर असवारी चमर बुहारी, श्याम बदन सिर पर धरिया ।

विष्टा रगरी जूती पग री[3], लाज मरत हूं में मैया ॥प०॥२॥

इह सब चेष्टा पर परणिति की, निज घर में रमिहैं भविया ।

आतम शीश गुरु द्रष्ट खेलै, ज्ञानसार जिन में मिलिया ॥प०॥३॥

(७१) राग—कालंगड़े

यूं ही जनम गमाय्यौ, भेष धर यूं ही जनम गमायौ ।

संयम करणी सुपन न करणी, साधु नाम धरायौ ॥भे०॥१॥

मुख मुनि करणी पेट कतरणी, ऐसो जोग कमायौ ।

देखो गृह धर कमठी नी पर, इन्द्रीय गोप बतायौ ॥भे०॥२॥

मुंड मुंडाय गाडरी नी परि, जिन मति जगत लजायौ ।

भेष कमायो भेद न पायो, मन तुरंग वश नायौ ॥भे०॥३॥

मन साध्यै विन संयम करणी, मानूं तुस फटकायौ ।

ज्ञानसार तैं नाम धरायौ, ज्ञान कौ मरम न पायौ ॥भे०॥४॥

पाठान्तर—१ एहने २ डकटोरिन ३ पवरी ।

(७१) राग—तोड़ी

जब हम तुम इक ज्योति जुरे, तब न्यून जोति नहीं मेरी ॥
चरमावर्त्त न चरम करण मिल, पाकेगी भव मेरी ॥प्रभु पाकेगी०
मिथ्या दोष अनादि काल घट, मिट भ्रम तम अंधेरी ॥प्र०॥१॥
सत्ता द्रव्य अनन्य सुभावै, चेतनता न अनेरी ॥प्रभु चे०
काल लब्धि नहीं लाभै जौलौं, तौलूं बीच घनेरी ॥प्र०॥२॥
तब ही शुद्ध सरूप गहैंगे, शैली अनुभव सेरी । प्रभु शैली०
पर परिणति तज ज्ञानसार ता, भज आतम पद केरी ॥प्र०॥३॥

(७२) राग—काफी (ढाल—गोठीड़ा बार उघाड़)

(अब) तेरो दाव बण्यो है, गाफिल क्यों मतिमान ।
आरिज देश उत्तम ध्रम संगति, पाई पुण्य प्रमान ।।ते०॥१॥
क्रोध लोभ अरु माया ममता, मिथ्या अरु अभिमान ।
रात दिवस मन वच तन रातौ, चेतन चेत सयान ॥ते०॥२॥
मत मद छाक छक्यौ ज्यूं मंगल, परमत गति आलान ।
ऊपाड़ै तेरै कहा कारज, जिन मत रहिस पिछान ॥ते०॥३॥
सत्ता वस्तु भिन्न है सब में, सरवंगै सम भ्रान ।
इक इक देशी सब मत जाणौ, सब देशी जिन जान ॥ते०॥४॥
सरवंगे सम जिन मत साधै, बाधै आतम ज्ञान ।
ज्ञानसार जिन मत रति आवै, पावै पद निरवान ॥ते०॥५॥

जिनमत धारक व्यवस्था गीत

(७४) राग—पंचम

आप मतिये भला मूढ़ मतिये भला ॥टेर॥

मंद मतिये दुसम काल नै जैनिये,
जैन मत चालणो प्राय कीनो ।
परभव बीह ना बीह नैं अवगिणी,
निरभयैं ममत रस अमृत पीनौ ॥आ०॥१॥

एक कहै थापना जिन भणी पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ जाणौ ।
जानु परमाण थल जल कुसुम आणिनें,
सुर रचे वृष्टि ते स्युं न जाणो ॥आ०॥२॥

तेह कहि विविध विध बिंब जिन पूजतां,
जिन अनता न आरम्भ दाखै ।
नवा आराम निपजाय निज कर करि,
फूल चूंटे प्रगट पाठ भाखैं ॥आ०॥३॥

केह कहि धरम नूं मरम दाखी दया,
तेहनूं तत्त्व ते एम आणो ।
जीव हणतां बचायां न जयणा पली,
मर गयां लेश हिंसा न जाणो ॥आ०॥४॥

एक कहि जेम मनराज मौजां लियैं,
तेम करिये न आरम्भ गिणियैं ।
हेय गेयादि जे मन प्रवृति वधैं,
ते सध्यैं सिद्धता तेम भणियै ॥आ०॥५॥

केई कहि प्रथम नय कथन विवहार नूं,
पारणामिक पणे केय भाखैं ।
केई कहै वचन नूं जाल गूंथ्यूं सवैं,
निश्चयैं सिद्धता जैन दाखैं ॥आ०॥६॥

विविध किरिया करी विविध संसार फल,
फल अनेकान्त कै गति समृद्धि ।
गति समृद्धिपणैं भव भ्रमण नवि टलै,
तेह थी सी थई आतम वृद्धि ॥आ०॥७॥

नहीं निश्चै नयैं नहीं विवहार थी,
है नहीं है यथा वस्तु रूपै ।
जल भरयै कुम्भ प्रतिबिंब सत्ता रही,
सूर सत्ता रही रवि सरूपै ॥आ०॥८॥

जिन मतैं ममत सत्ता न पामीजियैं,
ममत सत्ता रही मत ममत्तैं ।

द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में,
धर्म धर्मी सदा एक वृत्तैं ॥आ०॥९॥
बाहिर आतममती परम जड़ संगती,
मत ममत्ती महामोह मायी ।
प्रमत अप्रमत्त गुणाठाण वरतूं अमे,
मूढ़ मति वकै अविरत कषायी ॥आ०॥१०॥
आप बंधा करौ भव भयै थरहरौ,
परहरौ मुखै बधा पराई ।
सम दम खम भजौ तजौ मत ममत्त नै,
राग दोषादि पुन आस दाई ॥आ०॥११॥
अन्वये और व्यतिरेक हेतू करी,
समभ्क निज रूप नै भरम खोवै ।
शुद्ध समवाय तैं आत्मता परिणतैं,
ज्ञाक नूं सार पद सही होवै ॥आ०॥१२॥

इति पद ७४ पं० प्र० श्री ज्ञानसारजिद्गणि
विनिर्मिता द्वासप्ततिका सम्पूर्णा

जिनमत धारक व्यवस्था गीत

[बालावबोध]

राग—पंचम

मंदमतिए दुसम काल नैं जैनिए,
जैनमत चालणी प्राय कीनो।
परभव वीह ना वीह नैं अवगिणी,
निरभयैं ममत रस अमृत पीनो ॥मंद॥१॥

अर्थः—अल्प वुद्धिवाले पंचम आरा नै जैन दरसनिए जैनमत नाम=जैन दर्शन प्रतै, चालणी प्राय नाम जैन दर्शन सात नयाभि-प्राई नै अणजांणते छते जैन दर्शनिए भिन्न भिन्न एक नयाश्रित कथन रूप छेद करते छते, जैन दर्शन प्रतैं चालणी प्रायः नाम=जिम चालणी नै बहु छेद होय तिम जिनमत नैं चालणी प्राय कीनो। तिहां कारण स्यौ ? 'परभव वीह ना' नाम=परमेश्वर भाषित सिद्धान्त नौ एक अक्षर अमे उथापीसूं तो संसार कंतार अमनै अनन्तो परिभ्रमण करवूं पडस्यै, 'वीह नै' नाम=ते डरनै, अवगिणी नाम=अश्रद्धी छते, अवगिणना करीनै नाम=न विचारी नै, निरभये नाम=निरभय थए छते, कस्मात् कारणात् अश्रद्धत्वात्, ममत रस नाम=ममत्व रूप जहर रस नैं, अमृत नाम अमृत समान मानी नै पीनौ नाम=पान कीयो छै, जिणे एतलै कंठ सूधी ममत्व जहर रूप रस भर्यो छै जिणै एतलै ममत्व मई थई रह्याछै।

एक कहि थापना बिंब जिन पूजतां,
फूल धूपादि आरम्भ जाणो।
जानु परिमांण थल जल कुसुम आंणनै,
सुर रचै वृष्टि ते स्युं न जांणो ॥मं०॥२॥

अर्थ—एक कहितां नाम=एके केचित् एवं वदंति, केईक एकांतवादी मतममत्वी सिद्धान्त नूं एहवूं वचन 'न रंगिज्जा न धोइज्जा' ए वचन उछेदी नै स्याम रक्त वस्त्र धार्या छै जिणे ते कहै 'थापना बिंब जिन' नाम=थापना निक्षेप थापन कर्या जे 'जिन बिंब' नाम=जिन प्रतिमा प्रतै 'पूजतां' नाम=पूजा करतां थकां फूल धूपादि' नाम=फूल फल धूप दीप नवेद्यादि 'आरंभ जांणौ' नाम=आरंभहीज जांणौ, एहवूं वचन स्याम वस्त्रधारी कहै, अहो भव्यो विना आरंभै पूजा नौ अभाव नै जिहां आरंभ तिहां धर्म नौ अभाव परमेश्वरे वखांण्यौ छै 'आरंभे नत्थि दया' 'दया मूले धम्मे पन्नते' तेथी पूजा न करवी एहवूं सुणयै एकंत पूजा पक्षी काथांबरी वाक् छटा-छोट करतौ बोल्यौ—'जानु परिमाण थल जल कुसुम आंणनै' नाम=परमेश्वरे विद्यमान छते गोडा प्रमाणै थल जल सम्बन्धी फूल ल्यावीनै 'सुर रचै वृष्टि' नाम=देवता वर्षा करै, 'ते स्यूं न जांणौ' नाम=नथी जाणता स्युं ? तिहां जो पुष्पादि पूजा में परमेश्वर हिंसा जांणता तौ ना न कहिता पर पूजा लाभकारी जाणीनै दया ना साठ नाम तेमां पूजा दया ना नाम में गिणी, फिरी पंचमांगै 'हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ' एहवूं पाठ पोतै न कहता।

तेह कहि विविध विध बिंब जिन पूजतां,
जिन अनंता न आरंभ दाखै।
नवा आराम[1] निपजाय निज कर करी,
फूल चूंटै प्रगट पाठ भाखै ॥मं०॥ ३॥

अर्थ—'तेह कहे' नांम=तत् शब्द पूर्व परामर्शक, ते काथांथरी फिरी उत्सूत्र एहवूं कहै 'विविध विधि' नांम=नाना प्रकारै बिंब पूजन पूजतां जिन प्रतिमा नो पूजा करतां 'जिन अनंता न आरंभ दाखै' अनंतै कालै अनंती चउवीसी ना अनंता तीर्थंकर तेऊमां एकेही परमेश्वरे एहवूं न कहयु (जे) अमारी पूजा में तुमने आरंभ थास्यै नै अनंतै ही परमेश्वरै एहवूं कह्यूं 'न आरंभ दाखैं' 'पूया निरारंभिया' फिरी ते कहै एहवूं प्रगट पाठ छै जिन पूजा नै फूल निमित्तै श्रावक नवा आराम (निपजाय) करावै, पछी च्यार श्रावक आरामै जई फूलो ना वृक्षो ऊपर वस्त्र ना च्यार पल्ला पकड़ी नैं ते वृक्ष नैं पांणी छांटवा थी घणी वार ना फूल फूल्योड़ा खिरी-जाय पछी सोना ना नखला आंगुलियो मैं धारी ते फूलो नै चूंटै। टोडर करवा कारणैं कली चूंटी टोडर करी आरती थी प्रथम कंठै पहरावै। प्रभाते दरशन वेलां फूल्या फूल दीसै ते कारणै कली कतरै-वींधै ते अठावीस २८ सेर एकेक देहरै कतरीजती वींधीजती मैं देखी नैं तेऊनैं कोइ पूछे एहवूं किहां कथन छै तईयै तेनै कहै "प्रगट पाठ भाषै" सिद्धान्त में प्रगट पाठ छै ते पैतालीस में दीसतूं नथी। वीजूं ए पाठ छै समोसरण में जानूं प्रमाणैं विछीजता

पाठान्तर—१ आरंभ

तेतला आंपणनूं चढावबा न मिले बीजूं मिले जेतला चढाविये, परं नवा बाग नवां सूं फूल वा कली चूंटवी-कतरवी-बींधवी ते समत्व। अन्य पूछे पाठ बतावो तिवारे तेऊ थी लड़े मदुक्तिः—

मारे मत के ममत के, करै लराई घोर।
जे आपण मत में नहीं, कहे जिनागम चोर ॥ १ ॥

—:❀:—

केइ कहै धर्म नूं मर्म भाखी दया,
तेहनूं तत्व ते एम आंणै।
जीव हणतां बचायां न जयणा पली,
मर गयां लेस हिंसा न जांणै ॥४॥मं०॥

अर्थः—केचित एवं वदंति=केईक एहवूं कहै छै 'धर्म नूं मर्म' नांम=जैन धर्म नूं मर्म। रहस्य नांम=सार भाखी दया धर्म नूं मूल दया भाखी। 'तेहनूं तत्व ते' नांम=ते दया नूं परमार्थ 'एम आंणै' नांम=ए रीतें मन में ल्यावै, 'जीव हणतां बचायां न जयणा पली' नांम=जीव बकरें प्रमुख नें वा बिलाई मूंस प्रमुख हणतां नै जो कोई मारण न दै तो ते बचावण वाला प्राणी नै दया पली किंवा नहिं? तिवारें स्याम वस्त्रधारी में अनंतर भेदी भीखणपंथी इम कहै तेहनैं दया न पली, तइये ते बेदल्यो किम न पली? तिवारें तेऊ कहै ते बचावणवाला प्राणियें ने मरता प्राणी नें बचावतई असंख्यात जीवों नी हिंसा करी, किम? ते कहे जे प्राणी नै अणे बचाव्यो ते प्राणी खास्यै पीस्यै वा मैथुन सेवस्यै ते सर्व-जीवों नी

हिंसा बचाववा वाला नैं थस्यै, ए न बचावतौ तो हिंसा ही स्यूं करवा थाती नैं बचाववा वालौ हिंसा नौ विभागी स्यूं करवां थातौ ? तइयै ते बोल्यो, मैं मरतां न बचाव्यो ते अभयदान बुद्धियैं बचाव्यौ। इहां सिद्धान्त नूं वचनः—

अभयं सुपत्त दाणं, अणुकंपा चिय कित्तदाणंच।
दुन्न विमुक्खो भणिओ, तिन्नवि भोगाइया हुंति ॥१॥

अभय सुपात्रदान मोक्ष ना करण कह्या माटै बचाव्यो, मैं तो ए बुद्धिये न बचाव्यौ, ए स्नान पानादि मैथुन हिंसा करौ ए बुद्धि मारी न हुती। तईये ते बोल्यौ, कोईक ना बचाव्या न बचै, न मार्यां मरै, जीव मात्र आयु स्थितैं जीवै, आयु स्थित परिपाकाभावैं कोई मरतूं न थी। अत्र कः संदेहः तेथी आपणै हाथ मारवूं बचाववूं नहीं, ते कारणै 'मर गयां लेस हिंसा न जांणैं' तेथी जीव हणीजतां न बचावणौ ते परमेश्वर भाषित दया नौ तत्व नांम रहस्य नांम=सार ए बखाण्यौ छै।

केय कहि जेम मनराज मोजां लियैं,
तेम करियै न आरंभ गिणियै।
हेय गेयादि जे मन प्रवृत्ति वधै,
ते सधै सिद्धता तेण भणियै ॥मं०॥४॥

अर्थः—केचित पुनः एवं वदंति, केईक इस्यौ कहै जिस जेहनी जेहवी प्रकृति होय तेह नै कोई प्रसन्न करवा वांछै तिवारैं

तेहनी प्रकृति प्रमांणै प्रवर्त्तते छतै सरल प्रसन्न होय। ए सरल-प्रकृति वाला नौ कथन छै परं ए मन तौ ओड ही कौ चंचल, अनादि ही कौ वक्र है तेथी एहनी इच्छानुजाई जे प्रवतवौ तेन योग्य छै। कथं "मन एव मनुष्याणाँ कारणं बंध मोक्षयोः" तेथीज आनंदघन आत्मार्थीयें पिण इमज कहयुं:—

आगम आगमधर नैं हाथै, नावै किण विध आंकूं।
किहां किण जौ हठ करी नैं हटकूं, तौ व्याल तणी पर वांकुं हो॥

ते कारणें ते कहै 'जेम मन राज मौजां लियै' नांम= जे जे टांणैं ए मन राजा छाजै चढ़्यो थकौ जे जे तरंगै जे जे आज्ञा फुरमावै ते ते कार्य प्रवर्त्तवौ मोक्षार्थी नैं जोग्य छै। जिम राजा नैं हुकम माफक प्रवर्त्ततौ राजा राजी थई मोटी जागीरी आपै तिम ए पिण राजी थयो मोक्ष जागीरी आपै। 'तेम करियै न आरंभ गिणियै' नाम=मन आज्ञा आपै तेम करवूं, करतै आरंभ न मानवूं। तिवारै यज्ञासीयै प्रश्न कर्यूं—हेयगेय उपादेय कह्या ते हेयगेयादि स्या? तइयै ते कहै 'हेय गेयादि जे मन प्रवृत्ती वधै' नाम= जे वस्तु मां मन नी छोड़वा नी प्रवृत्ति वधी ते हेय, नै जे वस्तु मां जाणवांनी मन प्रवृत्ति वधी ते गेय, नैं जे वस्तुमां मननी आदरवानीं प्रवृत्ति वधी ते उपादेय 'ते सधै सिद्धता तेण भणियै' नांम= तेहवी मननी प्रवृत्ति सिद्ध थयां छतां सिद्धता नांम=मोक्षता थाय, तेण भणियै नांम=ते मनोमती नागापंथी एहवूं कहै छै सिद्धांत थकी ए वचन अत्यन्त विरुद्ध छै।

एक कहि प्रथम नय कथन विवहार नूं,
पारणामिक पणैं केय भाखैं ।
केय कहि वचन नूं जाल गूंथ्युं सबै,
निश्चयैं सिद्धता जैन दाखैं ॥६॥मं०॥

अर्थः—एके केचित् एवं वदंति, एक केई एहवूं कहै 'प्रथम नय कथन विवहार नूं' नांम=अनंते ही यीर्थंकर उपदेस मां प्रथम कथन विवहार नूं उपदिस्यो । यथा-'विवहार नय छेए, तित्थु छेओ जओ भणिअं ।' तेथी जैन दर्शन नूं मूल विवहार जांणी केवली छद्मस्थ साधू नैं वांदै । यदुक्तमावश्यनिर्युक्तौ "ववहारो विहुबलवं, जं छउ मत्थंय वंदए अरिहा" ते कारणैं जैन दर्शन मां आधिक्यता विवहार नों छै, तइयैं परणांमवादी बोल्यो-रे विवहारवादी ! तूं स्यूं विवहार २ पुकारै छै, परमेश्वरे तो 'किरिया वडपत्त समा' भाखी छै, सिद्ध प्रापिका नहीं, नवग्रैवेयकांत वखांणी छै तेथी विवहार नौ माजनो स्यौ ? 'पारणामिकपणैं केय भाखै' नाम=जैन दर्शन नौ रहस्य तौ परणामिकपणैं भाखै छै । परणामे न होय तौ साठ हजार वर्ष महादुष्टकरणीयैं छ खंड साधनैं प्रवर्त्यो भरत सरीखो महापापी थारै कथनैं तौ तद्भव मुक्ते न ज जाय प ं करणी सिद्ध प्रापिका नहीं, सिद्धप्रापक धर्मीपणूं परणांम में रह्यूं छै । तेथी परमेश्वर नूं धर्म परणामिक छै । 'केय कहि वचन नूं जाल गुंथ्यूं सबै' नांम=केचित् एवं वदंति ए सर्वमात्र पैंतालीस आगमो मां षड्द्रव्यादिक नूं कथन ते सर्व प्राणीयो नी बुद्धि उलझायवानैं

वचन नूं जाल गूंथ्यूं छै तेमां सर्व प्राणीयो नी बुद्धि उलझ रही छै तेथी जाल कह्युं । बीजूं ए सर्व कथन मात्र छै। 'निश्चयैं सिद्धता जैन दाखै' नाम=जैनदर्शन नूं तात्विक रहस्य ए छै-निश्चै थकीज सिद्धता छै। निश्चयाभावे सिद्धता नौं अभाव, कथं महाकष्टैं करी अनंते भवे सेव्यो विवहार तेथी सी सिद्धता थई? तेथी अनंत में भवांते निश्चय आवसी, तइयैज सिद्धता थसी तिमज आनंदघन कहै 'निहचै एक आनंदो' पुनः 'निहचै सरम अनंत'॥

विविध किरिया करी विविध संसार फल,
फल अनेकान्ति कैं गति समृद्धि।
गति समृद्धी पणैं भव भ्रमण नवि टलै,
तेहथी सी थई आतम सिद्धि ॥७॥मं०॥

अर्थ—'विविध किरिया करी' नांम=नाना प्रकारनीं किरिया जिन दर्शन मां ठहरी। आजकाल ना जिन दर्शनी ते कहिवै करीनैं जैन दर्शन मोक्ष साधक कहीजै छै। "करणं क्रिया" नाम= करवूं ते किरिया कहीजै ते पंचम काल ना जैन दर्शनी कोई किम ही जैन दर्शन प्रवर्तना बतावै नै कोई किमही बतावै। एतले भिन्न भिन्न कथनैं भिन्न भिन्न क्रिया 'बिविध संसार फल' नांम=नाना प्रकार नैं संसार फल नाना प्रकार नी क्रिया थको थयूं जिम जिन नैं दीप पूजा करतां ज्योत उद्योती होय, नैवेद्य पूजा नो भोग फल वखांण्यो। तेथी नाना प्रकार नी क्रिया नाना प्रकार संसार फल थया। कथं भिन्न भिन्न कथनत्वात् नै जइये नाना फल थया तइयै 'फल अनेकांतिकै गति समृद्धी' नांम=अनेक

फल छै तइयैं अनेक फल भोगववा ना स्थानक अनेक गति ठहरी तौ जेहवा जेहवा फल संवंध भोगववां नो जेहवी जेहवी गति तेहवी तेहवी गतैं गमन थाय। 'गति समृद्धो पण भवभ्रमण नवि टलै' नाम=एक फल भोगववाँ नी एक गतैं जई नैं एक फल भोगव्यूं। बीजा फल संवंधि ना गतैं जई बीजौ फल भोगव्यूं इम-त्रीजूं चौथूं तइयैं जैन दर्शन थकी गति समृद्धो गति नी वधोतर ठहिरी। जिहां गति नी वृद्धि तिहां भव भ्रमण नवि टली नैं जैन दर्शन विना अन्य दर्शन मात्र भव भ्रमण टालवा नैं कारण नथी जणावूं नैं आज ना जैन दर्शनीयो ना कथन जोते छते मत ममत्वीपणा थी हठग्राहीपणा थी सात नयो थी एक नय ग्रहण वा दोय पिण नय ग्रहण करीनें जेथी पोता नौ मत पुष्ट थाय तेहवूं तेहवूं कहै तो 'तेहथी सी थई आत्म-सिद्धो' नाम=तेहवा जैन दर्शन थकी आतमानी सी सिद्धता थई? एतलै जैन दर्शन प्रवर्त्तते आत्मायैं मोक्षफल पामियै नैं आज ना जैन दर्शन सेववा थकी संसार नी वृद्धिता पामियै ते जैन तौ एइवूं नथी परं मदुक्तिः—

> आतम सुद्ध सरूप कौ, कारन जिनमत एक।
> हम से भैंसे भेष धर, कीच कीयो एकमेक ॥१॥

एथी अम्है जैन नै लजावां छां—

> नहीं निश्चय नयैं नहीं विवहार थी,
> है नहीं है यथा वस्तु रूपै।

जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही
सूर सत्ता रही रवि सरूपे ॥मं० ॥८॥

अर्थः—तेथी ए सर्व नूं कथन जैनाभासी छै । तत्र जैनाभास लक्षणमाहः—"जैन लक्षण रहिता जैनवत् आभासमाना जैनाभासा;" कथं एक नयानुजाई सर्व कथनत्वात्। हिवै सर्व नयानुजाई स्यात् पुरस्सर भाषी ए सर्व नै कहितौ हुवौ । अहो भाईयो ! जैन दर्शन एम छै नहीं "निश्चय नयै' नांम=एकेलूं निश्चय नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं अनेकांतकत्वात् 'नहीं विवहारथी' नांम=तिमज एकांत विवहार नयापेक्षी जैन दर्शन नथी, कथं सापेक्षकत्वात्। है नांम=यथा वस्तुरूपैं जिम अवस्थित नांम=रह्यूं छै निश्चय नय नूं कथन, तिम निश्चयनयै जैन दर्शन छै वली जिम रह्यूं छै विवहार नय नूं कथन तिम विवहार नयापेक्षी पिण जैन छै नहीं । है नांम=जिम निश्चय विवहार नय नी अपेक्षा न राखै तिम जैन दर्शन मां कथन नथी वली विवहार नी अपेक्षा निश्चय न राखै तिम पिण जैन दर्शन मां कथन नथी, एतलै जैन में एकांत नयापेक्षिक कथन मात्र नथी। तिहां दृष्टांत कहै 'जल भर्यै कुंभ प्रतिबिंब सत्ता रही' नांम=जिन पांणी थी भर्या घट नैं विषै सहस्रकिरण सम्मिलत सूर्य नां पडिबिंब पडी रह्या छै ते जोइ नैं कोई एहवूं कहै, ए सूर्य छै । तइयै बीजो कहै सूर्य नथी, सूर्य नो पडिबिंब छै, तेनूं ज छतापणूं छै तिम मात्र जे प्रथम मत कह्या ते जैन नथी, कथं एकान्त माटैं, तेउ मां जैन नी पडिबिंब नी सत्ता छै, जैनी दीसता छता जैनी नथी

कर्थं एक नयापेक्षकत्वात्। 'सूर सत्ता रही रवि सरूपै' नांम=सूर्य नी सत्ता जिम सूर्य ना सरूप में रही तिम जैन दर्शन नी सत्ता जैन दर्शन मां रही छै सप्त नयानुजाईत्वात्।'

जिनमतैं ममत सत्ता न पामीजियैं,
ममत सत्ता रही मत ममत्तैं।
द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में,
धर्म धर्मी सदा एक वृत्तैं ॥मंद०॥६॥

अर्थ—'जिनमतैं ममत सत्ता न पामीजियै' नांम=जिनमत नैं विषै मम ममत नी सत्ता छत्तापणूं न पांमियै एहवूं कह्यैं छतै एकांतवादी बोल्यौ-कथं किम न पांमीजै ? तइयै जैन दर्शनी तेहनैं उत्तर आपै अनेकांतकत्वात्-अनेकांतकपणा माटे, यथा-नाम दर्शयति 'यत्र यत्र अनेकांतकत्वं तत्र तत्र निर्ममत्वं' इति सिद्धांतः। 'ममत सत्ता रही मत ममतैं' नांम=ममत्वनी सत्ता किहां रही छै जिहां मत नौ ममत्त्व छै, तिहां अमे इम मांनियै छियै ना अन्य इम न मानियैं, ते मत ममत्व नैं विषै ममत सत्ता रही छै। कथं एकांतत्वात्-एकांतपणा माटे यथा 'यत्र यत्र एकांतत्वं तत्र तत्र मत ममत्वं' तेथी जिहां एकांतो पणुं छै तिहांज मत ममत्व नी सत्ता छै। अत्र दृष्टांत 'द्रव्यता द्रव्य में धर्मता धर्म में, नांम= द्रव्यता द्रव्यत्व धर्मीपणूं द्रव्य में रह्यूं छै धर्मता द्रव्यत्व धर्मीपणूं तेहनैं विषैं रही छै। द्रव्यता, धर्मता रह्यां तौ वेई द्रव्य नैं विषै परं भिन्ननिदर्शन कर्यां छतां द्रव्य नूं धर्म द्रव्यत्व, तेहनै विषै रही द्रव्यता, तिम जैन नैं विषै जैनत्व धर्म, तेहनै विषै रही

जैनता नैगमादि सात नये सम्मिलित कथन तेज जैन धर्मता जैनत्व, जैन धर्मता रह्यां तौ बेई जैन मां छै परं भिन्न निदर्शन करतां छतां जैनता जैनत्व धर्म मां रही छै, तिहां ममत्व मात्र नथी। कथं अनेकांतकत्वात्। नैं अन्य पूर्वे भाख्या जैनी एकैक नयापेक्षी, अतएव मत ममत्वी तेऊ न विषे जैन धर्मता नथी ते जे एक नयें कथन थापी रह्या छै ते सर्व नय जैन मां हीज छै तेथी जैनी जणाय छे, परं तेऊ मां जैनता नथी, सर्वांश वचन न मानवा थी 'धर्म धर्मी सदा एक वृत्ती', नांम=जैन मां रह्यूं जैनत्व धर्म, तेमां रही जैन धर्मता, तेहनीं सदा एक वृत्ती छै। सप्त नय संबंधी वृत्ति नांम=आजीवका छै आत्र कथन सात नय विलास छै, तेहवा जैनियों नी बलिहारी, परं अति विरला।

> बहिर आतम मती परम जड़ संगती,
>
> मत ममत्ती महा मोह मायी।
>
> प्रमत्त अप्रमत्त गुणठाण वरतूं अमे,
>
> मूढ़ माति वकैं अविरत कषायी ॥मं०॥१०॥

अर्थ—'बहिर आतम' नाम=ए पूर्वे कह्या ते बहिरात्मा छै। कथं जिन वचन विराधकत्वात्। 'मती' नांम=बहिरात्मा पणां नी बुद्धि छै। जेऊ माँ पुनः 'परम जड संगती' नांम=उत्कृष्ट जड ना संगी सेवन करवा वाला, अतएव तप संजमादि ना आसेवी छै। पुनः 'मत ममत्ती' नांम=मत ना ममत्वी छता मत माटै लड़ाई करता फिरै, हम न विचारै साक्षात् अमे विरुद्ध कथन कहां छां ते फिरी तेहनौ पक्षपात स्यौ? तेई नहीं पुनः ते केहवाएक छै

'महा मोह' नाम=महामोही छतां सारंभीया, सपरिग्गहीया छै। पुनः केहवा छै 'मायी' नाम=महामायी छै, ते कपटवृत्ति थी सरागी थया श्रावको थी एहवूं कहे 'प्रमत्त, अप्रमत्त गुणठाणे वरतूं असे' नाम=प्रमादी छट्ठै, अप्रमादी सातमैं, गुणठाणौं अंतर महूर्त २ गुणस्थानैं वरतां छां, एहवूं 'मूढमती बकै' नाम=मूर्ख बुद्धी थका एहवूं बकै-प्रलपन करै। रहस्यार्थे जण जण आगल एहवूं कहे, तद्रूप बकवाद करै, पूर्वे तो कह्या हीज छै फिरी एऊ ना गुण कहे 'अविरति' नाम=न विरति, अविरति विरत मात्र नथी कथं श्रद्धा भृष्टत्वात्। तौ कहै नवकारसी नौ तौ विरत छै तिहां लिखै अध घडी सूर्य ऊंचौ आयां सिद्धाचलजी सरीखे सिद्धक्षेत्रनी तलहटियें नवकारसी पारता में देख्या पुनः वली केहवा 'कषायी' नाम=क्रोधी मानी लोभी छता।

आप नंद्या करौ भव भयै थरहरौ,

परहरौ मुखैं नंद्या पराई।

सम दम खम भजौ तजौ मत ममत नैं,

राग दोसादि पुन आस दाई ॥मं०॥११॥

अर्थ—ए पूर्वोक्त नें मत ममत्ती कह्या तइयैं भव्य जीव कहै—हिवै अमे स्यो मार्ग प्रवर्त्तियै ? स्यांम वस्त्रधारी तौ देहरा में उठावणै ही न पैसे, तेहनै सम्यक्त्वी बतावै, काथांबरी श्यामवस्त्रधारी नै ढूंढिया मुखैं कहे तेहनैं सम्यक्त्वी कहै, बीजाही एक एक नै परस्पर निंदै, तिवारै अमारै मनमें ए विचार आवै—एऊ कहै ते साचूं वा एऊ कहै ते साचूं। अमैं स्यौ प्रवर्त्तियै, अमारी सी गति,

साचूं जैनधर्म अमारै हाथै किम चढ़ै ? तेनूं उत्तर—ए सर्व मतधारी दुकानदार छै, जिम दुकानदार नै पल्ले साच नही तिम एऊ पिण। तइयै भव्य फिरी पूछै अमनै करणीय कार्य कांईक बताव। तइयैं बतावै 'आप नंद्या करौ' नाम=आपणा आत्मानो आप निंदा करौ। 'भव भयैं थरहरौ' नांम=भवगत्यागतिरूप भय थी थरहरौ धूजा, रे आत्मा तूं जिन प्रणीत आगम नो एक अक्षर हीन वा अधिक करीस तौ अनंतो भवभ्रमण, रे आतमा तुझनैं करवी पड़स्यै, तेनौ भयराखौ। 'परहरौ मुखैं निंदा पराइ' नांम=मुख हूंती छता वा अछता, पर ना अवगुण कहिणा परहरौ-छोड़ौ ए त्याज्य छे सम दम खम भजौ' नाम='सम'=शत्रु मित्र तुल्य भजौ-आदरौ, 'दम'=पंचेन्द्रिय दमन आदरौ, 'खमं=क्षमा आदरौ ए आदरणीय, 'तजौ मत ममत न' -नाम=मत रौ ममत्व हठग्राही पणौ छोडौ, एतलै जिनसिद्धांत सूं पोतानो प्रवर्तन विरुद्ध दीसे तोही न छोडैं, आत्मार्थी तेह न छोडौ। 'राग दोसादि' नांम=राग नैं द्वेष नै आदि शब्दे कलह अभ्याख्यानादि नैं छोडौ। पुनः=वली 'आस दाई' नांम आस्था दाई वांदी नैं छोडौ, ए नै छोड्या बिना सरव व्यर्थ छै।

''अन्वयें और व्यतिरेक हेतु करी,
समझ निज रूप नैं भरम खोवैं।
शुद्ध समवाय तैं आत्मता परिणतैं,
ज्ञान नूं सार पद सही होवैं ॥१२॥मं०॥

अर्थः—हिवैं आत्मा जेथी आत्मीक सरूप पामै तेहवा जैन दर्शन नूं जे रीतैं कथन छैं ते रीत कही बतावै। 'अन्वय और

व्यतिरेक हेतु' नांम=एक अन्वय हेतु बीजौ व्यतिरेक हेतु ए वे हेतु जेहवै परणामें वरत्तै होय ते कथन सिद्धांत थी अवधारण करी नैं पोतैं निरमाई निरगत हठा छतौ ए वे कारणैं पोताना आतमा मां पोतैं भली रीतैं समझ' नांम=समझै— तत्रान्वय लक्षण-माहः यत् सत्वे यत् सत्वमन्वयः' नाम=सरूप सत्वे आतमता सत्वं नाम मुझ में ज्ञान दर्शनादि नौ छतापणूं होय तौ एक मतधारी गुरै मुझ में चोथो पांचमो गुणठाणौ ठहिराव्यौ तेई खरौ बीजा आगला पिण होय। परं हूँ मारा आत्मा थी आत्मा में विचारूं तौ काम वसवर्त्ती छतौ, लोभ वसवर्त्ती छतौ सी सी कुचेष्टा, स्यौ स्यौ अकरणीय कार्य ते मां प्रवर्त्तूं, तौ ए मुझ नै पंचमौ गुणठांणौ बतावै ते मुझनैं पोता ना सरागी करवा माटै बतावै छै। परं ए वातौ थी मुग्ध प्रांणी ठगाई जाय 'निज रूपनै भरम खोवै' नांम= व्यतिरेक हेतुवै करीनै 'निजरूप नौ भरम खोवै' नांम= पोताना सरूप नो भरम खोवै-गमावै। तत्र व्यतिरेक लक्षणमाहः— 'तदभावे तदभावो व्यतिरेक' नाम-काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सद्भावे सम, दम, खम, ज्ञान, दर्शनादि नै अभावै तदभावः नाम पंचमादि गुणस्थानक नौ अभावः नैं जे समी दमी उपसमी होय ते पोताना सरूपनैं समझीनैं निजरूप नौ भरम गमावी नै 'शुद्ध समवाय तैं' नाम=शुद्ध समवाई कारणें करीनैं, तत्र समवाय लक्षणमाहः—"यत्समवेत कार्यमुत्पद्यते तत्समवाय कारणं" नाम= आत्मा रै ज्ञानदर्शन चारित्रवंत छतैन ज्ञानदर्शन चारित्रादि समवेत मिल्यो थकौ आत्मता परिणतै' नांम=आत्मता नूं परणमन होय ते आत्मानै 'ज्ञाननूं सार पद' नांम=मुक्तिपद 'सही होवै नांम=निश्चै संघातै होवै इति सटंकः।

इति दूसमकाल संबंधी जिनमतधारकों नी वितस्था वर्णन स्तवन सम्पूर्णम् ॥ सं० १८८० लि०। पं०। लछू: ॥

——:&:——

आध्यात्मिक पद संग्रह

(१) राग—भैरु

भोर भयौ भोर भयौ, भोर भयौ प्रांणी ।
चेतन तूं अचेत चेत, चिरियां चचहानी ॥भो०॥॥टेक॥
कवल खंड खंड विकसाने, कौलनी मुदांनी ।
कंज उपम खंजन सी, नैनां न घुरांनी ॥भो०॥१॥
है विभाव विच नींद, सुपन की निसांनी ।
तेरे सुसुभाव मांहिं, दोनूं न समांनी ॥भो०॥२॥
आरोपित धर्म तैं, सुरूप की दुरांनी ।
रूप के सुज्योत, ज्ञानसार ज्योत ठांनी ॥भो०॥३॥

(२) राग—षट

भोर भयौ अब जाग प्राणी,
क्युं अजहूं अखियांन घुरानी ॥भो०॥
मनुज जनम तूं क्युं नहि चेत्यो,
पसुआनी चिरिया चचहांनी ॥भो०॥१॥
चेतनधर्म अचेत भयो क्युं,
चेत चेत चेतन सुज्ञानी ।

बीतौ यात आयु बल जोवन यूं,
टप टपकत पुसली पानी ॥भो०॥२॥
पर परणित परणामन प्रयोगै,
नींद सुपन तुझ मांहि समानी।
ज्ञानसार निज रूप निरुपम,
तामें जागरता नीसानी ॥भो०॥३॥

(३) राग—घाटौ

उठ रे आतमवा मोरा, भयो घट में भोर ॥उ०॥
अज्ञान नींद अनादि, न रहि तिल कोर ॥उ०॥१॥
निज भाव संपद तेरी, पकरौ बल फोर ॥उ०॥२॥
नहीं रोग सोग वियोगा, नहीं भोग को सोर ॥उ०॥३॥
नहीं बंध उदयादिक नौ, कोई काले जोर ॥उ०॥३॥
गही भाव निज निश्चै नौ, विवहारे छोर ॥उ०॥५॥
ज्ञानसार पदवी तुझ में, कहुं और न ठौर ॥उ०॥६॥
सिद्ध रूप सिद्ध संपद नौ, भोगी नहीं और ॥उ०॥७॥

(४) राग—सारंग, वृन्दावनी

हो रही तातै दूध बिलाई ॥हो०॥
लाऊ झाऊ करती डौलै, ज्यूं बच्छ विछुरि माई ॥हो॥१॥

एते दिनां पिया सूं रमते, अज्यूं उदगार न आई ।
नीठ पिया कहुँ निजर निहारे, क्यूं वैरन उठ धाई ॥ हो ॥२॥
फूहड़ लंबोदर खर रदनी, वसन देख न सुहाई ।
सुमति पियारी प्राण पिय मिल, ज्ञानसार पद पाई* ॥ हो ॥३॥

(५) राग—धन्याश्री । ढाल—नातौ नेह कौ

सास गयां पछी क्यूं ही आथ, न चालै साथ ॥सा०॥
निहचै याही जान हैत तो, क्यूं संचै भर बाथ ॥सा०॥१॥
सब में सूंब कहायलैं, रीतै चलिहै हाथ ।
दै सो तेरी मूंआ पीछै, और हुवेगो नाथ ॥सा०॥२॥
तृष्णा रागै परणम्यो तूं, यातें अलछ अनाथ ।
ज्ञानसार गुण संपदा, निजरूप सनाथ ॥सा०॥३॥

(६) राग—धन्याश्री

विषम अति प्रीत निभाना हो ॥वि०॥
जिय जातैं ही प्रीत निभै जौं, तौ हूं सुगम सयाना ॥१॥
सौतन संग दुसह प्रान तैं, यातैं विषम बयाना हो ।
प्राणवान अपहान वांन मृग, गाय गाय कछु गानाहो ॥२॥
अंग आलिंगन सौत पिय पेखी, कैसें धीर धराना हो ।
गूडी ऊडी वस दोरी के, तैसे पिय वस प्राना हो ॥३॥

---

* "प्राण पियारी सुमति तिया कुं, ज्ञानसार गल लाई ।"

मैं मन वच तन पिय संग चाहूं, पिय पर रंग लुभाना हो ।
वड़वानल तें विरहानल की, ताप अनल दुख दाना हो ॥४॥
काल भुयंगम की मनु वाफै, प्रलयैं विलय जहाना हो ।
ज्ञानसार एती सुन आए, छिन सब दुख विसराना हो ॥५॥

(७) राग—काफी

खोट सयाने कहा कहि समझावै ॥खो०॥
सूते कूं धकधूण उठावै, जागत नर कैसै कैं जगावै ॥खो॥१॥
जागरता इक उजागरता, इन कुल दोय अवस्था गावै ।
छोर दई गही नींद सुपनता, नीची अपनै हाथ दीखावै ॥२॥
नींद न कर ज्युं सुपन न आवै, नींदि गया जागरता पावै ।
जागत जागत उजागरता होवै, ए जग न्याय कहावै ॥३॥
सूतें सुद्ध भूल गये घर की, पर घर में सब रैन गमावै ।
जानत होय अजान सयानी, तासैं कै कैसे वरि आवै ॥४॥
कौन सुनै कासूं कहूं सजनी, घट में हो घट मांहि विलावै ।
सायर छोल उठै सायर तें, पै उनकी उन मांहि समावै ॥५॥
इक इक दुख सब जग में सजनी, पै मुहि दुख का अंत न आवै ।
वेग पठाय सयानी दूती, विन दूती नागर वस नावै ॥६॥
तुम हो आतुर वे अति चातुर, दोनुं कर कैसे कै जीमावै ।
पै हम दूती विरुद धरावै, अबकै ज्युं त्युं आन मिलावै ॥७॥

एकण हाथ न बाजै तारी, जग जन दोनूं हाथ बजावै ।
रैन दिनां रटना मुहि उनकी, पै पिय एक घरी नहीं चावै ॥८॥
बिन पीतम बिरहा तन तावै, सीत समीर इतै संतावै ।
तो सब दुख मिट जाय सयानी, ज्ञानसार बिन तेड़िहि आवै ॥९॥

(८) राग धन्यासिरी

कौन किसी को मीत, जगत में । कौन किसी को मीत ।
मात तात अरु जात सजन सुं, काहे रहत निचींत ॥ज०॥१॥
सबही अपने स्वारथ के हैं, परमारथ नहीं प्रीत ।
स्वारथ बिणस्यै सगो न होगो, भींता मन में चींत ॥ज०॥२॥
ऊठ चलेगो आप इकेलो, तूं ही तूं सुविदीत ।
को न किसी को तूं नहीं काको, एह अनादि रीत ॥ज०॥३॥
तातें इक भगवंत भजन की, राखो मन में नीत ।
ज्ञानसार कहै ए धन्यासी, गायो आतम गीत ॥ज०॥४॥

(९) राग सोरठ

सांम नाम न लयौ, सो साचें मन सूं ॥सां०॥
कर्त्ता करम करम फल कांमी, नांमी नाथ थयो ॥सां०॥१॥
सम परणामी सामा देखी, उलसित चित्त न भयो ॥सां०॥२॥
धन गन गाड रख्यो कूपक में, काकूं कछु न दयो ॥सां०॥३॥
ज्यूं ज्यूं हूँ सुलझन कूं धायो, त्यूं त्यूं उलझ पर्यो ॥सां०॥४॥

छक पगड़ें जब बाजी आई, तब हूँ हार गयो ॥सां०॥५॥
आसा मारी गई नहीं मोसूं, आसन मार लयो ॥सां०॥६॥
आप को मायो पाप उपायो, नहिं कछु धरम कियौ ॥सां०॥७॥
मनसा शोधन सोधन घट कौ, एक घरी न कियौ ॥सां०॥८॥
जैसे खुनी ज्ञानसार कुं, साहिब निरबहियौ ॥सां०॥९॥

(१०) राग—सोरठ

चेतन मैं हूँ रावरी रानी ।
वीर विवेक जई समझावौ; अंत विरानी विरानी रे ॥चे०॥१॥
और सखी उपहास करत है, सूओ नी सेज सुहानी ।
मेरो पिया पर संग रमत है, तातैं पंडुर वानी रे ॥चे०॥२॥
वीर विवेक हितु तुमही से, भगनी होत है रानी ।
मेरे पति कुं जाय सुणावो, कही मैं सोइ कहानी रे ॥चे०॥३॥
वीर विवेक कहै भगनी से, उद्यम सिद्ध निदानी ।
सरधा सखि समता मिल ल्याई, ज्ञानसार कुं तानी रे ॥चे०॥४॥

(११) राग—आल्हू

आन जगाई हो विवेक, सुहागनि ; आन जगाई हो ।
उठ सुहागनि प्रीतम आए, करहु बधाई बधाई हो ॥वि०॥१॥
उठी सुहागनि भरिय आभरणो, हित्त कर कंठ लगाई हो ।
खबर परी जब तबही सरधा, धसमसि मंदिर आई हो ॥वि०॥२॥

कर जोड़ी कहि सरधा सामी, महिर निजर फुरमाई हो ।
चौगति महिल छोर छोटी कुं, वड़ी याद क्यूं आई हो ॥वि०॥३॥
सुमति पठायो अनुभौ आयौ, उन सब सुद्ध सुनाई हो ।
छोर दई उन कुटिल कुमति कुं, आयो संग ले भाई हो ॥वि०॥४॥
हसै रमैं अब क्रीड़ा मंदिर, सुमति सुचेतन राई हो ।
प्रेम पीयूष प्याले भर पीवत, ज्ञानसार पद पाई हो ॥वि०॥५॥

(१२) राग—तोडी

कुसल सुमति अति वैरनि नावै ॥कु०॥
संग कर दूर रह्यो अति रमवो,
रंग भर छिन इक पिय न बुलावै ॥कु०॥१॥
कोह विकल करयो मान केरै परयो,
भूरि भूरि पिय आंख गमावै ।
मेरी मेरी मेरी न कबहूँ,
तेरी वैरन मुहि पास बैठावै ॥कु०॥२॥
विकल बंभ मिट कटैय भरम तम,
आप आय घर आन वसावै ।
केवल कमला निज घर आवै,
ज्ञानसार पद चेतन पावै ॥कु०॥३॥

(१३) राग—सारंग

पिया बिन एक निमेष रहूँ नी ॥पि०॥

नणद निगौनीं सास दिरौनी ताके वचन सहौं नी ॥पि०॥१॥

जेठ जिठौनी कौन सगौंनी, पिय पद कमल गहौंनी ॥पि०॥२॥

माय दगौनी भैन ठनौंनी, गिरिवर जाय चढ़ौनी ॥पि०॥३॥

मोह तजौनी धेय भजौंनी, ज्ञान पीयूष पियौंनी ॥पि०॥४॥

पीय तीय दोनूं मुक्ति सिधौंगी, सुख अनंत वरौंनी ॥पि०॥५॥

(१४) राग—सारंग

अनुभौ नाथ कुं आप जगावै ॥अनु०॥

विरला वृद्ध करण कूं मालो, वरषा पानी पावै ॥अ०॥१॥

शुभ मति संग रंग तैं कुलटा, कुमती दूरें जावै।

केवल कमला अपछर सुन्दर, मिंदर आप ही आवै ॥अ०॥२॥

कवल नयन आनन तें सुललित, ललित वचन्न सुणावै।

चतुरा चख कटाक्ष पात तैं, ज्ञानसार पद पावै ॥अ०॥३॥

(१५) राग—वेलावल

अलहियो कैसी बात कहूँ, करम की कैसी ०

मैं हूँ चेतन चेतनवंता, एते दुख क्यों सहूँ ॥कै०॥१॥

कबहूँ नाटक कबहूं चेटक, साटक कबहूँ रहूँ।

कबहूँ फाटक कबहूँ हाटक, काटक कबहूँ कहूं ॥कै०॥२॥

उदय उपाय करम थित बंधे, आतम दुख सहूं ।
पर गुण रुंधे निजगुण सुंधे, संधें सुख गहूं ॥कै०॥३॥
औसर पाय प्रगट परमातम, आतम जोग वहूं ।
ज्ञानसार शुध चेतन मूरत, नाथ अनाथ लहूं ॥कै०॥४॥

(१६) राग—कनड़ी

चेतन विन दरियाव दी मछरी रे ॥चे०॥
कोह ललारयो माने मारयो वे, संग अनंग रंग बिछुरी रे ॥१॥
आप धूतारी मेरी आकूं वे, कंठ पकर कर पछरी रे ॥२॥
आप ही धारो आप पधारो वे, ज्ञान अनंत गुण गुंछरी रे ॥३॥

(१७) राग--काफी

कैड मरडता स्यानैं हींडौ छौ, जोवौ नें आप विचारी रे ॥कै०॥
काल आहेड़ा केड़ै पड्यो छै, मारस्यै थाप नी मारी रे ॥कै०॥१॥
जे तुझ नें छै प्यारी नारी, न्यारी थास्यै नारी रे ॥कै०॥२॥
पर नी रमणी हवणा सारी, परभव लागस्यै खारी रे ॥कै०॥३॥
चेत चेत तूं चित में चेतन, नहिं तो थारी तारी रे ॥कै०॥४॥
ज्ञानसार कहै प्रभु सेवा, छै सहु नै सुखकारी रे ॥कै०॥५॥

(१८ राग - सामेरी

औगुन किनके न कहिये रे भाई ॥औ०॥
आप भरे सब औगुन ही से, और न कूं क्या चहियै रे भाई ॥१॥

डूंगर बलती देखे सबही, पगतल कौन बतइये।
लागी पगतल लाय बुझावो, जो कछु तन सुख चहिये रे भाई ॥२॥
आप बुरे तो है जग सबही, आप भले तो भलेहि है।
ज्ञानसार जिन गुन जप माला, निसदिन रटते रहिये रे भाई ॥३॥

(१६) राग—विहाग (पपीहा बोल्या रे)

दरवाजा छोटा रे, निकला सारा जगत उनीसैं ॥द०॥१॥
क्या बधू क्या माई बाबू, क्या बेटी क्या धोटा रे ॥द०॥२॥
गय हय करणी दो इक चरणी, क्या कोई छोटा मोटा रे ॥द०॥३॥
क्या पूरब क्या उत्तरपंथी, दक्षिण पच्छिम भोटा रे ॥द०॥४॥
ज्ञानसार दरवाजै नाए, यातैं सिद्ध सनोठा रे ॥द०॥५॥

(२०) राग—सोरठ

आलीजा ने थांरी चाह घणी छै, महिलां वेग पधारो ॥आ०॥
आयु करम बिन सातूं की थिति,
कोड़ि सागर इक कोड़ि गुणी छै ॥आ०॥१॥
केतै दिन चितवतां अबकै, ज्यूं त्यूं प्रीत बणी छै।
निरवाहन नहीं प्रीतम हाथे,
निरवाहन भवपाक बणी छै ॥आ०॥२॥

भलो बुरो तोही चल आयौ, अंत तो घर केरो धणी छै।
ज्ञानसार जो ढील न कीजै, प्रीते अंतर कौन भणी छै ॥३॥

(२१) राग—सोरठ

है सुपनो संसार, प्रभु कूं जन भूल बावरे ॥है०॥
आ जग कहूं विष समान है, सकल कुटुंब को प्यार ॥१॥
दुनिया रंग चहरबाजी ज्यूं, क्यों सोचै न गिंवार।
ज्ञानसार घट भीतर साहिब, खोजै क्यूं घरबार ॥२॥

(२२) राग—सोरठ

धूंधरी दुनिया ओ धूंधरी दुनिया।
आशा धार फिरै ज्यूं घर घर, शिटत करन सुनियां ॥१॥
बाहिरातम मूढा जगवासी, ज्यूं जंगल मुनियां।
ज्ञानसार कहै सब प्रानी की, बहिर बुद्धि बानियां ॥२॥

(२३) राग—काफी

मनड़ा नी अमे केनै कहिये बातो।
खिण जोगी खिणखिण मन भोगी, खिण सीरो खिण तातो ॥१॥
गुपत चिंतवन तारूं परगट, लाजै नथी रे कहिवातो ॥म०॥
चैत्य वंदने तूं न प्रवर्त्तै, ते मुझ नथी रे सुहातो ॥२॥
जोरावर थी जोर न चालै, तेहथी सहूँ थारी लातो ॥म०॥
रूसण तूसण तारूं[१] खिणखिण, गिणती नथीय गिणातो ॥३॥

---

१ ताहरो

इक सामाइक ज्यूं एकान्ते, ज्यूं ही दिन ज्यूं रातो ॥म०॥
तिण वेला उपराठौ तूं तिण, संयम नी करै घातौ ॥४॥
सुर पुरंदर नर तिर धूजावै, वेद नपुंश कहातो ॥म०॥
ज्ञानसार जो निज घर होतो, जोतो जे ख्याल खिलातौ ॥५॥

(२४) राग—वसन्त

घर आवो ढोलन पर संग निवार,
तुमरो परसौं कहा प्यार यार ॥घ०॥१॥
नहीं जाति पांति कुल को स्वभाव,
एतो उनसौं क्या राग भाव ॥घ०॥२॥
छांडौ क्यों न उनकौ संग मीत,
जग में भव भव करिहै फजीत ॥घ०॥३॥
चलिये अपने कुल की मरजाद,
कुल छांड कहा काढौ सवाद ॥घ०॥४॥
आदै पर अंतै निज न होय,
निज पर सौ पर कबहु न समझ जोय ॥घ०॥५॥
अन्ते घर बिन सरहै न कन्त,
जिहि ज्ञानसार खेलै वसन्त ॥घ०॥६॥

(२५) राग सोरठ—सामेरी

आम थयूं छै काम रे भाई ॥आ०॥

वचन रु काया इक ठीक नांहीं, चित चंचल नहिं ठाम रे भाई ।

कहूं हूँ भेप भेपधर हूँ ही, करूं हूँ अनेरा काम रे ॥२॥

आतम विषये अगम मगन हूँ, कहूँ हूं निरगत काम रे ॥३॥

चित अंतर पर छलबल चिंतवूं, मुख लेऊं भगवंत नाम रे ॥४॥

ऐमें खूनी ज्ञानसार की, सरम राखियो सांम रे भाई ॥५॥

(२६) रागिनी—पूरवी

भये क्यों, आप सयान अयान ॥आ०॥भ०॥

पर संगति पर परणित परणाम, रूप रहे विसरान ॥भ०॥१॥

मेट विभाव सुभाव संभरिके, सत्ता थल पहिचान ।

मोह जंजाल जाल के नारन, पायो पद निरवाण ॥भ०॥२॥

(२७) राग—सोरठ

झूठी या जगत की माया, क्यों भरमाया ।

कबहूं मृगतृष्णा तें मृग की, पानी प्यास बुझाया ॥झू०॥१॥

जैसे रांक स्वप्न भयो राजा, हाल हुकुम फरमाया ।

जागे तें कछु नजर न देखे, हाथ ठीकरा आया ॥झू०॥२॥

झूठा तन धन झूठा जोवन, झूठी माया काया ।

मात पिता सुत वनिता झूठे, झूठे क्यूं विरमाया ॥झू०॥३॥

निज स्वरूप निश्चै नय निरखे, तो में कुछु न समाया ।
तूं तो तेरे गुण को भोगी, ज्ञानसार पद राया ॥भू०॥४॥

(२८) रागिणी—भैरवी

आये हो भये भोर, भले ही ॥आ०॥
सौतन संग रैन रंग सोते, आते आरस मोर ॥भ०॥१॥
चौगति महल खाट ममता पें, क्यां छोरी कर जोर ॥२॥
रात विभाव विहानो उदयो, सूर सुभाव सकोर ॥३॥
तब पीतम तुम सुमति संभारी, अब कहा करूं अ निहोर ॥४॥
पै कुल कन्या की मरजादा, अपने रत की ओर ॥५॥
तातें ज्ञानसार कै आगै, ऊभी वेकर जोर ॥६॥

(२९) रागिणी—वेलाउल

सोई ढंग सीख लै सोई ढंग सीखलैगी, जो पिया रहे घर मांहि॥
नींम सयानी हूँ समझाऊं, तुम कहा समझो नांहि ॥सो०॥१॥
घर आये तें आदर पइये, सो चहिये तुम मांहि ॥सो०॥
मैं कहा जानूं प्रानपियारे, कैसें राजी नांहि ॥सो०॥२॥
मैं तो मन तन वचन तें तेरी, चोरी विन दामां ही ॥सो०॥
मान अपमान समान मान कै, आई वीर पठांई ॥सो०॥३॥

अंग सुरंग समार साथ ले, सरधा सुबुधि सहाई ॥सो०॥
प्राणपियारी सुमति तिया की, ज्ञानसार गलबांहि ॥सो०॥४॥

(३०) राग—वेलावल

चेतन खेले नौ कक्करी री, नौ कक्करी री, नौ० ॥चे०॥
चरसो चय भर सो भव पावन, याति आति ज्युं कर[1] चकरी री ॥१॥
अंगुरी वेरन[2] कर्म को प्रेरयो, याति आवति इक गय पकरी री ।
भर सें[3] चर अरु चर तें पुनि भर, दोरी पकरन क्रम जकरी री ॥२॥
चर भर भव चर भर को करवो, खेलवो नांही इत ककरी री ।
पास प्रभु अब चर भर वारो,[4] ज्ञान नमें दो पद पकरी री ॥३॥

३१ राग—धमाल

आये मोहन मेरे, आज रंग रली ॥आज०॥आये०॥
सिद्ध सुहागन प्रीत वनाई, समता सरधा की कौन चली ॥१॥
लरका तें वहू पाय परी जब, देर दिरानी लिली ।
सास सभी सभासरस[5] दीनी, जेठ जिठानी दौर मिली ॥२॥
खंती मद्दव अज्जव मुत्ती, लरकी चार चली ।
सम दम विनय निरीह पियाले, धाई माई गल लाय खिली ॥३॥
सब परिवार संभार साथ ले, चेतनता सु चली ।
ज्ञानसार सु मुगत महिल में, खेलें धमाल की आस फली ॥४॥

---

१ कर पें । २ प्रेरन । ३ भर तें । ४ हारो । ५ शुभाशिस ।

(३२) रागणी—सोरठ

रसियो मारू सौतन रै जाय हेली, रसियो०॥
मेरो कह्यो मानत नहीं सजनी, वहुत रही हमझाय ॥हे०॥
चौगति महिल खाट ममता पैं, रमतें रैन विहाय ॥हे०॥१॥
सौतन संग घूमतो डोरे, झांखित मृदु मुसकाय ॥हे०॥२॥
सरधा समता ज्ञानसार कूं, ल्याई जाय मनाय ॥हे०॥३॥

(३३) रागणी—सोरठ

की करां मैं रैंन विहांनी, नींद न आवै।
नींद न आवै नींद न आवै, नींद न आवै ॥की०॥टेर॥
उदयें आतम ज्ञान अरक कै, रात विभाव विहावै ॥की०॥१॥
रुचि सुद्ध भावैं सहिज पसरतें, भ्रम तम कम न रहावै।
चकवा चकवी भोर भये तें, हिलमिल प्रीत वढ़ावै ॥की०॥२॥
लोभ लूक जब अंध भयो तब विसई चंद छिपावै।
ज्ञानसार पद चेतन पायो, यातें अलख कहावै ॥की०॥३॥

(३४)

अचरिज होरी आई रे लोको, अचरिज होरी आई रे लाला।
लाल गुलाल उडत आटै की, एहि[1] मिथ्यात उडाई रे ॥१॥

१ इह।

पिचकारिन की झड़सी लगी है, वाणी रस[1] वरसाई रे।
चंग मृदंग वाजत ख्यालन की, अनहद नाद घुराई रे ॥२॥
वह[2] मिथ्यामति होरी गावत, इह भवि जिन गुण गाई रे।
काठखंड की होरी जगाई, इहु कछु करम जलाई रे ॥३॥
मद पानी जन मदिरा पीवत, केइ मुह फेरे न भाई रे[3]।
ज्ञानसार के ज्ञान नयन में, अनुभव सुरखी छाई रे ॥४॥

(३५) राग—होरी

आज रंग भीनी होरी आई।
अनिवृत्त करण प्रीतम आगम की, सरधा ल्याई वधाई ॥१॥
पिय प्यारी की सुचि रुचि चितवन, दड़ीय गुलाल चलाई।
वाणी पय पिचकारी मुख की, दंपति झरिय मचाई ॥आ०॥२॥
चंग मृदंग अनादि धुनि की, धुनि मिलमिल धुनि नाई।
आप सरूप आनंद रस भीने, सोहं होरी गाई ॥आ०॥३॥
शुक्ल ध्यान की शुक्ल तरंगे, मृदु मुसकान मुसकाई।
ज्ञानसार मिल कर्म काठ की, सहिजे होरी जगाई ॥आ०॥४॥

---

१ जिनवाणी। २ ओही। ३ केई मुफरिन खाई रे।

(३६)

होरी रे आज रंग भरी रे, रंग भरी रस से भरी रे।
आज अगम आवन पिय कीनौ, आगम बदरी हरख झरी रे ॥१॥
विरह मिट्यौ तनु ताप घट्यौ सब, शीतलता व्यापी सबरी रे।
पुत्र भयै जिन पिता मात कै, वींदी लागत घर बिखरी रे ॥२॥
पुत्रैं प्रीतम आंख्यां आगै, देखत प्यारी नयन ठगी रे।
जीव जीवन इन ज्ञानसार तैं, पिय प्यारी की सब सुधरी रे ॥३॥

(३७) राग—होरी-काफी

भाई मति खेले तूं माया रंग गुलाल सूं ॥भा०॥
माया गुलाल गिरन तें मूंदी, आंख अनंते काल सूं ॥१॥
जल विवेक भर रुचि पिचकारी, छिरके सुमति सुचाल सूं।
उधरति ज्ञान नयन तें खेलै, ज्ञानसार निज ख्याल सूं ॥२॥

स्तवनादि भक्ति-पद संग्रह

——❀○❀——
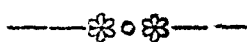
(१) श्री शत्रुंजय तीर्थ स्तवनम्

ढाल—आज्यो आयजो रे, ए देशी

गायज्यो गायज्यो रे हो, विमलाचल गुणगान । भविकजन ।
इण गिरि आदि जिनेसरू रे, पूर्व निवाणूं वार ।
समवसरया रायण तलै रे हो, जगगुरु जगदाधार ॥भ०॥१॥
नेमि विना तीर्थंकरा रे, समवसरया तेवीस ।
तिण वलि चौमासो रह्या रे हो, अजित शांति जगदीश ॥भ०॥२॥
पांचे पांडव इण गिरे रे, पाम्या पद निरवांण ।
मुगति वहू वरवा भणी रे हो, ए गिरि चौरी जाण ॥भ०॥३॥
सल्ल मुनि दस कोड़ि सुं रे, नमि विनमि वलि तेह ।
दोय दोय कोड मुगते गया रे हो, प्रणमीजे धरि नेह ॥भ०॥४॥
के सीधा इण गिरवरें रे, सीभस्यै केई जीव ।
सिद्धक्षेत्र ए सासतौ रे हो, नमिये सुखनी नींव ॥भ०॥५॥
एहवो नहीं इण कलियुगे रे, तीरथ पृथ्वी मांहि ।
पाप ताप समवा भणी रे हो, ए गिरि सुरतरु छांहि ॥भ०॥६॥

एक जीभ इण गिरि तणा रे, गुण केता कहिवाय।
जथासगति भगतें करी रे हो, ज्ञानसार गुण गाय ॥म०॥७॥

(२) श्री शत्रुंजय यात्रा स्तवनम्

आज्यो आयजो रे हो प्रीतम परम पवित्र सुगुण नर आयजो रे
म्हे चाल्या सेत्रुंजै भणी रे, पियु पिण चालैं साथ।
आदनाथ दरसण करी रे हो, करियै शिवपद हाथ ॥सु०॥१॥
फूल चंबेली चंगेरियां रे, भर भर नाना भांत।
पुष्प वादलि पूजा करां रे हो, वादल[1] नव नवी जात ॥सु०॥२॥
मुगता मुगताफल भरी रे, सुन्दर सोवन थाल।
वधावी कण्ठे ठवां रे हो, अनुपम फूल नी माल ॥सु०॥३॥
तीन प्रदत्तणा जिम करां रे, तिम वलि तीन प्रणाम।
भाव पूजा करवा भणी रे हो, वैसूं वैसण ठाम ॥सु०॥४॥
शक्रस्तव शक्र करचो रे, तिम कर करिय प्रणाम।
ऊभा थई थूई[2] कही रे हो, औसरिये जिन धाम ॥सु०॥५॥
इम जात्रा सेत्रुंज तणी रे, करिये कंत कृपाल।
ज्ञानसार पदवी वरी हो, भरिये मुगत नो फाल ॥सु०॥६॥

(३) श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

राग—कहिरवो

नाभिजी के नंद से लागा मेरा नेहरा ॥ना०॥

१ (हो) वाला। २ थूही।

वदन सदन सुख, मदन कदन मुख,

प्रभु को वदन किधूं, समरस मेहरा[1], ॥ना०॥१॥

अमल कमल दल, नयन उजल जल,

मींन युगल मानुं, उछलत सेहरा ॥ना०॥२॥

भाल विशाल रसाल अकल द्युति[2]।

शरद शशि मानु आठमी को जेहरा ॥ना०॥३॥

नासा चम्प दीप कली, सरली सींगी फली।

दन्त पंति कान्ति मानु[3], चंद का सा उजेरा ॥ना०॥४॥

केतलो वर्णन करूं, [4]उपमा कहां ते धरूं।

ज्ञानसार नाम पायो, ज्ञान नहीं गेहरा[5] ॥ना०॥५॥

(४) श्री बीकानेर मण्डन ऋषभ जिन स्तवनम्

राग—काफी

मूरति माधुरी, ऋषभ जिणंद की ॥मू०॥

विक्रम मत्र पुर मुकुट मनोहर,

ता विच कौस्तभमणि प्रतिमा जरी ॥मू०॥१॥

भाग विभाग शास्त्र परसम कर,

सुघर कारीगर सुन्दर या घरी।

---

१ नेहरा। २ दुति। ३ मनु अठमी। ४ ओपमा। ५ साहिरा।

अंगी विध विध रंग सुरंगी,
देखत छवि अति नयन कमल ठरी ॥मू०॥२॥
शान्त सुधारस मुख पर वरसत,
हरपत मुहि मन मोर नवल झरी ।
ज्ञानसार जिन निजरे निरख्यो,
निरखत सिद्ध थानक स्थिति सांभरी ॥मू०॥३॥

(५) श्री नेमिनाथ होरी गीतम्

नेमिकुमार खेलें होरी वे, लाल गुलाल भरी झोरी ॥ने०॥
इत थे आए नेम नगीना, उत थे कृष्ण की सब गोरी ॥ने०॥१॥
अबीर गुलाल की भरि भरि मूठें, डारे मुख पें दोरी दोरी ।
भर पिचकारी नीर सुगंधे, छिरके मुख कर टकटोरी ॥ने०॥२॥
पेट भरण डर तिय नहिं परणों, सब सखि मिल करे ठकठोरी ।
कारे सें व्याह सो कौन करेगी, समझै नहिं सखि ते भोरी ॥ने०॥३॥
ऐसे सबन की बतियां सुनके, जोर रहे मुख खल जोरी ।
राजुल नेम सगाई जोरी, पिय मेरे में पिय तोरी ॥ने०॥४॥
तोरण आय चले रथ फेरी, बिन औगुन पिय क्यों छोरी ।
संयम गहि वो मुक्ति पधारे, ज्ञान नमें दो कर जोरी ॥ने०॥५॥

(६) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—तोडी

पिय विन मैं वेहाल खरी री ॥पि०॥

छिन मुरझानी सुध विसरानी, धरर धूज धरणीय परीरी ॥१॥

दोर सखि सब मिलिय सयानी, सीत समीर झकोर करी री।

पलनि उघार नजर भर पेखे, विन पीय विधना काहि घरी री ॥२॥

रातें नीर झरयो आंखनि तें, मुख पै कजरा रेख परी री।

सोल कला संपूरन ससि को, राह गह्यो ज्यूं सिचांन चिरी री ॥३॥

संयम गहि गिरिनार गिरी पर, पिय प्यारी दो मुक्ति वरी री।

भव जल तारी पार उतारो, ज्ञान नमें दो पद पकरो री ॥४॥

(७) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी ख्याल

तोरण वांदी प्रभु रथड़ो रे वाल्यो, एकरस्युं घरि ल्यावोरे

मैं वारी सहियां प्रीतम नें समझावो रे ॥१॥

हेली रूठड़ो जादव ल्यावो रे मैं वारी।

पशुवन परि प्रभु किरपा रे कीनी, मोपरि महिर धरावीरे ॥२॥

नव भव चो प्रभु नेह न छोडुं, नेह नवल कर जोडुं रे।

गढ गिरिवर प्रभु सहसा रे वन में, संयम लाधो शुभ दिन में ॥३॥

नेमि राजुल प्रभु मुगति महल में, खेल खेलत निसदिन में ।
ज्ञानसार प्रभु दास तुमारो, इह भव पार उतारो रे ॥मं०॥४॥

(८) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वो दिल लग्गा नाल तिहारे ॥नाल० (२) वो०॥
फिर पीछे रथ चाले यादव, तव पीउ पीउ पुकारे ॥वो०॥१॥
मोकूं छारि मुगती कूं चाहो, मैं क्या अवगुन प्यारे ॥२॥
अठभव प्यारी नारी तेरी, टुक इक वार निहारे ॥वो०॥३॥
तीय तज हो पीय पिय नहिं तजहुं, तिय पीतम की लारें ।
ज्ञानसार पीय तिय के नामै, वारीयां वार हजारे ॥वो०॥४॥

(९) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी

वालिम मोरा ने समझावो रे, साहेलड़ी प्रीतम मोरा०॥
राजुल कहै सुन सखिय सयानी, दौर दौर तुम जावो रे ।
पालव झाली कहिज्यो पीउने, एक वेर घर आवो रे ॥२॥
बिन औगुन क्यों तजहो पियारे, औगुन इक बतलावो रे ।
सहिसावन जइ संजम लीनो, केवल लह्यो भले भावो रे ॥४॥
नेम राजुल मिल्या मुगति मझारे, ज्ञानसार गुन गावे रे ॥५॥

(१०) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

मेंडा नेम न आये, पीय विन क्यों दिन जाय ॥मैं०॥

क्यों दिन जाये क्यों निश आये,

हां प्यारे तरफ तरफ जिय जाय ॥मैं०॥

दामनि चमके हीरा† धमके,

हां प्यारे कारी घटा गहिराय ॥मैं॥०१॥

पियु पियु पियु पपइया बोले,

हां प्यारे मो जियरा अकुलाय ॥मैं०॥२॥

विन औगुन क्यों तजहो पियारे,

हां प्यारे कहियो सब समझाय ॥मैं०॥३॥

पिय नाये तिय चढिय गिरी पर,

हां प्यारे ठम ठम ठवती पाय ॥मैं०॥४॥

पति पत्नी दो मुक्ति पधारे,

हां प्यारे ज्ञानसार गुण गाय ॥मैं०॥५॥

(११) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग—काफी—घट मिश्रित

जावंतरौ पीयु वारौ, मेरो पियु जावंतरौ कोऊ वारौ ॥मे०॥

तोरण से तुम फेर चले रथ, मोपे कांको आधारौ ॥मे०॥१॥

---

† हियड़ा

पशुवन से तुम करुणा जाणी, हम अबला निरधारो ॥मे०॥२॥
राजरिद्ध सब छोड़ी राजिंद, जैसे कांचरी कारो ॥मे०॥३॥
सहिसावन जइ संयम लेके, नेम चढ्या गिरनारो ॥मे०॥४॥
ज्ञानसार मुनि की ए वीनति, महिर करी अवधारो ॥मे०॥५॥

(१२) श्री नेमिनाथ राजिमती गीतम्

राग— काफी

[ढाल—कोई चूरियां ल्यौरे चूरियां; गली गली मनिहार पुकारे खांधे वो गांठरियां कोई० ए० देशी]

मोहि पीयू प्यारे प्यारा ॥मो०॥
अठ भव प्यारी नारी थारी, नवमें क्यों भया न्यारा रे ॥१॥
तोरण आय चले रथ फेरी, अब हम कौन आधारा रे ॥२॥
छोर दई रोती राजुल कूं, आप भये अणगारा रे ॥मो०॥३॥
घोरी जाऊँ तेरे नांमै, वारियां वार हजारा रे ॥मो०॥४॥
ज्ञानसार निज गुण नो समरण, करहुँ वेर सवारा रे ॥५॥

(१३) श्री समेतशिखर तीर्थयात्रा स्तवनम्

[ढाल—मिसरी री, थे दिल्ली म्हे आगरे थां म्हां किसो सनेह थे चमकाई०]

समेतशिखर सोहामणो, जिहां पुंहता जिन वीस।
सुगति रमणी सुख वालहा हो, प्रभुजी सिद्धे पहुंता ईश ॥१॥

अजित आदि अंतिम प्रभु, पारस पारस सार ।
अश्वसेन कुल दीपता हो प्रभु, माता वामा सुखकार ॥२॥
प्रभु शरणे हूं आवियौ, भय भंजन भगवंत ।
लख चौरासी हूं भम्यौ हो प्रभु, दरसण विन तुम कंत ॥३॥
आज भलो दिन ऊगीयो, भेट्या श्री जगनाथ ।
कारज सीधा मांहरा हो प्रभु, मेट्यो भव दुख साथ ॥४॥
मुझ आंगणि सुरतरु फल्यो, सुरघटि मिलियो आय ।
कामधेनु घर ऊपनी हो प्रभु, तुम चरणे सुपसाय ॥५॥
चिंतामणि मुझ कर चढ्यौ, नवनिधि सिद्ध सरूप ।
अष्ट सिद्धि सुख सम्पदा, हो प्रभु चित्रावेलि अनूप ॥६॥
मुझ मन तुझ चरणे वस्यौ, पंकज षटपद जाण ।
चंद चकोरा जिमि लग्यो हो प्रभु, चक्रवाक जिम जाण ॥७॥
पोयण कै मन में वसै, चंद सदा सुखकार ।
मोरा मन जिमि घन वसै हो, प्रभु जलदायक जगसार ॥८॥
संवत अठारै इकावनै[1], माह सुदि पंचम सार ।
ज्ञानसार कर जोड़िनै हो प्रभु, प्रणमैं वारंवार ॥९॥

इति श्री समेतशिखर तीर्थ स्तवनम्

१ पाठान्तर—न व्यासिये,

(१४) श्री समेतशिखर तीर्थयात्रा स्तवनम्

[ढाल—भविका सिद्धचक्र पद वंदो०]

सेत्रुंज साध अनंता सीधा, सीझस्यैं वलिय अनंता ।
पूरब जो आचारिज हुआ, कहि गया ए कहंतारे ॥१॥
प्राणी, शिखर समो नहीं कोई ।
तिहां किण पिण इक ऋषभ जिणेसर, समवसरचा नहीं सीधा ।
एहवै मोटै तीरथ एक जिन, वृथा नहींय प्रसिद्धा रे ॥प्रा०॥२॥
अष्टापद इक आदि जिणंदा, निश्चय पदवी पाया ।
रेवयगिर नेमीसर सुखकर, सीधा श्रीजिनराया रे ॥प्रा०॥३॥
आबूगिर पर एक न जिनवर, सीधा नहीं जगचंदा ।
तिहां वलि कोई नहीं तीर्थंकर, केवलज्ञान दिणंदा रे ॥प्रा०॥४॥
इम अनेक तीर्थं तीर्थंकर, किहां सीधा केहां नाहीं ।
एहवो परगट ठामें ठामें, पाठ छै आगम मांहि रे ॥प्रा०॥५॥
समेतशिखर पर वीसें टूंके, सिद्धा जिनवर वीस ।
तिण नहीं एहवो तीरथ जगमें, नमोंअ नमावी सीस रे ॥प्रा०॥६॥
संवत अठारै उगणपचासे, महा सुद वारस दिवसें ।
संघ सहित भली यात्रा कीनी, ज्ञानसार सुजगीसे रे ॥प्रा०॥७॥

(१५) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

[ढाल-धन धन संप्रति साचो राजा]

पास प्रभु अरदास सुणीजे, दास थी करुणा कीजे रे।
पापी जीव ने शिक्षा दीजै, एटलु कारज कीजै रे ॥पा०॥१॥
कोय कहै जे वचन निरासी, तो तेहनी करे हासी रे।
पिण पोतानी मतिनी फासी, ते तो कां न निकासी रे ॥पा०॥२॥
धीटाई मेलै नहिं धीठौ, ते मैं निजरे दीठौ रे।
सुगुरु कहै हित वचनै जे मीठो, गुरु नो वांक अपूठो रे ॥पा०॥३॥
पोतानी, भूंडाई न जाणे, परनी तुरत पिछाणै रे।
आपणपै हजि पहिलैं ठाणौं, सत्तम मोजां माणै रे ॥पा०॥४॥
होय रह्यो ए करम नो वासी, सूतो ऊंधे पासी रे।
कहो किम कर्म ने सामो थासी, अंते अचानक जासी रे ॥पा०॥५॥
एहनी रीत अछै नित एही, इक मुख कहिये केही रे।
श्रीजिनराज हिव जस लेई, एहनें शिवसुख देई रे ॥पा०॥६॥
तूं सरवे सुख दुख नो ज्ञाता, तूं त्रिभुवन चो ताता रे।
रत्नराज मुनि द्यौ साता, ज्ञानसार गुण गाता रे ॥पा०॥७॥

(१६) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

[ढाल—मेड़तीया भंवर जी रो करहलो]

परम पुरुष सूं प्रीतड़ी, कीजे किम किम करतार जी।
निपट निरागी साहिबो, हूं रागी निरधार जी ॥१॥

म्हारी अरज प्रभूजी मानल्यो, करुणा कर करतार जी ।
हूँ सेवक प्रभु तूं धणी, हिव भवपार उतार जी ॥म्हा०॥२॥
कर जोड़ी ऊभां थकां, कीजे सेव सदैव जी ।
पिण प्रभु किमही न पालवै, एह अनोखी टेव जी ॥म्हा०॥३॥
चाकर पहुँचे चाकरी, साहिब समपै दान जी ।
तौ सेवक नो साहिबा, वाधै जग में वान जी ॥म्हा०॥४॥
साहिब पिण सेवक तणी, राखै नहिं जो माम जी ।
साहिब सेवक नो सदा, किम निरवहसी कामजी ॥म्हा०॥५॥
इम जाणी सेवक परै, करो महिर कृपाल जी ।
निरधारां आधार तूं, तूंही दीनदयाल जी ॥म्हा०॥६॥
पार्श्व प्रभु सूं वीनति, करी वणुं करजोड़ जी ।
ज्ञानसार पद दीजिये, सुख अनंती ओड़ जी ॥म्हा०॥७॥

(१७) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ (सहाय-स्मरण) स्तवनम्

राग—सोरठ

करी मोहि सहाय, गौडीराय करीय सहाय ।
खूबचंद की मंद विरियां, खबर लीनी आय ॥गौ०॥१॥
भ्रम प्रलाप अलाप मंदौ, त्यौर नाही जस ठाय ।
आंख कीकी चढ़ी ऊंची, घूमरी वलि खाय ॥गौ०॥२॥

नींद संग उमंग नांही, मन न अपनै भाय।
उछलन मिस नमा दस दिस, झाला दै जमराय ॥गौ०॥३॥
एह मेरे नांहिं संगी, संगी पीव रहाय।
साथ अमचो उनहि के संग, चलेंगे उठ धाय ॥गौ०॥४॥
ए विवस्था देख मेरे, लगी उर में लाय।
जरचौ पिंजर हंस जाणी, अंस हू न रहाय ॥गौ०॥५॥
सुख घटा घर आप जलधर, इतै वरषै आय।
ठरचौ पिंजर देख पंखा, रह्यो ऊड न जाय ॥गौ०॥६॥
भ्रम प्रलाप न लाप ऊंचो, त्यौर अपने ठाय।
चढ़ी आंख्यां ऊतरी तब, घूमरी नवि खाय ॥गौ०॥७॥
नींद रंग उमंग अंगे, मन्न हू ठहिराय।
चित्त पीछे नसां ठहिरी, जम्म अपने जाय ॥गौ०॥८॥
तुम हमारे नांहि संगी, पीठ हू न हराय।
काल थित परिपाक जाकी, आंधी में उठ जाय ॥गौ०॥९॥
सामि कारज करचौ सांमी, लाज राखी ताय।
सो पतित की धवल धींगे, विपद दीध धकाय ॥गौ०॥१०॥

(१८) श्री पार्श्वनाथ स्तवनम्

राग—सारंग

हमारी अंखियां अति उलसानी।
दरसन देखत चिन्तामन को, रोम रोम विकसानी ॥ह०॥१॥

हरखित नाचत नैनन पुतरी, पलन मृंद उवरानी ॥ह०॥२॥

घूघरिनाद घूमन मन फूंदी, अनहद नाद घुरानी ॥ह०॥३॥

मादल ताल पलनकी फरसन, रोम तार पुतरानी ॥ह०॥४॥

तूंबे वीन समाज मिलत सब, ज्ञानसार रसदानी ॥ह०॥५॥

(१६)

मेरी अरज है अश्वसेन लाल सूं ॥मे०॥

सेव्यो सदा बाल साहिब कूं, मैं मेरी वय बाल सूं ॥मे०॥१॥

धन नामी पारस जिन मेरी, लगन गौवड़ी कृपाल सूं।

ज्यूं त्यूं राखी वृद्धापन की, रहगी लाज दयाल सूं ॥मे०॥२॥

मैं सम देव रूप धन निर्धन, क्या मांगूं कंगाल सूं।

ज्ञानसार कूं संपत दीजै, ज्यूं पय माता बाल सूं ॥मे०॥३॥

(२०) श्री सहसफणा पार्श्व स्तवनम्

[ढाल—जग सोहना जिनराया]

अधिकारी वलि अविन्यासी, शिवपद सत्सुख सुविलासी रे।

जगजीवना जिनराया, तोरा सुरनर प्रणमें पाया रे ॥ज०॥१॥

उज्वल गुणगण तनु सोहे, मुख मटकै मनडूं मोहै रे ॥ज०॥

पद्मपत्र वरणे प्रभु दीपै, जगचक्षु कोडद्युति जीपै रे ॥ज०॥२॥

उपशम असि हस्ते धारी, अरि उद्धति क्रोध निवारी रे ॥ज०॥

भवि सहसफणा प्रभु वंदो, दुष्कृति नो कंद निकंदो रे ॥ज०॥३॥

सुमताधारी भ्रमवारी, मन हारी जयकारी रे ॥ज०॥
अड़ क्रम वारी भ्रमधारी, सुकृतिकारी दुखटारी रे ॥ज०॥४॥
अतीत अनागत ज्ञाता, वर्तमान स्वरूप विज्ञाता रे ॥ज०॥
शान्त दान्त मुद्राए साहै, प्रभु प्रणम्यां पाप विछोहै रे ॥ज०॥५॥
त्रिजग त्राता जग भ्रता ज्ञानादिक गुण नो दाता रे ॥ज०॥
धन धारै निवहियै धनीश, शुद्ध गुणधारक सुजगीश रे ॥ज०॥६॥
वामानंदन वरदाई, तुम सुनिजर सुख सदाई रे ॥ज०॥
ज्ञानसार कहै आणंदे, जिन वंदे ते चिरनंदे रे ॥ज०॥७॥

इति श्री पार्श्वजिन स्तवनं लिपिकृतं ज्ञानसारेण
सूरत विंदर मध्ये ॥ श्रीरस्तु ॥ शुभंभवतु ॥

(२१) श्री पार्श्व जिन स्तवनम्

राग—काफी

दिल भाया मैंडे सांई, पास प्रभु जिनराया रे ॥दि०॥
तन मन मेरो तबहि उलझ्यो, जिय में आनंद पाया रे ॥दि०॥१॥
अंखियन मेरी प्रभु कूं निरखत, ततथेई तान मचाया रे ॥दि०॥२॥
कर जोड़ी प्रभु वंदन करके, ज्ञानसार गुण गाया रे ॥दि०॥३॥

(२२) श्री गौड़ी पार्श्वनाथ (आत्मनिवेदन) स्तवनम्

राग — सारंग

गौड़ीराय कहौ वड़ी वेर भई ॥गौं०॥

सास उसास याद नहिं आवै,

तो वड़ीअ वड़ी मतिभृति सही ॥गौं०॥१॥

साठी वुध नाठी या सव कहि है, असिय खसि लोकोक्ति यही ।

हूँ तौ अठाणू में भूलूं, मोमें स्मृति मति केथ रही ॥गौं०॥२॥

नाम तुमारो यादि न आवइ, पल घड़ियन की वात किही ।

खूनी छूं पण दास तिहारौ, ज्ञानसार मुख वोल कही ॥गौं०॥३॥

(२३) गौड़ीपार्श्वनाथ गुण दोहा—स्तुति

गौड़ी गौड़ी जे करै, विह ऊगतै विहाण ।

त्यां वर लच्छी संपजै, नित प्रति होत कल्याण ॥१॥

गौड़ी गौड़ी जे करै, अति विषमी वणियांह ।

त्यांरा संकट दूर ह्वै, सुख दै तिण घड़ियांह ॥२॥

गौड़ी गौड़ी जे करै, अति ही चित्त उदास ।

तिहां उदासी दूर कर, आपै सुक्ख निवास ॥४॥

गौड़ी गौड़ी जे करै, अति संकट में जेह ।
त्यांरा संकट दूर ह्वै, नौ निध वरसै मेह ॥५॥
गौड़ी गौड़ी जे करै, अति ही सुमन्ने मन्न ।
त्यां घर लच्छी संपजै, अन्न सुवन्न सुधन्न ॥६॥
तो विन मो से पतित को, लाज राखिहै कौन ।
ग्रीष्म ताप को हरि सकै, विन मलयाचल पौन ॥७॥
सिर ऊपर घूम्यां फिरै, परहरणै कूं प्रांण ।
गौड़ीराय सहाय तैं, झांट फांट सो जांण ॥८॥
नारणजी नित ही नमैं, गुणनिधि गौड़ी सांम ।
दुख दालिद्र दूरैं दलण, कोड़ सुधारण कांम ॥९॥

(२४) श्री वीर जिन स्तवनम्

राग — वेलाउल

हे जिनराय सहाय करो यू ॥हे०॥
चंदनबाला व्राकुल वहिरो, ज्यूं उधरी त्यूंही उधरो यू ॥१॥
शूली तें प्रभु सेठ सुदरसण, सिंहासण वड़े वेग धरयो यू ।
चरण डस्यौ चंडकौशिक सांपे, करुणाकर प्रभु देव करयो यू ॥२॥
अयमत्तौ जल क्रीड़ा करतो, तारो पैले पार करयो यू ।
पतितउधारण विरुद तुमारो, नारण विरीयां क्यों विसरौ यू ॥३॥

(२५) श्री सामान्य जिन स्तवनम्

[ढाल—ईडर आंबा आंबली]

सम विसमी अण-जाणतां रे, हित अहित अविचार ।
जे जे जिण भव में किया रे, तूं जाणे निरधार ॥१॥
जगतगुरु जय जय जय जिणदेव, तारी सुर नर सारै सेव ।
तारी जग जन तारण टेव, तेथी तूंही देवाधिदेव ॥ज०॥२॥
सम्यग मिथ्या दरसणी रे, सम विसमी ए वाट ।
आश्रव संवर निर्जरा रे, हित प्रतिकूलैं पाठ ॥ज०॥३॥
नींद अज्ञान अनाद नी रे, कारण मिथ्या भाव ।
तुझ दरसण तिण नवि मिल्यो रे, तद्‌गत शुद्ध सुभाव ॥ज०॥४॥
एहीज आश्रव कारणी रे, भूत थकी भव भूर ।
संवर निर्जर नवि गमे रे, दीसे शिव गति दूर ॥ज०॥५॥
भव परणित परिपाक थी रे, तुझ दरसण नो जोग ।
जइयें संवर निर्जरा रे, थास्यै सुगुरु संयोग ॥ज०॥६॥
शुद्ध सरूप सुभाव मां रे, रमस्यै आतमराम ।
ज्ञानसार गुणमणि भरी रे, लहिस्यै शिवसुख ठाम ॥ज०॥७॥

(२६)

वो सांइ मो वीनति कैसे करूं ।
काल अनादि वह्यो मेरो तुम विन, भव वन मांहि फिरूं ।

अब तो त्रिभुवन नायक पेख्यो, हरखी पाय परूं ॥१॥
क्युंकर नाचुं तो हेतु बतारो, तेरा अंचल ग्रही हूं झगरूं ।
दरसण शुद्ध चरण अनुभव के, परचे ताप धरूं ॥२॥
तामें अनुभव चरण वान से, परचे ताप धरूं ।
ज्ञानसार प्रभु गुण मोतिन के, कंठे हार धरूं ॥३॥

(२७) राग—केदारो

तुम हो दीनबन्धु दयाल ।
करि कृपा मुहे तार तारक, स्वामि विरुद्ध संभाल ॥तु०॥१॥
अधम केते उद्धरे तुम, मेरी ओर निहाल ।
मैं अधम तुम अधम उधरण, करहो क्युं न निहाल ॥तु०॥२॥
छोड़ जग की देव सेवा, लग्यौ तेरी चाल ।
ज्ञानसार गरीब की तुम, करोगे प्रतिपाल ॥तु०॥३॥

(२८) राग—कनड़ी

मुख निरख्यो श्री जिन तेरो ॥मु०॥
ससिपून्यौ[1] मिस विन मुख देखत[2],
पुहप कमलनी केरो ॥मु०॥१॥
निस[3] पखैं मिस[4] पून्यूं उजरी, प्रभु मुख नित्तही उजेरो ।

१ पुन्यूं २ दीपत ३ मिस ४ निस

पंकज अमल सब कमल होत है, पुण्डरीक प्रभु तेरो ।मु०।।२।।
चन्द उदय[5] मुख सम्मुख निरखूं, यामें बीच घनेरो ।
कुसुमित पुण्डर देख्या देख्यो, कमल कमलनी केरो । मु०।।३।।
धन्य धन्य मुझ नयना[6] निरख्यो, हसत[7] वदन प्रभु तेरो ।
करजोरी मद छोरी कहि है, ज्ञानसार[8] प्रभु चेरो ।।मु०।।४।।

(२९) श्री सीमंधर जिन स्तवनम्

राग—सारंग

सीमंधर की सरस सलूणी, मूरति अति मन भाई ।।माई।।
लोचन अमिय वचन अमृत सम, नयन अमृत भर आई ।।माई।।१।।
अंग पंग नग रंग श्रुति झलकत, अनंतज्ञान छवि छाई ।।माई।।२।।
ज्ञानसार भवि भावैं परख्यौ, कौन सरूप न पाई ।।माई।।३।।

(३०) श्री वीर जिन गहूंली गीतम्

राजगृही उद्यान में सखि समवसरया महावीर ।
वारि जाऊं वीरनी सखि ।।म०।।
गणधर गोयमादिक भला सखि, इग्यारै श्रुत धीर ।।वा०।।३।।

---

५ उदै ६ नयनै ७ अनुपम चन्द उजेरो ८ नारण चरनन चेरो ।

केवलनाणी दंसणी सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
तेरैसै मनपज्जवी सखि, ऋजुमती विपुल प्रकार ॥वा०॥२॥
ओही नाणी मुनि छ विहा सखि, सात-सयां परिवार ॥वा०॥
पांचसयां श्रुतकेवली सखि, चवदे पूरवधार ॥वा०॥३॥
मुनिमंडल सूं परिवर्या सखि, चवद सहस अधिकार ॥वा०॥
अज्जा सहस छत्तीस सूं सखि, परिवरिया परिवार ॥वा०॥४॥
वनपाल जाय वधामणी सखि, श्रेणिक रायने दीध ॥वा०॥
श्रेणिक नरपति वांदवा सखि, चालै अपनी रिद्ध ॥वा०॥५॥
पांचे अभिगम साचव्या सखि, तीन प्रदिक्षणा देय ॥वा०॥
पंचांगे करै वंदना सखि, वीर चरण आदेय ॥वा०॥६॥
राणी चेलणा करै छै गूंहली सखि, राजा श्रेणिक री घर नार ॥वा०॥
गूंहली गावै गहगही सखि, सुहव सुन्दर नार ॥वा०॥७॥
त्रिहूंगति चूरण साथियौ सखि, सरधा पीठ वणाय ॥वा०॥
व्रतरागै कूंकू वण्यो सखि, श्रीफल शिवफल ठाय ॥वा०॥८॥
ज्ञानसार गुण भक्ति थी सखि, वधावै गुरुराय ॥वा०॥
प्रभु मुख थी सुनि देशना सखि, भविजन मन हरषाय ॥वा०॥९॥

—**—

श्री दादा गुरुदेव स्तवनम्

(१) राग—फाग

सुखकारी, जिनदत्त सुगुरु बलिहारी ।

संघ सकल नो संकट वारी, पंचनदी जिण तारी ॥सु०॥१॥

विद्यापोथी परगट कारी, थांभो वज्र विदारी ॥सु०॥२॥

मृतक गऊ जिन जिनमदिर तें, मंत्रत करीय उठारी ॥सु०॥३॥

ज्ञानसार गुरु चरनकमल की, वारी यां वार हजारी ॥सु०॥४॥

(२) राग—सोरठ

गुनहे माफ करो, सुगुरु मेरे गुनहे० ।

में तो खूनी खूनी खूनी, तो भी दास खरो ॥सु०॥१॥

नहिं हूं जोगी नहिं संसारी, ऐसे कूं उधरो ॥सु०॥२॥

नहिं हूं इतका नहिं हूँ उतका, जैसे धोबी को कुकरो ॥सु०॥३॥

मैं हूं सदगुर गुण का भूखा, मेरी भूख हरो ॥सु०॥४॥

ज्ञानसार कहै गुरुदेवा, मोसूं महरि धरो ॥सु०॥५॥

श्री सिद्धाचल आदि जिन स्तवनम्

[अवगुण ढांकण काज करूं जिनमत क्रिय.[1], ए देशी]

आतम रूप अजाण न जाणूं निज पणुं ।
तेह थी भव अप्रमाण प्रमाणूं भव पणूं ॥
भव भमणा नौ अंत संत कहियै हुतौ ।
तौ एहवौ अणसरथी हूं कहियै हुंतौ ॥१॥
जैन धरम विण अन्य धरम सरधा नहीं ।
साची संका रहित जेह जिनवर कही ॥
जिन–पड़िमा जिन सरिखी निहचै सरदहूं ।
तौ पिण भाव उलास न जिन दरसण लहूं ॥२॥
तेह थी मुझ मन भ्रान्ति अत्यन्त अभव्यनी ।
सेत्रुंज फरस्यै निहचै न थई भव्यनी ॥
आधुनकी आचारिज तवना में कहै ।
भव्य विना नहीं फरस्यै पिण संका रहै ॥३॥
खुहा पिवासा सीत उसनता मैं सही ।
वृद्धवयै पग पंथ खंधोपगरण रही ॥

---

१ श्रीमद् देवचन्द्रजी के वज्रधर जिन विहरमान स्तवन की तीसरी गाथा में ।

कंटक पीड़ा पग तल थास्यै दुस्सही ।
इत्यादिक बहु वेदन थी केती कही ॥४॥
जयणा पाली चरण दया नैं कारणैं ।
नवि पाली मैं जीवनी हिंसा वारणैं ॥
वरज्या उन्नत निमत असण दूसण वली ।
आतम अर्थे संयम जतना नवि पली ॥५॥

आलस थी पडिकमणादिक विध नाचर्‌यूं ।
पूछ्यां थी चतुराइयै उत्तर ऊचर्‌यूं ॥
वरजी सर्व सचित्त सर्वथा चित्त थी ।
पिण दूपण तिह लागौ मन वच वृत्ति थी ॥६॥

अभिग्रहीत पण घरनी भिक्षा आदरी ।
चौ घर लाभालाभै समता नादरी ॥
सरस निरस आहारैं सम वृत्ती पणूं ।
अति नीरस आहार कदेक विसमपणूं ॥७॥

देव द्रव्य खावानी मनसा नवि रही ।
अन्य अखातौ देख हरष मायो नहीं ॥
सेत्रुंज गिर वासी श्रावक साधु घणा ।
कोई मन वल्लभ केता असुहामणा ॥८॥

थापक ऊथापक जिनवादी सम गिणूं ।
पूछ्यै प्रश्नैं जथातथ्य वचन भणूं ॥
फूल कली कतरण वींधण कहो किह कह्यो ।
जैणा नांमै पूजापद जैणा ग्रह्यौ ॥६॥
थापक जिनवादी श्रावक व्रत ऊचरै ।
लिंगी भाषी संयत वंदन परिहरै ॥
सफरी ग्रहतैं साधु श्रेणक वंदन कूरयूं ।
तुम तेहनैं सम्यक्तवंत नहिं आदरयूं ॥१०॥
इम कहिसौ तौ जिण पड़िमा पाषाण नी ।
भाव शुद्धता थी ते जिन सम माननी ॥
श्रेणक नूं वंदन ए पच्तै संभवै ।
ते विण वीर छतै किम वंदन संभवै ॥
बाह्य कष्ट देखाडी मुछभू सरिखा बणा ।
वंचै मुगध नैं दै उपदेस सुहामणा ॥
जिन वचनै अविरुद्ध शुद्ध सहू उपदिसै ।
जिह किण मत नूं कथन तिहां ममतै फसै ॥१२॥
मत ममती श्रावक नैं सम्यक्ती कहै ।
अममत्वी नैं मिथ्यात्वी कहि सरदहै ॥

भाखै जिन मत चोर आपण मत में नहीं ।
तेहना कटका करण अजैणा नवि कही ॥१३॥
ऊथापक जिनवादी प्रकट कहै इसी ।
अंत्यम आचारिज कहै ते अममें हुसी ॥
उदर भरण कारण जिन दिक्षा संग्रही ।
पेट भर्यै जग नीत ठसक आवै सही ॥१४॥
मत अविरोधी देख आतम अति ऊलसै ।
ममती थी वतलाऊं पिण मन नवि हसै ॥
जिनमत वचन विरुद्ध मनसा भाखूं नहीं ।
इम कहितां दूहवायै गिणतनमन मई ॥१५॥
जिनरागी सूं न राग, राग जिन वचन थी ।
जिन वच अविरोधक न विराधक जैन थी ॥
जिण जिन मैंनै अविरोध विराध्यौ वचन नैं ।
तिण जिण अनंत विराध विराध्यौ जैन नैं ॥१६॥
आश्रव करणी इण सरिखी एके नहीं ।
आराधिक सम संवर करणी नवि कही ॥
ए विन संवर करणी मुझ थी नवि सधै ।
तेणैं शब्द प्रमांण प्रमांणू ए सधै ॥१७॥

संग्रह नय थी आतम सत्ता अनुभवूं ।
तद्गत गुण पर्याय पणै मन परणवूं ॥
गुण पर्यायैं धर्म सुभाव समाधि थी ।
आतम साता वेदूं अव्याबाध थी ॥१८॥
कालादिक पण कारण नीं सद्भावता ।
थास्यै आतम सरूपैं आतम सुभावता ॥
तइयै ते गत आतम उलास निश्चै हुसी ।
भव्य हुस्यूं तौ आस्या माहरी सिद्ध थसी ॥१९॥
तौ पिण अपराधि पर किरपा राखज्यौ ।
अपराधी जाणी मति अंतर दाखज्यौ ॥
सम निजरै जिनराज सेवक निरखै सहू ।
भव भव चरण सरण देज्यौ एहवूं कहूं ॥२०॥
निध रस वारण ससि (१८६९) फागुण वद चवदसै ।
सिद्धगिरी फरस्यौ मन वच तन उल्लसै ॥
ग्यांनसार निजचर्या आतम हित भणी ।
ऋषभ जिणंद समोपैं अति रति थुय थुणी ॥२१॥

इति श्री सिद्धाचल जिनस्तवनं संपूर्णम् ।

॥ सं० १८७९ लि० पं० लछु ॥

[पत्र ४

ज्ञानसार ग्रन्थावली-खंड २

भाव षट्त्रिंशिका

छतीसी संग्रह

॥ दोहा ॥

क्रिया असुधता कछु नहीं, भाव अशुद्ध अशेष ।
मरि सत्तम नरकैं गयौ, तंदुल-मच्छ विशेष ॥१॥
भाव शुद्धता जौ भई, कहा क्रिया कौ चार ।
दृढ़पहार मुगतैं गयौ, हत्या कीनी च्यार ॥२॥
साधुक्रिया कछुहु न करी, ऋषभदेव की माय ।
भाव शुद्ध की सिद्ध तैं, सिद्ध अनंत समाय ॥३॥

---

१ क्रिया नौ असुद्धपणौ लिगार मात्र नहीं हुतौ, समस्तपणैं भाव नी असुद्धता थी 'मर' नाम=मरी नैं (मच्छ नी जाति) तंदुल मच्छ सातमी नरकें गयो ।

२ तेथी क्रिया नौ स्यु ? भाव नी सुशुद्धता थी सिद्धता छे । एतलै भाव शुद्धता थयै क्रिया नौ प्रवर्त्तन स्यु, एतलै क्रिया ह्लौ न ह्लौ, किम दृढ़प्रहारी ४ हत्या क्रिया नौ कारक भाव शुद्धता थी मुगते पुहतौ, एतलै आपड़ी क्रिया नौ स्यु ? भाव शुद्धता मुख्य कारणीभूत मुक्ति नौ छे, तेज लिखे ।

३ साधु नी तप संजमादि क्रिया 'अणकरती' नाम=न करती, मरुदेवा भाव शुद्धनी सिद्धता थी अनंत सिद्धो में 'समाय' नाम=तदाकार थई ।

साठ सहिस वरसें करी, किरिया अतिहि अशुद्ध ।
भरत अरीसा भौंन में, भाव शुद्ध तें सिद्ध ॥४॥
नमुकारसी व्रत नहीं, करतौ कूर अहार ।
भाव शुद्ध तें सिद्ध है, कूरगड्डू अणगार* ॥५॥

४ नै जो अशुद्ध क्रिया सिद्ध बाधिका है तो साठ हजार वरस ताई आश्रव कारणीभूत सिद्ध अकारणीभूत क्रिया करतै काच महिल में भाव नी शुद्धता थी भरत चक्रवर्ती सिद्ध थयौ । पुनरपि ।

५ सिद्ध सानुकूला तप क्रिया, तेमां तौ नवकारसी विना व्रत करणी नहीं तौ छट्ठ अट्ठमादि नी बात ही सी ?

क्रियारुचि केईक इसौ कहणा लागा तें पाठ में इसो गुंथ्यो 'नमुकारसी व्रत नहीं' परं साधु नें नवकारसी मात्र व्रत कदेई न है ? जद मैं कह्यो म्हारे तौ मैंण रो नाक छै, हां तौ 'नमुक्कार विन व्रत नहीं,' इसौ पाठ कर देसूं, पिण किहां कथन ही छै ? जद उणे कह्यौ भगवती जी में पाठ छै तद मैं कह्यौ तहत्ति । परं तिहां देख्यां सूं तौ औ पाठ छै—अन्न गिलायत्ति-अन्नं विना ग्लायति ग्लानो भवति अन्न ग्लायकः प्रत्यग्र कूरादि निष्पत्ति यावत् बुभुक्षातुर तया प्रतीक्षितु मशक्नुवत् यः पयुत कूरादि प्रातरेव भुंक्ते कूरगड्डूक प्राय इत्यर्थः चूर्णिकारेण तु निस्पृहत्वात् । सीय कूर तोइ इत्यादि कथानकं च पुष्पमाला प्रकरणे उक्तं ।

यथा—सव्वेसु पि तवेसु कसाय निग्गह समं तवो नत्थि
जं तेण नागदत्तो सिद्धो बहुसोवि भुंजंतो १

* महामुनिराज

क्रिया भाव सुध असुध तैं[1], मेल्यो नरक समाज[2] ।
भाव सुद्ध तें सिव भयौ[3], प्रसनचंद ऋषिराज[4] ॥६॥
केवलि सी करणी करै, अभव लिंग संपन्न ।
पै गंठी भेदै नहीं, भाव शुद्ध तें शून्य ॥७॥
पूर्व कोड़ देसोनता, क्रिया कठिन जिन कीन ।
कुरड़ वकुरड़ू नरक गति, अशुद्ध भाव तें लीन ॥८॥

---

६ १ शुद्ध साधु क्रिया अशुद्ध भाव थी ।

२ संघातन नाम समूह, कर्यो एतलें बंधण-पन वांध्यो । नें संघातन पणें कर्मवर्गणा नौ नरकगति संबंधी, समाज नाम सामग्री करी ।

३ भावनी शुद्धता थी परम पद पाम्यो ।

४ राजा, ऋषीश्वर ।

७ केवलचरिया नाम=करणी कारक । पुनः किदृश अभव्य लिंगेन साधुवेषेन संपन्न-युक्त । पैंनाम तथापि, मिथ्यात्व ग्रन्थी भेदं न, प्राप्नोति । कथं नाम क्युं न पामै ? तिहां लिखै—क्रिया तो निमित्त कारण छै । असाधारण कारण भाव । ते शुद्ध भाव थी, शून्यपणा थी गंठी भेद न थाय ।

८ सित्तर लाख कोड़, छप्पन हजार कोड़, वर्ष १ पूर्व, इसा क्रोड़ पूर्व १ देशोन, अत्यंत असहनीय क्रिया करते दोनूं ही नरक गया ।

यथा—वर्षति मेघ कुणालायां, दिनानि दश पंच च ।
मुसलधार प्रमाणेन, यथा रात्रो तथा दिवा ।१।

अतः—शुद्ध भावेव मुक्तिकारणं नतु क्रियेति ।

वंस खेल[1] किरिया करी, साधु क्रिया नहीं लेश[2] ।
इलापुत्र केवल धरै, कारन भाव विशेष[3] ॥९॥
चरण क्रमण किरिया करी,[4] गुर कूं खंध चढ़ाय ।
भाव शुद्ध केवल भजे,[5] नव दीक्षित मुनिराय[3] ॥१०॥
कपिल द्रुमक अति लोभवस, लालच क्रिय लयलीन ।
शुद्ध भाव तवही भज्यौ, आतम पदवी लीन[6] ॥११॥
पनरैसै[7] तापस प्रतैं, गौतम[8] दीक्षा दीध ।
ते केवल कमला वरै, कौन क्रिया तिन कीध[10] ॥१२॥

---

९ १ नट किरिया, २ साधु क्रिया न करी किंचित्, ३ अत्रापिइहां पिण भाव नी आधिक्यता ।

१० ४ पाद नौ चलावणौ तद्रूप क्रिया एतलै साधु क्रिया न करी ५ इहां पिण भाव नी उज्वलता थी केवल पामै तत्काल दीक्षावंत मुनि राज ।

११ द्रुमक रांक नाम कंगाल, नाम भिक्षुक यथा—

"जहा लाहो तहा लोहो,, लाहा लोहो ववड्ढइ ।
दोय मास कणय कज्जं कोड़ीएवि न निट्ठई ॥"

६ पाम्योमुक्ति पदवी लीधी

१२ ७ पनरैसै तीन उपर, ८ गौतम गोत्रीय इन्द्रभूत, ९ ते तत्काल दीक्षित केवल कमला-लक्ष्मी वरै-पामै है ७ ए समवसरण में पोंहचतां सूत्री साधु क्रिया सी कर लीनी, तौ क्रियां नौ स्युं ?

कृत अपराध खमावती, निज गुरणी के साथ।
मृगावती शुद्ध भाव सूं, सिद्ध सुरूप सनाथ ॥१३॥
साध क्रिया कैसें सधैं, घाणी में पीलंत।
शुद्ध भाव तें शिव लहै, खंदक शिष्य महंत ॥१४॥
नाच नचन किरिया करी, साव क्रिया नहीं कीध।
आषाढ़भूतें भाव सुध, सिद्ध सुधारस पीध ॥१५॥

---

१३ पोताना किया अपराध नैं पोतानी गुरणी साथै खमावतीयैं महानिंद्य जातैं केवल लह्यौ ते तिण टाणैं सी साधु क्रिया कीनी? पिण शुद्धभाव सूं सिद्ध स्वरूपै सनाथ पवित्र थई! यथा नाम दर्शयति—

अनृत[1] साहसं[2] माया [3] मूर्खत्वमति[4]-लोभता[5]।
अशौचं[6] निर्दयत्वं[7] च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ।१।

एहवी स्त्रीजात भाव शुद्ध थी सिद्ध थई। तो मोक्ष गमनें भाव नी अधिक्यता छै।

१४ परमेश्वरै इसौ कह्यौ—

"विवहार नयच्छेए तित्थच्छेओ जओ भणिओ।"

तेथी आगल क्रिया नैं थापी छै, पिण घाणी में पीलीजतां अति दुष्कर मुनि करणी ते टाणे सी बणी आवै पिण असाधारण कारण-(निर्मल स्वरूप संबन्धी) भाव शुद्ध थी शिव मुक्ति लहैपामै, खंदक-सूरजी ना पांचसै चेला महंत महात्मा।

१५ नाचनौ नचन नाचवौ तेनी किया ताथेई ताथेई ए क्रिया करी। तेमां साधु नी क्रिया सर्वथा प्रकारे नहीं। तेन कर्ये जआषाढ़भूतैं सिद्धस्वरूपै सुधा अमृत रस पीध-पान कर्युं, तौ ए रीतै सिद्धपणुं पाम्यो।

तेहिज दिन दीक्षा ग्रही, क्रिया कौनसी होय ।
पैं शुद्ध भावै सिद्धता, गजसुकुमालैं जोय ॥ १६ ॥
गुणसागर केवल लह्यौ, सांभल पृथवीचंद ।
पोतैं केवल पद लहै, शुद्ध भाव शिव संध ॥ १७ ॥
सिहण भखै सरीर जव, मुनि करणी किम होय ।
साधु सुकोशल शिव लहैं, कारण अन्य न कोय ॥ १८ ॥

१६ तइयैं क्रिया नो आधिक्यता किम मानी जाय फिरी क्रिया नो किंचत् आधिक्यता हुवै वो तेहिज दिन दीक्षा ने तेहिज दिन मुक्ति; तौ इहां प्रश्न गुप्त छै । हूं तुमनें पूछूं छूं कहोनी तेज दिन में साधु क्रिया सी वणै ? तेथी क्रिया नो स्युं ?

१७ तौ ज्ञान कारणीभूत छै सिद्ध नौ, नें जो क्रिया सिद्धकारका हुवै तो पृथवीचंदै गुणसागर ने केवल ऊपज्यो सुणनैं पौतैं केवल पाम्यो तिहां सांभलण रूप क्रिया थई ते सांभलण रूप क्रिया साधुक्रिया में गुणो तौ भला । नहीं तो साधुक्रिया नौ तौ लेश ही नहीं ।

१८ फिरी कहोनी सिंह शरीर ना मांस प्रमुख ना खंड करी करी नै भक्षण करै तइयें मुनि करणी सी थाय नै ए रीते सुकोशल साधु शिव पांमे तौ मुक्ति पामवा नै अन्य शब्दै भाव व्यर्यारिक्त । कारण, न कोय नहीं कोई । एतलै-व्याकरण वालै अनुभूतस्वरूपाचार्यें विचारी नै ज एह वचन कह्यु यथा- "ऋते ज्ञानान्न मुक्ति" ज्ञानात ऋते नाम ज्ञानाभावे मुक्ति न स्यादितिभावः" एतलै क्रिया न

खंदग खाल उतारता, साधु क्रिया सी कीध ।
भव निवास तज भाव सुध, सिद्ध शुद्ध पद लीध ॥१९॥
ऊपजतौ इक पहुर में, केवल ज्ञान अनंत ।
भाव अशुद्ध तें नवि लहै, श्री दमसार महंत ॥ २० ॥
असंख्यात दृष्टान्त कूं, कौलूं वरणे जाय ।
पै जेते बुधि में चढे, ते ते दीध बताय ॥ २१ ॥

हुवे तो पिण मुक्ति, पिण ज्ञान नै अभावै तो मुक्ति नौ अभाव हीज छै, एतलै असाधारण कारण मुक्ति नौ ज्ञान छै ।

१९ नै जो ज्ञानाभावे क्रिया मुक्ति कारिका हुवे तो खंदग ऋषिनी खालउतारी तिवारै साधुकरणी सी कीधी ? पिण भावशुद्धताथी भव-संसार नौ निवास-वसवो तेज मुंकनै शुद्ध ऊजलौ सिद्धपद लीध=लाधौ

२० नै जो ए नहीं हुवै नाम=भाव शुद्धता मुक्तिकारणीभूत न हुवै तो एक पहुर उपरान्त केवल दमसार महंत महात्मा ने उपजतौ छतो मूल कारणीभूत जे शुद्धभाव तेनें अनुदये नै अशुद्ध भाव नै उदयै निक्केवल निरावरणीय अनंत पदार्थावलोकी केवलज्ञान सर्व ज्ञान मां मुख्य उपजतो रही गयौ, तेथी भावएव मुक्ति कारण ।

२१ न संख्या असंख्या-ऽसंख एवऽसंख्यात, नहीं संख्या गिनती न थाय एतलै गिनती ही न गिणाय तेतला दृष्टान्तो नो वर्णन करता किम पार पामियै, न ज पामियै । तेथी मैं मंदबुद्धि नी बुद्धै चढ्या तेतला बतावी दीधा ।

भाव शुद्धता सिद्ध कौ, कारण तीनूं काल+।
क्रिया सिद्ध कारन नहीं, निश्चै नय संभाल ॥ २२ ॥

२२ तेथी भाव नी सुद्धता तेज सिद्धनूं परम कारणी भूत पणै तीने ही काले छै नै क्रिया सिद्ध नो कारण नथी। निश्चै नय नै स्मरण कर, चितवन कर निश्चै नय अपेक्षायै क्रिया सिद्धकारिका नथी। ×तमे भाव कह्यु ते जगत जंतु नै अनेक भाव नी प्रवृत्ति प्रवृत्ति रही छै केईक स्त्रीजन नूं तदाकारी पणै विषय भावै प्रवृत्ति रह्या छै तिमज दृष्टिरागी छता तदाकार तदगत भावी पणै प्रवर्त्ति रह्या छै इत्यादि भाव नूं ग्रहण इहां नथी। इहां तो जड़ थी भिन्न पणैं आत्मस्वरूप अछेद्य, अभेद्य अविना भावी जे शुद्ध आत्मस्वभाव नूं भावन चितुवन ते भाव नूं इहां ग्रहण छै।

× इहां दोहै में एहवुं—'भाव शुद्धता सिद्ध को, कारन तीनूं काल'—ते जो विचारी नैं जोइयै तो अनादि कालैं अनंता सिद्ध थया ते सर्व ने भाव शुद्धता रूप, मुख्य असाधारण कारण थया, थास्यै ते पिण मूल कारणै सिद्ध थास्यै नैं वर्तमान कालै पिण एज कारणै सिद्ध थई रह्या छै नै सिद्ध नै विषै पिण अनंतज्ञान पणूं छै, अनंत क्रिया पणूं नथी, कां नथी? तो आत्मा नौ ज्ञान लक्षण छै नै क्रिया जड़ नौ लक्षण छै। तेथी दूहाना उत्तर दल में कह्यूं—'क्रिया सिद्ध कारण नहीं' तेहथी निश्चै नयनी अपेक्षायें संभालीनें व जोइये तो क्रिया सिद्ध नूं कारण तीनूं कालै नहीं, तेथी सिद्ध नूं मूलकारणी भूत ज्ञान छै।

ज्ञान सकल नय साधियैं, करणी दासी प्राय।
शुद्ध भावना सिद्ध कौं, कारन करन कहाय ॥ २३ ॥
ज्ञानातम समवाय है, किरिया जड़ संबंध।
यातैं किरिया आतमा, तीन काल असंबंध ॥ २४

२३ तिमज ज्ञान ने नैगमादि सात नयें साधी जोइयै तौ राजा प्राय ग्यान, नैं दासी नाम-बांदी प्राय करणी नाम क्रया, तेथी शुद्धभावन चिंतवन तैं सिद्ध नौ रण कारण छै यथा–असाधारण कारणं कारणं,

कोई इहां इम कहिसी सिद्धांत मां एहवूं कथन छै यथा—ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः तथा "हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणो कया, पासंतो पंगलो दड्ढो, धावमाणोय अंधलो १"एहवू सिद्धान्त मां कथन छै। तइयें कोई इहां इम कहिसी, तूं सिद्धान्त थी विपरीत भाषण किम भाषै छै? तिहां लिखू छूं। सिद्धान्तानुजाइए पिण विवहार नय नी मुख्यतायें ए गाथा नूं कथन छै। तेज आगे दूहाओ मां कथन में पिण कथ्यूं छै। इहां निश्चै नयनी आधिकयता छै।

२४ तेथी ज्ञान छै तेतो अत्मा नै समवाय संबन्ध छै यथा—यत् समवैत कार्य मुत्पद्यते तत समवाय तेथी आत्मा मां मिल्यो छतौ ज्ञान छै क्रिया नौ जड़ थी संबन्ध छै। आत्मा रै तीनै कालें क्रिया थी असंबन्ध छै एतलै आत्मा जेतले ज्ञान गुणें परणम्यो नही तेतले ज क्रियानी मुख्यता मानी रह्यो छै, विचारी नै जोइयै तो इमज छै।

धर्मी अपनै धर्म कूं, न तजै तीनूं काल।
आतमज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल ॥२५॥
प्रकृति पुरुष की जोड़ है, सदा अनादि सुभाव।
भव थित की परिपाक तें शुद्धातम सद्भाव ॥ २६ ॥

२५ धर्मी पौताना धर्म नै न छोड़े, तेथी आत्मा ज्ञानधर्मी, जड़ क्रियाधर्मी नी चाल-रीति न छोड़े। यथा नाम दर्शयति— जे दोहे में कह्या धर्मी अपने धर्म कूं, न तजै तीनूं काल। ते सीतातप वारणरूप पट नूं धर्म, तिम जलावधारणरूप घट धर्म। ए धर्म जेहूं मां रह्या छै तेहू नैं धर्मी कहियै, तेहथी पटधर्मी सीतातप वारण धर्म। न तजै नाम न मेले, नाम न छोड़े। तिमज घटधर्मी जलावधारणरूप धर्म तीनूं काल मां न छोड़े। घट पटो न भवति, पट घटो न वेति वा तिम; तिम आत्मज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल" तेथी आत्मा तीने ही कालें धर्म ने न छोड़े "अक्खरस्स अणंतमो भागो, निच्चूग्घाड़ियो चिट्टई' इति जिनवचन प्रामाण्यात् नैं तिमज जड़ क्रिया धर्म, न मेलै।

हिवै शुद्ध आत्म सुभावी पणुं आत्मा पामै ते रीति लिखैं— कर्म प्रकति नैं जीव नी अनादि सुभावैं जोड़ी छै यथा—कनकोपलवत सोना नी पाषाण नी खान मां जोड़ी तिम जीव नै प्रकृति नी जोड़ी। पछी भव नी थित नो काल तेनी परिपाकावस्था थयें दोष टलै, भली दृष्टी ऊघड़ैं पछी अनुक्रमें शुद्धात्मा नौ छतापणो थाय, रहस्यार्थी— आत्मा, आत्मा स्वरूपवंत थाय।

शुद्धातम सद्-भावता, शुद्ध भाव संजोग।
भाव शुद्ध की सिद्ध ह्वै, पाक काल परिभोग ॥ २७ ॥
काल पाक कारन मिलैं, किरिया कछू न काम।
पातन किरिया विन पड़ै, बाल दसन अभिराम ॥ २८ ॥

२७ ते आत्मा शुद्ध स्यै थी थाय? शुद्ध जे आत्मा स्वरूप नो भाव तेना संयोग थी नाम मिलाप थी ते भाव नी सिद्धता काल पाकां विना नहीं

२८ जिम कालपाक नी सिद्धता थयैं बिना पाडण क्रियायें अभिराम-मनोहर बालक ना दांत पड़ी जाय।

कालो सहाव नियई पुव्व कयं पुरसकारणे पंच। समवाए सम्मतं एगंते होई मिच्छतं १ ए गाथा सर्व नयनी अपेक्षायें जोइये तो ए पांचेई समवाई कारण मिलियां विना कार्य नी सिद्धता नहीं, पिण विचारो नें जोइयैं तो ए पांचेइ कारणो मां मुख्यता काल कारण नी छै। तेथी आनन्दघन सुसाधुअें एहवु कह्यु:—काललब्धि लहि पंथ निहालस्यु" तेथी काल परिपाक मुख्य कारण मिलू जोइयैं यथा—मरुदेवा, दृढप्रहार, भरतादिक ने काल परिपाक कारण नी सिद्धता थी सिद्ध थई नें बीजूं साधु क्रियादि नूं कारण तो कारणीभूत विशेषें न हुंतूं काल पाक कारण मिलै तो विशेषें क्रिया कार्य कांई नथी।

जिम लव सत्तमिया देव नैं ही कालपाक कारण न मिल्यो, नहीं तो केवल पामी ने सिद्धे ज जाता। तेथी ज मुख्य कारण जाणी नें ज गाथा में प्रथम 'कालो सहाव नियई' एहवुं गुंथ्युं।

काल पाक की सिद्ध तें, सहिज सिद्ध ह्वै जाय।
विन वरषा फूलै फलै, ज्युं वसंत वनराय ॥ २९ ॥
भवपरिणति परिपाक विन, भाव शुद्ध नहि होय।
मुनि करणी कर नरक गति, कुरड़ अकुरड़ू दोय ॥ ३० ॥
क्रिया उथापी सर्वथा, वंछक किरिया चार।
पै वंछक लच्चण रहित, सो सब शुध आचार ॥ ३१ ॥

---

२९ तेथी कालपाक नी सिद्धता थयै सहज निःप्रयास सिद्ध नी सिद्धता ह्वै जाय ना० ह्वै ॥ यथा विना वरषा -मेह वारस्यां बिना फूल फलैं सहित एक वृच ही नहीं सर्व वनराय ह्वै ते वनराजी नै फूल फल थावान् कारण वर्षा नें अभावै कां फूल फलै पिण कालपाक कारण मिल्यो तिमज कालपाक नी सिद्धता विना ३२ दिवस तांई स्त्री नैं पुरुष संयोगै पुत्रोत्पत्ति कां न थई नै ३३ मौ १ दिवस तेनैं विषैं पुत्रोत्पत्ति कां थई। पिण पाक काल नौ दिवस मिल्यै सिद्धता थई, इत्यादि केतला एक लिखूं, दृष्टान्त घणा लिखवानै पानौ ओछो।

३०, ३१ तिमज भवस्थिति नौ परिपाक कारण मिल्यां विना अन्य कारण नी सिद्धता नहीं, शुद्ध भाव कारणी नी सिद्धता किहाथी, तेहथीज मुनिकरणी अति दुस्सह प्रवर्तता वेई मुनि नरके कां गया, पिण काल पाक कारण न मिल्यो तेथी मूल कारण ए छै। इहां कोई इम कहिस्यै 'एगंते होई मिच्छत्तं' पिण इहां जे मैं क्रिया उत्थापी ते वांछ सहित क्रिया उत्पती छै। किम वांछा सहित क्रिया निष्फल छै ने वांछा रहित क्रिया शुद्ध आचरण छै

निश्चै सिद्ध जौ लूं नहीं, विवहारें जिय मेल ।
जौलूं पिय फरसै नहीं, तव गुडियां सूं खेल ॥ ३२ ॥

निश्चै हू भी सिध नहीं, विवहारै यँ छोड़ ।
इक पतंग आकाश में, फिर दौरी यँ तोड़ ॥ ३३ ॥

३२ तेथी मूल कारणी भूत जे निश्च तेहनी सिद्धता नहीं तितरै विवहार थी जीव मिलाय, नाम रुचि राख ! क्यु' जितरैं भरतार सूं मिलाप नहीं तितरै कन्या गुडियां सुं खेले, तिम जितरै आतम स्वरूप भर्त्तार नौ मिलाप नाम प्राप्ति न थाय तितरै विवहार रूप जे गुडी-ढूली नौ खेल खेलै ए सदा नी रीत छै । जिम जेतलै सम्पूर्ण अक्षर वांचवानौ ग्यान नहीं तेतलै मात्रा पाठ मां विशेष वृत्तियें जीव रमावें तेहनै अक्षर वांचवौ वहिलो आवै नें जिवारै अक्षर वांचवा रूप कार्य नी सिद्धता थई तदुपरांत मात्रा पाठ भले ना पाठ नौ फेर स्मरण नहीं तिम जेतलै निश्चै स्वरूप नी सिद्धता नहीं तेतलै 'विवहारै जिय मेल' नाम विवहार मां जीव मिलाय, विवहार थी अरुचि मत ल्यावैं, नै निश्चै सिद्ध थयां उपरांत भलेना पाठ नी परैं विवहार नं भूली जाजे जिम भर्त्तार नैं फरस्यां कन्या गूडी नौ खेल भूली जाय तेहथी—'जोलूं घट में प्राण है तोलूं वीण वजाय' एतलै निश्चै नी सिद्धतायें विवहार (नी) वीण वजाय ।

३३ निश्चै नाम आत्मा स्वरूप जड़ थी भिन्न पणै लक्षणे लख-वाथी ए निश्चै हू नाम निश्चै संघातै । भी पुनः सिद्ध नहीं, सिद्धता

जौ लूं भाव न शुद्धता, तौ लूं किरिया खेल।
घाणी जौलूं पील है, तौलूं निकसै तेल ॥३४॥
ज्ञान धरौ किरिया करौ, मन सुध भावौ भाव।
तौ आतम में संपजै, आतम शुद्ध सुभाव ॥३५॥

न थई छै एतलै आत्मा नै ए रीतै जड़ थी न्यारौ निश्चै न कियौ, ते किम? हूँ आत्मा ए जड़। हूँ चेतनधर्मी ए जड़धर्मी, हूँ अविनश्वरी ए विनश्वरी, हूँ अछेद्य अभेद्य एनौ छेद्य भेद्य, ए संसार निवासी हूँ सिद्धवासी, ए जड़रूपी हूँ सिद्धस्वरूपी इत्यादि लक्षणै जड़ थी भिन्नपणैं निश्चै नी सिद्धता न थई। तेहथी पहिलांज विवहार नैं छोड़ी दयै। इहां ए दृष्टांत कै एक तौ पतंग आकाश में नाम हाथे नथी नें फिरि पतंग थी संबंधित जे दोरी तेहनें तोड़ी दीनी तइयें मूल थी पतंग खोयो, तिम निश्चै नी सिद्धता रूप पतंग ते तौ भव-स्थिति परिपाक विना हाथै नथी। नें तेहथी संबंधित विवहार नैं मूकी दयै तो मूलग थां निश्च खोयौ।

३४ तेथी जेतलै आत्मिक भाव सबंधी सिद्धता नहीं तितरे तांई क्रिया नौ प्रवर्त्तन, तेनै खेल प्रवर्त्ततो कहै ए बात साची छै जेतलै तेल न निकलै तितरे घाणी पीलै हीज छै।

३५ ज्ञानधरौ—तेथी अहो भव्य प्राणी तूं मुख्य वृत्तियें ज्ञान नें धारा; ते ज्ञान शब्दें स्वरूप ज्ञान, जे म्हारै जड़ थी सी सगाई इत्यादि चिंतवतौ छतौ क्रिया मां प्रवर्तशून्य ज्ञानी छतौ इकेली क्रिया नो रुचि थईस तौ कोई मुझ जेहवी वंचक क्रियाकार नी क्रिया जाल मां फसी नै तेनौ दृष्टिरागी छतौ मत ममत्वी थई ने मतवादै

जौलूं कारज सिद्ध नहीं, तौलूं उद्यम खेद ।
घट कारज की सिद्धि तें, उद्यम खेद निषेध‡ ॥३६॥
भाव छत्तीसी भविक जन, भावे भज निज भाव ।
निज सुभाव भवदधि तिरन, नई भई सी* नाव ॥३७॥
सर रस गज ससि संवतें, गौतम केवल लीन× ।
किसनगढ़ें चौमास कर, संपूरन रस पीन÷ ॥३८॥
अति रति श्रावक आग्रहे, विरच्यौ भाव संबन्ध× ।
रत्नराज गणि सीस+ मुनि, ज्ञानसार मतिमंद❀ ॥३९॥

॥ इति भाव षट्‌त्रिंशिका समाप्ता: ॥

प्रवर्त्ततौ आर्त्त रौद्र ध्यान म प्रवर्त्तसी तेथी जो क्षमायें, समपरणामी छतो १२ भावना रूप धर्मध्यान थी मन शुद्धे आत्म स्वभाव तेनें भावजे, चिन्तवजे। तो आत्मा नौ शुद्ध स्वभाव आत्मा मां सहिजें निःप्रयासें संपजसी, पामसी।

३६ ‡ घट कार्यरूप उद्यम खेद नौ निषेध, नाकारौ।

३७ * तुरत री हुई।

३८ + गौतम गोत्री इन्द्रभूतें केवल पाम्यौ×दीपमालिका दिनें।

३९ ❀ अत्यन्त रागी जे श्रावक÷नें आग्रह थी विशेषें गूंथ्यौ भाव नौ कथन ‡ शिष्य ❀मंदबुद्धियें।

÷ जैनगरें गोलछा गोत्रे सुखलाल श्रावकें आजन्म जिनमत अरागियें शुद्ध वृत्तें जिनदर्शन आदर्‌यौ। पछी हूं किसनगढ़ आयौ तिवारें समयसार जिनमत विरुद्ध वांचतो सुण ए रची नें मूंकी तेऊए ए वांची नें वांचवू मूंकी दीधूं ॥

जिनमताश्रित आत्मप्रबोध
छतीसी

अथ मंगल कथन रा दोहरा

श्री परमातम परम पद, रहे अनंत समाय[1]।
ताकों हूँ वंदन करूं, हाथ जोर सिर नाय ॥१॥

अथ शुद्धात्मा वर्णनम् ॥ यथाः—

आतम अनुभव अमृत को, जिन जिय कीनौ पान।
ताकौ हौं वरनन करूं, अनुभव रस की खान ॥२॥

अथ शुद्ध स्वरूपी वर्णनम्। यथाः—
सवैया इकतीसा

जाके घट भीतर ज्ञान भान भोर भयौ,
भरम तम जोर गयौ, जागी शुभ वासना*।
काम को निवारी, मान माया कौं उखार डारी,
लोभ क्रोध कौं विडारी, अंदर प्रकाशना ॥
आतम सुविलासी,[2] शुद्ध अनुभौ को अभ्यासी,
शुभ्र रूप[3] कौ प्रकाशी, भासी ऐसी वासना ॥
ज्ञान दशा जागी, पर परणित हू अशुद्ध त्यागी,
ज्ञानसार भयौ रागी करत उपासना[4] ॥३॥

पाठान्तर—*भावना
१ एकीभूत २ स्वरूपचितवी ३ उज्वल ४ सेवा।

सवैया अठाइसा

धर्म कौ विलासी जड़ संग सौं उदासी,
तजी आस दासी आतम अभ्यासी है।
अल्प आहार हारी‡ नैनहू की नींद टारी,
कर्म कला जागी आपा प्रकाशी है॥
प्राणायाम को प्रयासी[१] पंचेन्द्री जय काशी[२]
ध्यान को विभासी ऐसी दशा भासी[३] है।
साधु मुद्रा धारी ध्रुव[४] धर्माधिकारी,
ज्ञानसार बलिहारी शुद्ध बुद्ध सासी[५] है॥४॥

अथ अशुद्ध[६] शुद्धात्मा वर्णनम् यथाः—

सवैया तेतीसा[७]

मुंड के मुंडइया वनवास के वसइया,
धूम्रपान के करइया, अज्ञान विस्तारयो है।

---

‡ आहारी। १ प्राणायाम 'प्राणयम स्वास प्रस्वास रोधनं २ जीत्या छै जिण ३ प्रगटी ४ स्वभाव संबन्धित धर्म ना० लक्षण, आत्म तत्त्वनौ अधिकारी, धारक ५ तत्वज्ञ साहसीक ६ प्राप्त धर्मात् प्रथम अशुद्ध धर्म धारक पश्चात् शुद्ध धर्मप्राप्ति तस्य ७ केई आचार्य इकतीसे सूं सवैये नै कवित्त कहै नै केई छप्पय छंद नै कवित्त संज्ञा कहै नै और

घाम के सहइया भस्म भूर[1] के चढ़इया,
राम नाम के रटइया भ्रम पूर तैं भरयौ है।
ताकौ भ्रम रूप तम भूर[2] दूर करिवै कौं,
आपा शुद्ध ज्ञान भान निराबाध रस वरयौ है।
ज्ञान दशा जागी जब अशुद्ध परणित त्यागी,
ज्ञानसार भयौ रागी समता रस भरयौ है ॥५॥

अथ अध्यातम मत कथन

दोहरा—

जो जिय[3] ज्ञान रसै भरयो, ताकै बंध नवीन[4]।
होंहि नहीं ऐसौ कहै, सो दुबुद्धि मति छीन[5] ॥६॥
सोऊ[6] कहि विवहार में, लीन भयौ ज्यौं जीव।
ताकौं मुक्ति न होंहिगी, सही दुबुद्धी जीव ॥७॥

अथ शुद्ध जिनमत कथन

दोहरा

निश्चै अरु व्यवहार द्वै, नय भाषी जिनराज।
सापेक्षा इक[7] एकसौं, करै जिनागम साक्ष[8] ॥८॥

चौतीसैं तांइ सब नैं सवैयो ज कहै। १ प्रचुर २ समस्त ३ ज्ञानी कौ भोग कर्म, निर्जरा को हेत हैं एहवौ कहै नै जड़ में मगन रहै, ते ऊपर कथन ४ अयोगी अबन्धक ५ तुच्छ ६ समैसार मती कहै ७ अपेक्षा वांछ ८ रहस्य।

अथ निश्चय व्यवहार नयोपरि दृष्टान्त कथन सवईया इकतीसः—

जैसें कोऊ मथानहू की दोऊ दौर अँच रहे,
माखन कूं चहै पै कैसें हू न पइयै ।
दोऊं दोर छोर जांहि तौहू दधि मथै नांहि,
एक अँच एक ढीलै मांखन कौं लहियै ॥
तैसें जैनी ग्रश्न धरैं विवहारैं कथन करैं,
ता वेर निश्चै दोरी छोरी हू न चहियै ।
निश्चै नय कथन वेर विवहारैं न देत घेर,
ऐसें शुद्ध कथन तैं आपा लखइयैं ॥६॥

अथ ज्ञान क्रिया कथन चौपाईः—

जैसें अंध पांगुरौ[1] कोऊ, आंख पाउतैं जर गए दोऊ ।
पंगु खंधधरि अंधक चाल्यौ, आप निकरतैं पंगु निकाल्यौ ॥१०॥
अंध क्रिया अरु पंगु ग्यान, इकतैं सिद्ध न होय निदान ।
ज्ञानवंत जो करनी करैं, मोख पदारथ निहचै वरैं ॥११॥
शुद्ध सरूप धरौ तप करौ, ज्ञान क्रिया तैं शिवगति वरौ ।
एक ज्ञानतैं मानैं मोख, सो अज्ञान मिथ्यामति पोष ॥१२॥

पुनः तदेव मत कथन चौपाईः—

अपनौ[2] शुद्धातम पद जोवै, क्रिया[3] विभावै[4] मगन न होवै ।
मोख पदारथ मानै अैसे, जिनमत तैं विपरीत विशेषैं ॥१३॥

---

१ पांगुलौ २ आपनौ, आपणे आत्मारौ शुद्धपद मारौ आत्मा जड़ सूं भिन्न छे एतलौ मुखें कहै परं सुखमैं दुखमैं सुखी थाय दुखी थाय तइइं कहिवारूप ठहिरयौ तेथी सी सिद्धता ३ आत्म स्वभावाभाव ४ प्रेत

अस्य प्रत्युत्तर कथन दोहरा:—

स्याद्वाद[1] जिनमत कथन, अस्तिनास्तिता[2] रूप ।
ता विन को कैसैं लखै, आतम शुद्ध सरूप ॥१४॥

पुनरपि तदेव मत कथन चौपई:—

जो करता[3] भुगता नहीं मानौं, आतमरूप अकरता ठानौं[4] ।
सुखदुखरूपक्रियाफल हो है, विन आतमफल भुगता को है ॥१५॥

अस्योपरि जिनमत प्रत्युत्तर कथन चौपई:—

करता करम करमफल कामी, भाखी त्रिभुवन जनके सांमी ।
क्रिया करै अकरता मानै, सो जिनमत कौ मरम न जानै ॥१६॥

अथ स्याद्वाद कथन सवईया इकतीसः—

शुद्ध[5] साधु भेष धरै, अवंचक क्रिया करै,
खंत्यादिक दशौं विधि, यति धर्म धारी है ।

की सी पुरी, मधुलेपी सी छुरी । एहवू समयसार वालो कहै छै क्रिया नै । १ स्याद्वदनं स्याद्वाद २ स्यादस्ति नास्ति ।

३ थे जो आत्मा नै कर्त्ता भोक्ता न मानौ तो शुभकर्म तुम्हे क्यूं प्रवर्त्तों छौ । एना शुभ फल नौ, आत्मा नै तौ शुभ फल नो भोग छै ज नहीं तौ शुभ करणी करण जड ताडन नी परै निषद्ध ठहरी । अकारणत्वात् ४ स्थापो, तेथी जैनी नूं प्रश्न, तौ क्रिया क्यूं करौ ५ शुद्ध शब्दैन-'न रंगिज्जा न धोएज्जा' इत्याचारांगे उक्तत्वात्। रक्तश्याम पट

पांचूं महाव्रत धरै, छहूँ काय रक्षा करै,

महा मैले वस्त्रधारी, ऐसे जो भिख्यारी है।

वाय लों विहारी, परीसह सहै भारी,

जीवन की आशा टारी[1] मरण भय निवारी हैं।

ज्ञानानल कर्म जारी, शुद्ध रूप के संभारी[2],

ऐसे ज्ञान क्रियाधारी, सिद्धि अधिकारी हैं ॥१७॥

दोहरा

ज्ञान क्रिया द्वै सिद्ध के, कारण कहे जिनंद।

एक ज्ञान तैं सिद्ध ह्वै, भाषै सो मतिमंद ॥१८॥

ज्ञान क्रियोपरि दृष्टान्त कथन दोहराः—

ज्ञान एकहू सिद्ध कौ, कारण कदे न होय।

एक चक्र रथ नां चलै, चलै मिलै जब दोय ॥१९॥

पुनरपि तदेव मत कथन दोहरा

सदा शुद्ध तिहुँ काल में, आतम कब न अशुद्ध।

हम तुम हैं संसार सो प्रत्यक्ष विरुद्ध ॥२०॥

नौ निराकरण कर्‌युं। १ जीवी आस मरण भय विप्पमुक्के २ प्रत्यक्षकारी।

३ थे सदा आत्मा नै शुद्ध मानौ छौ तौ थांहरै म्हांरै आत्मारै

नाम अध्यातम थापना, द्रव्य अध्यातम छोर।
भाव अध्यातम जिन मतैं, साधैं नाता जोर ॥२१॥

(चौपाई

आतम बुद्धि गह्यौ कायादिक, बहिरातम जानौ अघ रूपक।
काया साखी अंतर आतम, शुद्ध स्वरूपमई परमातम ॥२२॥
सदा शुद्ध जो आतम होय, तौ आतम त्रय भेद न होय[1]।
यातैं सदाकाल नहीं शुद्ध, करम नाश तैं होय विशुद्ध ॥२३॥

पुनरपि तदेव मतोपरि जिनमत कथन दोहराः—

पुद्गल संगी[2] आतमा, अशुभ ध्यान में लीन[3]।
तिती वेर सुध मांनिहौ, सो मिथ्यातम लीन ॥२४॥

पुनरपि तदेव मत कथन दोहरा सोरठाः—

कदे न[4] लागै कर्म, कहै आतमाराम सौं।
इह मिथ्यामति भर्म, बंध मोख है आतमा ॥२५॥

कर्म न लागा हुँत तौ संसार में स्यै कारण थी आवता, तो ए बात प्रत्यक्ष विरुद्ध प्रत्यक्ष प्रमाणाभावात्। तेथी तारौ कीधौ सदा शुद्ध आत्मारूप सिद्धान्त विण विरुद्ध ठहिर्यौ। यथा—आत्मातु पुष्कर पत्र वन्निरुपलेप। कथं? प्रत्यक्ष विरुद्ध वात्।

१ तो आत्मा नौ एक परमात्मो भेद ही ज हुतौ। २ मिल्यौ छतौ। ३ विषय सेवन कालै, हिंसा प्रवर्त्तन कालै।

४ "सिद्ध सनातन जौ कहूँ तौ उपजै विनसै कौन।" पुनरपि—"शुद्ध स्वरूपी जो कहूँ, बंधन मोक्ष विचार। न घटै संसारी दसा, पुण्य

जीव कर्म की जोड़[1], है अनादि सुभाव सौं।
इह मिथ्यामति छोड़, जीव अकर्त्ता कर्म कौ ॥२६॥

अथ अस्य पक्षोपरि जिनमत कथन दोहरा:—

कर्म करै फल भोगवै, जीव द्रव्य कौ भाव[2]।
शुभ तैं शुभ अशुभैं अशुभ, कीने कर्म प्रभाव[3] ॥२७॥

अन्य सर्वमत किंचित कथन दोहरा:—

नित्यानित्य केई कहै, स्वपर तैं केईक।
के[4] ईश्वर प्रेर्यौ कहै, केई कहै अलीक[5] ॥२८॥

यहच्छा केई कहै[6], भूत-मई कहै कोय[7]।
असहाई आतम दरव[8], नित्य अरूपी सोय ॥२९॥

अथ शुद्ध स्याद्वाद प्रवर्तन कथन कुण्डलिया:—

घर में या वन में रहौ, भेष रूप विन भेष।
तप संयम[9] करणी विना, कोई न लखै अलेख[10] ॥
को न लखै अलेख, विना तप संयम करणी।
ज्ञान क्रिया ए दोय, उदधि संसार वितरणी[11] ॥

पाप औतार।"

१ "कनकोपलवत् पयड पुरुष तणी, जोड़ी अनादि सुभाव।" २ स्वभाव ३ कारणैं। ४ ईश्वर प्रेरतो गच्छेत् स्वर्गंवा स्वभ्रमेववा ५ केई कहै ईश्वर प्रेर्यौ कहै सो असत्य ६ केई स्वर्ग जावु आत्मानी इच्छा नरकै पिण।

७ केई कहै आतमा इसौ पदार्थ छै ज नहीं, चेतन सत्ता तौ पंचभूत मई छै। ८ एजैनी नूं वाक्य, सहाय कोई रो नहीं आत्मा द्रव्य रै ९ ज्ञानें इन्द्रियां रो दमन १० अलख ११ नाव।

एक ज्ञान हू मोख, मान कारण क्यों भरमैं।
तप संयम द्रु धरौ, लखौ अनलख[1] घट घर में ॥३०॥

(दोहरा)

घट घर में अनलख लखौ, स्यादवाद तैं शुद्ध।
स्याद कथन विन अलख कौं, लखै कौन विध वुद्ध[2] ॥
रूप लखै कछु वस्तु नहीं[3], अलख लख्यौ क्यों जाय।
स्याद्वाद षटमत भयौ,[4] यातैं प्रगट लखाय ॥३२॥

अथ जिनमत प्रशंसा कथन दोहरा—

जिन मत विन त्रयकाल में, निराबाध[5] रस रूप।
लखै[6] कौन विध आतमा, आतम शुद्ध सरूप ॥३३॥

चन्द्रायणौ—

पूरण पुण्य संयोगे जिन मत पाइयो।
स्यादवाद[7] परसाद, शुद्ध पद गाइयो ॥

---

१ अलख आतमस्वरूप त्रिणै, कालैं न लखाय २ हे तत्त्वज्ञ! कथं?
३ "रूपी कहुँ तो कछु नहीं" ४ सप्तनयाश्रितत्वात्—"षट दरसण" जिन अङ्ग भणीजे" एनलैं अङ्गी जैन दर्शन. अङ्ग छए ही मत।
५ निराबाध नाम व्याबाधा—पीड़ा रहित एहवो छतो आत्मिक-स्वरूप रूप रसें भर्यो। एहवो शुद्धात्मता धर्म स्वरूप नूं लखवुं ६ जाणै ७ जैनाहि स्यात्पुरस्सरं वदन्ति।

स्याद कथन बिन[1] शुद्ध, रहिस को ज्ञांनिहैं।
परिहां या बिन कहि हम जांन्यौ, सो नहीं मानि हैं ॥३४॥

दोहरा—

कोय कहै सब आपनै, मत की करै प्रशंस।
निमता[2] बिन शुद्ध वचन रस, पावै नहीं निरस[3] ॥३५॥
श्रावक आग्रह सौं करै, दोहादिक षट्तीस।
ज्ञानसार दधि सार[4] लौं, ए आतम छत्तीस ॥३६॥

॥ इति श्री आतमप्रबोध छत्तीसी*सम्पूर्णम् ॥

---

१ तेन विना २ निर्ममत्व ३ निर्गतोऽशो यस्मात् स निरंश समस्तेत्यर्थः ४ माखण नी परैं।

* हूं बाहिर बगीची उपाश्रय छोड़ नैं आय बैठो जद श्रावगी कालौ जातैं ऋषभदासैं मनें कह्यु थे सिद्धान्त वांचो तौ दोय घड़ी हूँ भी आवूं, जद मैं कह्यौ हूं तो उत्तराध्ययन सूत्र वांचूं छूं जद तिणै कह्यु समैसारजी सिद्धान्त वांचो। जद मैं कह्यु समैसार जिनमत नौ चोर छै तिवारै कह्यु—हैं! समयसार में चोरी छै तौ मनै दिखावौ तिवारै आश्रव संवर द्वारैं "आसवा ते परीसवा परीसवा ते आसवा" ए सिद्धान्त नूं एक पद ग्रही नें जे चोरी हूंती ते छत्तीसी में कही ते सुणी मगन थइ गयो इति ॥

॥ चारित्र छत्तीसी ॥

(दोहा)

ज्ञान धरौ किरीया करौ[1], मन राखौ विश्राम[2] ।
पैं चारित्र कै लैण कै, मत राखौ परिणाम ॥१॥
जो लौ सो हम पूछ कै, लेज्यौ संयम भार ।
सयम करणी नहिं सुगम, संयम खैंडा धार ॥२॥
चारित विन जो सिद्ध की, करणा पूछै कोय ।
तौ विन चारित सिद्ध कौ, कारण अन्य न होय ॥३॥
यो चारित व्है सिद्ध कौ, कारण सो कछु और ।
औ[3] चारित तौ सिद्ध कौ, बाधक[4] कारन ठोर ॥४॥
तातैं इन चारित की, म धरो मन मैं प्रीत ।
जिन चारित तै सिद्ध व्है, सो नहीं इनमें रीत[5] ॥५॥

---

* जैसलमेरैं सिंघवी जातैं मोतूजीयैं चारित्र लेवानो अत्याग्रह कर्‌यै, ए छत्तीसी रची । पछी जेनी वंचक क्रिया थी परिणाम करता था, तेनो वंचकपणौ आंख्या देखी लीधौ, तेथी चारित्र न लीधो !

१ स्वरूप ज्ञान धरौ, अवंचन क्रिया करौ २ ठाम राखौ

३ आजकाल सम्बन्धी ४ सिद्ध जातां ने रोक ५ आजकालीन मैं

औ चारित[1] सो और है, औ चारित तौ भिन्न ।
दन्त दुरिद[2] देखन जुदे, खाने के सो अन्य ॥६॥

दीसै परगट आप ही, इन उन चारित बीच ।
अन्तर रैनी द्यौसको, उज्वल जल अरु कीच ॥७॥

नारन शुद्ध चारित्र की, कैसैं लहियैं शुद्ध ।
शुद्धातम अनुभौ सदा, आतम गुण अविरुद्ध[3] ॥८॥

शुद्धातम अनुभौ मई[4], ज्यौ सद्भाव[5] विशुद्ध ।
सो चारित इन काल में, पावै नहीं प्रसिद्ध[6] ॥९॥

जो जिन[7] कालै नीपजै, सो उन कालैं होय ।
बिन बरषा बरषामई[8], पादप वृद्ध न होय[9] ॥१०॥

तातै इन कलिकाल[10] मैं, उन चारित की शुद्ध ।
करियै पै कैसे हुवै, जो इन काल विरुद्ध[11] ॥११॥

---

१ आतम स्वरूप प्रत्यक्षकारां, २ द्विरद=हाथी, ३ सामायकादि पांचेही आतम गुण प्रापक ४ शुद्धात्मा नौ अनुभौ बीज तौ रह्यु, पण असे कुण छियै स्युं प्रवर्तियैं छियै, तेइ न दीसै ५ सत्सुभाव ६ आधुनकी चारित्रियां में प्रत्यक्ष तौ न दीसै । नै परमेश्वर नौ वचन छै, पर एहवो तो वचन न छै । चारित्रियो मां ज चारित्र धारयै ते तौ न कह्यु तेथा गृहस्थियो मां हस्यै । ७ चौथे आरै ८ वर्षाकाल सम्बन्धी ९ रूंख वधै नहीं, उगा तौ काइ; इण कालैं सामायकादि चारित्र जीव पावै तौ सही पर सद्भाव विना आतम गुण वृद्धि मणी न थाय । इति सटंक ॥ १० पंचम काल में ११ इण कालैं सामायक

जा पै सीखन जाइयै, चारित कै आचार।
सो आपा भूल्यौ फिरै, संयम को व्यवहार ॥१२॥
तातै नहिं इन काल में, संयम लैनें ठौर।
घर वैठे किरिया करो, म करो दौरा दौर[1] ॥१३॥
पहिली याकौं जानियै, गौतम को अवतार।
आसेवन[2] कर देखियै, अति अशुद्ध आचार ॥१४॥
चौथे आरै की क्रिया, चौथे ही में होय।
पै पंचम में चाहियै[3], सो कैसें नहिं होय[4] ॥१५॥

चारित्र ही शुद्ध भावणो कठिन, ते किम तिहां लिखूं। समइय सामाइयं होई। काल नी विरुद्धता थी मुझ जेहवा संजमियों में प्रत्यक्ष समता परणामी पणो मंद दीसै छै। नै परमेश्वरे कह्युं पामियै। ते निश्चै पामीजै। पर परमेश्वरे पंचमकालीन चारित्रियोने कलहकरा इत्यादि कह्या – वली "अप्पे समणा वहुत्रो मुण्डा।" तेथी कोई हुसी प्रत्यक्ष तो न दीसै। वलि इम पिण छै जे हस्यै ते मुख थी न कहस्यै नें जे एहवूं कहै छट्ठे गुणठाणै प्रवर्तियै छै ते वृथा प्रलापी, निश्चयेन। जैन सम्बन्धी चारित्राचरण चौथे अरै रे काल सूं सम्बन्धित छै अन्य काल सूं नहीं। १ धर्म लूंटल्यूं २ आसमंतात् सेवन। भेला रहि देखीजै ३ वांछियै। ४ मनोवल वचनवल कायवल ना अभाव थी एनो पिण अभाव। कोई कहिस्यै ए कालें पिण, केई तेहथी मिलती सी क्रिया दिखावै छै। तौ कै—ते क्रिया लोकां ने वचवी करणै वा

चौथे आरे की क्रिया, ढूंढै पंचम मांही।
सो कबहूँ पावै नहीं, ज्यूं खग पद नभ मांहि[1] ॥१६॥

लकड़ी ढूंढ़ें आग में, मच्छी पद जल मांहि।
मकरी[2] पद ज्यों जाल में, तीनूं में इक नाहिं[3] ॥१७॥

ढूंढै चारितियां घरे, सयम को खुर[4] खोज।
उवां[5] तौ दीवै ही कीयां, अंधारै की मौज ॥१८॥

पंडित "नारण" सीख दी, आपा[6] पर समझाय।
सुगुणै सब ही जाणवो, आतम बोध[7] उपाय ॥१९॥

मतना प्रवर्तन उद्योतादि निमित्तैं तेथी क्रिया ना कारक कारणै ओघौ अस्त्र वणावी लड़ता जोया छै। उपरिथ में ओघा नी डांड देइ मास्या ते पड़्या जोया छैं। इति सटक ॥

१ पंखी पग आकाश, पुनरपि। २ मकड़ी ३ ए ४ दृष्टान्तो नी परै जैन चारित्र नूं ए कालै अभाव। ४ खुर नाम चारित्र क्रिया नूं खोज प्रवर्त्तन एतलै कोई प्राणी इम चिन्तवै। आज पंचमकाल ना चारित्रियो मां ते चारित्रयो मां चारित्र नूं लेश हीं छै तौ कहै 'नहीं' किम ? तेतो "जियकोहा जियमाणां" इत्यादि गुणे सहित।

५ उवां तौ नाम अम जेहवा चारित्रि नौ चारित्र प्रवर्तन नै ते अनुभौ रूप दीवौ कियां ही सकोही इत्यादि अंधारै री मौज छै।

आपयौं आत्मा नै। ७ स्वरूप नो बोध ज्ञान तेहने।

साधु धरम की सीख दै, करैं धर्म की पुष्ट।
यातौ सीख विचारियै (तौ) करै धर्म सौं भृष्ट[1] ॥२०॥

आपा गुन परगट करन, औ चारित आचार।
आतम बुद्ध विचारियैं, तासौं भिन्नाचार[2] ॥२१॥

आतम गुन परगास कूं, औ चारित रवि रूप[3]।
जो शुद्धातम अनुभवी,[4] आतम शुद्ध सरूप[5] ॥२२॥

या चारित्र अनंत गुन, आतम सगति अखेद[6]।
वरणीजै सिद्धान्त में, सतर भेद दश भेद ॥२३॥

---

१ साधु तौ धरम वृद्धिनी सीख दै, तौतें धर्म शब्दे चारित्र धर्म सूं भृष्ट हौंण री सीख क्यूं दीधी। तिहां लिखूं में आप चारित्र रा चरित्र देखनें साच लिख्यो छै। साच समान धर्म परमेश्वर न मारव्यौ तेथी।

२ स्वरूप प्रापक चारित्र सूं भिन्नाचरणी छै।

३ औ नाम चौथे आरै रो चारित्र आतमरूप प्रकाश नें रवि रूप सूर्य हीज छै।

४ जो नाम जो चारित्र शुद्ध उज्वल आतमा नो अनुभवी चिन्तक छै—स्मृते भिन्न ज्ञानमनुभव।

५ ते चारित्र नथी मानूं। आतम नूं शुद्ध स्वरूप हीज छै।

६ आतमा रे चारित्र रूप गुण स्वरूपें प्रगटवाथी अखेद।

ओ चारित जो पाईयै, सफल फलै तौ खेद[1] ।
उन चारित को खेद सौं, आतम करै अखेद[2] ॥२४॥

उवा संयम विन भेस ज्यौं, बाह्य लिंग की पुष्ट ।
त्तायक भावे ज्यौं हुवै, अंतर आतम दृष्ट ॥२५॥

अन्तर आतम दृष्ट सौं, त्तायक भाव विरुद्ध ।
सो पंचम कालै नहीं, आतम गुण अविरुद्ध[3] ॥२६॥

यथाख्यात चारित्र की, कैसे वरनी जाय ।
अनंतकाल या जीव[4] कूं, एक वेर ही थाय[5] ॥२७॥

सरवविरत प्रति रूप ज्यों, देशविरति अनुरूप ।
गिही जई[6] पै ज्यो हुवै, सो चारित्र अनूप ॥२८॥

नाण दरस पिण जीव कौं, पूरण फल की सिद्ध ।
या विन कवहूँ ह्वै नहीं, सो सब शास्त्र प्रसिद्ध ॥२९॥

आयौ ताहि निभाइयै, नवै न करियै हौंस ।
इनमें कछु नफौ[7] नहीं, देव धरम की सौंस ॥३०॥

हम हूँ तौ अनजान में, लीनौ संयम भार ।
संयम कछू पल्यौ नहीं, आपा भार्यौ[8] भार ॥३१॥

---

१ तौ चारित्र सम्बन्धी जे प्रयास कीजै तौ।
२ कर्मरूप खेद थी ३ अविरोधी ४ जीव मात्र नें ५ चरमावर्त्तन चरम करण भव परिणति परपाकी पणू एु कारणाभावैं ए चारित्र नज थाय। ए कारण जीव नें अनंतकालैं बीजी वार न मिलैं ६ गृहस्थ यती ७ म्हारै चारित्र में नफौ नहीं ८ सहित कस्यौ

तातैं पंचमकाल में, म करौ चारित बात।
घर बैठे संयम[1] धरौ, ज्यूं ही दिन ज्यों रात ॥३२॥
पंचेन्द्रिय कौ जीतवौ, मन राखणौं विशुद्ध।
सो जिनराजै उपदिश्यौ, संयम सदा सुशुद्ध[2] ॥३३॥
सो संयम जौलौं नहीं, तौलौं निष्फल खेद।
बाह्य[3] क्रिया तौ कष्ट है, यह जाणौं ध्रू वेद ॥३४॥
क्रोध मान माया तजै, लोभ मोह अरु मार[4]।
सोई सुर सुख अनुभवी, 'नारन' उतरै पार ॥३५॥
विन विवहारैं निश्चई, निष्फल कह्यौ जिनेश।
सो तौ इन विवहार में,[5] वाकौ[6] नहीं लवलेश ॥३६॥

॥ इति श्री चारित्र छत्तीसी* सम्पूर्णम् ॥

---

१ इन्द्रिय दमन २ सुष्ठु शोभना शुद्ध सुशुद्ध ३ बाह्य कष्ट थी ऊँचूं चढवूं, तेतो जड़नौ भाव। संयम श्रेणि शिखर पर चढ़वूं, ते निज आत्म भाव १ योग क्रिया वलि तेह एहनु १२ भावना में कह्यु छै तेथी बाह्य वृत्ति नी करणी आश्रव भणी छै तेथी 'आसवा ते परीसवा, परीसवा ते आसवा' सिद्धान्तोक्तत्वात् ४ काम ५ म्हारै चारित्राचरण रूप व्यवहार में ६ वाको शुद्ध चारित्रनो।

* जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी मोतू चेनां नन्दलालजी री संवेगण पासै चारित्र लेतीनै निवारी ते करयौं करी।

(जेसलमेर वास्तव्य सिंघवी नन्दलालजी की स्त्री मोतू, चेना संवेगण पासैं दिक्षा लेती कुं योग्य नहीं जाण के निवारण करी, उत्साह दूर करणे कुं तिणकुं समझावण नै ए चारित्र छत्तीसी करी।) (जय० भं०)

मतिप्रबोध छत्तीसी

(दोहा)

तप[1] तप तप (तप) क्यों करौ, इक तप आतम ताप ।
बिन तप संजमता भजी, कूरगड्डूऐ आप ॥१॥
इक तप तैं इक ज्ञान तैं, कारज सिद्ध[2] न होय ।
ज्ञानवंत करनी करै, तौ कारज सिद्ध होय ॥२॥
यथा सकति तप पड़वजै[3], संयम पालै शुद्ध ।
क्यों इत[4] उत ढूंढ़त फिरै, घटमें प्रगट प्रसिद्ध ॥३॥
खंध* चढ़ायें तनय कुं, हेरत फिरी विदेश ।
सुरत भई तब संभयौं, पूत खंध परवेश[5] ॥४॥
खंध चढ़ायै फिरत हूँ, हेरत मत मत देश ।
आतम खोजै आप में, शुद्ध रूप परवेश ॥५॥

---

१ ढुंढक सम्बन्धी कथन २ महा मुनिराज २ आत्मा स्वरूप रूप
३ अंगोकार करे ४ श्वेत रक्त पटियो प्रमुख में ५ प्रवेश ।

* धन्यासरी—ढूंढत हारी रे, सुनियत याहूँ गाम । ढुं०
जिन ढुंढ्या तिन पाइयौ रे, गहिरे पानी पैठ ।
हूं भूंडी डूबत डरी, रहिय किनारे बैठ । ढुं० ॥

आतम खोजैं पाइयै, शुद्धातम को रूप।
तप तीरथ नहीं योगमें, आतम रूप अनूप ॥६॥

है तप तीरथ योग में, शुद्ध आतम कै रूप।
पैं जब है तब ममत बिन, भावै आतम रूप ॥७॥

धरम नहीं मत ममतमें, ममत मांहि तप नांहि।
दया नहीं मत ममत में, धर्म न पूजा मांहि ॥८॥

धरम नहीं जिन पूजना, धम न दया मझार।
है दोनूं में ममत विन, जिन आगम अनुसार ॥९॥

है तप पूजा पुनि दया, मांहि जिनेश्वर धर्म।
निमता विन शुद्ध वचन रस, को पावै मत मर्म ॥१०॥

अपनी अपनी उक्ति की, युक्ति करै सब कोय।
मैं बलिहारी संत की, जो शुद्ध भाषक होय ॥११॥

विरला शुद्ध भाषै वचन, विरला पालै शील।
निर्लोभी विरला जगत, विरला संत सुशील ॥१२॥

(सोरठा)

निर्लोभी विरलाह, निर्कपटी विरला निपट।
क्षमावन्त उच्छाह, वरजै सो विरला प्रगट ॥१३॥

क्या पंचम चौथे अरै, ए विरला ही जोय।
शीतकाल में घन घटा, कोइक वरपै होय ॥१४॥
तैसे निरपेक्षक वचन, अपनी मति अनुसार।
भाषै जिनमत तै विरुद्ध, तसु बहुलौ संसार ॥१५॥
सूत्रऽनुसार कहै वचन, सापेक्षक निरधार।
ते सुधवासी संत जन, ज्ञानसार बलिहार ॥१६॥
भाषै उत्सूत्रक वचन, क्रिया दिखावै कूर।
वाकौ तप संयम सरव, कयौं करायौ धूर ॥१७॥
हम सरिखे इह काल में, क्रिया दिखावै शुद्ध।
पै वंचक करणी जिती, तेती सरव असिद्ध ॥१८॥
निरवंचक करणी करै, सो तौ संवर भाव।
हम वंचक करणी करैं, सो आश्रव सद्भाव ॥१९॥
किरीया वड़के पान ज्यौं, भाखी त्रिभुवन सांम।
स्वतारक वंचक विना, वंचक[1] सो निकांम ॥२०॥
निरवंचक करनी करै, ज्ञान गुणै गम्भीर।
बलिहारी उन संत की, सम दम सरल सधीर ॥२१॥

१ वंचन

ज्ञान क्रिया दो सिद्ध कै, कारण कहै जिनंद।
एक एक तै सिद्धता, भाषै तो मतिमंद ॥२२॥
क्रिया करै संयम धरै, निरविकार निममत्त।
भाखै सापेक्षक वचन, हुँ बलिहारी नित्त ॥२३॥
आतम अनुभौ के रसिक, ताकौ यह स्वरूप।
ममत छोर निममत कहै, जिनमत शुद्ध स्वरूप ॥२४॥
जे ममत फन्दे फंसै, ताकै बन्ध नवीन।
होंहि नहीं कैसे कहै, जे मत ममत प्रवीन ॥२५॥
मारे मत के ममत के, करै लराई घोर।
जे अपने मत में नहीं, कहै जिनागम चोर ॥२६॥
पै कठोरता कौ वचन, कासौं कहिनौ नाहिं।
विना ज्ञान शुद्ध असुध मति, कैसेहू न कहाहिं ॥२७॥
तूं काहू सै कठिन अति, वचन कहित्त क्यों वीर।
विना ज्ञान को जान है, कैसौ जिनमत * वीर ॥२८॥
केइ जीव दयामती, पूजमती केईक।
निर ममत्तता कौ वचन, कौन कहै तहतीक ॥२९॥
यातै कैसे पाइयै, जिनमत शुद्ध सरूप।
जिनमत विन कैसे लखैं, आतम रूप अनूप ॥३०॥

---

* यति जिन वीर।

आतम शुद्ध सरूप कौ, कारण जिनमत एक ।
हम सै भैंसे भेष धर, कीच कियौ इक मेक ॥३१॥

परभव डर सूं है निडर, भव सब दिनौ डारि ।
खयै सीस पट डार कै, निरभय खेलै नारि ॥३२॥

आतम शुद्ध सरूप बिन, कैसे पावै सिद्ध ।
किन बिन कारण कार्य की, पाई भाई सिद्ध ॥३३॥

यातै मत धर संग तैं, धरम रूप ज्यो रत्न ।
कैसे हू नहिं पाइयै, कोटि करौ को यत्न ॥३४॥

यातै घर बैठे करो, आतम निंद्या आप ।
सम दम खम की खप करौ, जपौ पंच पद जाप ॥३५॥

एहि जिनमत कौ रहिस, दया पूज निममत्व ।
ममत सहित निफफल दऊ, यहैं जिनागम तत्त्व ॥३६॥

मतप्रबोध षड्त्रिंशिका, जिन आगम अनुसार ।
"ज्ञानसार" भाषा मई, रची बुद्ध आधार ॥३७॥

॥ इति मतप्रबोध छत्तीसी समाप्ता ॥

———

संबोध अष्टोत्तरी

अरिहंत सिद्ध अनंत, आचारिज उवझाय वलि।
साधु सकल समरंत, नित का मंगल नारणा ॥१॥
परमातम सूं प्रीति, कहो किसी पर कीजियै।
वीतराग भय वीत, निभै केण विध नारणा ॥२॥
सूतौ कांय सचेत, भयो प्रात भगवंत भज।
चिडीया कीनो चेत, नहीं रैण अब नारणा ॥३॥
सूतां समर्यौ नांहि, जाग्यां धंधे सु जग्यौ।
मातो ममता मांहि, निरंजन भज्यौ न नारणा ॥४॥
आवै कदे न याद, मरणो सगलां ज्यूं मनैं।
इल सूनौ आबाद, नहीं खबर तुझ नारणा ॥५॥
छाया मिसें छलेह,, काल पुरष केडै पडयौ।
ज्वान बाल बृद्ध जेह, नितका निगलै नारणा ॥६॥
इल में कौन इलाज, नहीं कला ओषद नहीं।
अड्यो काल अहिराज, न बचैं काया नारणा ॥७॥
छिन छिन छीजै आय, पांणी ज्युं पुसली तणो।
घड़ी घड़ी घट जाय नित की छीजण नारणा ॥८॥

पुरस जिकै परभात, दीठा तो दीसै नहीं।
विषम कालरी वात, न कही जावै नारणा ॥ ९ ॥

जणणी जाया जाय, जाया फिर जणणी हुवैं।
मर पिय थायैं माय, नातौ अनियत नारणा ॥१०॥

नहिं जोन नहिं जात, नहीं ठाम फिर कुल नहीं।
जोबन फरस्यौ जात, न मुंआ जाया[1] नारणा ॥११॥

जूपै दीवै जोत, सब घर मैं संध्या समै।
उदयो अरक उदोत, न रहैं तम जग नारणा ॥१२॥

गुड़ै तबे गाडाह, धोरी जब जूपै धवल।
पलटै दे पाडाह, न चलैं इक पग नारणा ॥१३॥

मुड़ै न मोड्यौ मूल, मृगपति मारग मालतौ।
अजा रहे न अडूल, नर बुधकायो नारणा ॥१४॥

मुगता चुगै मराल, गंडसूरा विष्टा भखै।
लिखिया अंक लिलाड, न मिटै मेट्यां नारणा ॥१५॥

वडपण तजे वडाह, जगमें नर क्यूं कर जीयें।
उफलै उदधि अथाह, नित परलौ[2] हूवै नारणा ॥१६॥

---

१ जनम्या २ प्रलय

अगनी देत उलाय, पांणी एक पलक में।
लागी वडवा लाय, न बुझै जल सूं नारणा ॥१७॥
वांनर तणो विनोद, कदे न कीधो कांम रौ।
प्रगटै नहीं प्रमोद, नीच लडावण नारणा ॥१८॥
ऊंडौ उदधि अथाह, थाग न पावें तेरुआं।
राजवियां रौ राह, नर कुण जाणैं नारणा ॥१९॥
धन गाडै घर[1] मांहि, खरचैं नहीं खावण निमत्त।
ममत लीयै मर जाहि, न दिये कोडी नारणा ॥२०॥
दोय कला हूवैं दोज, वलि दिन दिन वधती वधै।
सरवर हसैं सरोज, निसपति दीठैं नारणा ॥२१॥
पावक तजै न पांण, सो बरसा जल में सड़ै।
मूरख तजै न मान, नित्त अधिको ह्वै नारणा ॥२२॥
बाजीगर बाजार, दुनियां सघलां देखता।
नर सूं करदै नार, निजर बंध कर नारणा ॥२३॥
सीयाले अति सीत, पालो घण ठंठर पड़ै।
प्रांणा[2] करै धरि प्रीत, न मरें दूमर नारणा ॥२४॥
जल में वैठ जहाज, पर दीपैं पेरैं पवन।
करै मरण रौ काज, न मरें दूमर नारणा ॥२५॥

---

१ घर २ पांण

अति दुर्गन्ध आहार, बरतै वलि मैला वसन ।
मूत पियै मन मार, न भरे दुभर नारणा ॥२६॥
विण खेवटियें वाय, चाल्यां नाव न चालवैं ।
कारण का ज थाय, नीत जगत में नारणा ॥२७॥
करिवर केरो कान, तरल पूंछ तुरियां तणी ।
पीपल केरो पांन, निचल्या रहै न नारणा ॥२८॥
मरै न मेलै मांन, बाबहियौ जलहर विणां ।
पडौ रहौ वा प्रांण, न पियै धर जल नारणा ॥२९॥
सब संसार असार, सार नहीं जिण सोधतां ।
भरिये दुख भंडार, नहीं सुख खिण नारणा ॥३०॥
कटारी रो काम, कद होवै किरपांण सूं ।
नगपति हंदौ नाम, न रहै गेडा नारणा ॥३१॥
जण जण आगैं जाय, रात दिना रीरी करै ।
कवडी मिलै न काय, निरभागी नै नारणा ॥३२॥
कीनौ होय कुकांम, सो भोगवतां सोहिलौ ।
विण कीधे बदनांम, नित डर लागे नारणा ॥३३॥
हड़ हड़ जिहां हसंत, पुरस तियां बैठी प्रबल ।
नागो होय निचंत, निरलज जाणौ नारणा ॥३४॥
मारग में मिलियांह, बनता बतलावै मति ।
गूभीली गालयांह, निमष न मेलै नारणा ॥३५॥

भोला भैंस तणाह, भेडां सूं भांजै नहीं।
घन विण अरट वणाह, न भरै सरजल नारणा ॥३६॥
उद्यम विहूणी आथ, आफे घर आवै नहीं।
धोण धम्यां विन धात, न गले कदे न नारणा ॥३७॥
कांणी निपट कुरूप, कलहण कुटल कुलछणी।
इस्यौ पुरुष अनुरूप, नहीं पाप विन नारणा ॥३८॥
कीडा परै कपाल, नासा ईलड नीसरै।
कठै फिर कंठमाल, नहीं पाप विन नारणा ॥३९॥
ताता चढण तुरंग, भांत भांत भोजन भला।
सुथरा चीर सुरंग, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४०॥
आदर करै अपार, जन सगला जी जा करै।
अति सुन्दर आकार, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४१॥
अति ऊंचा आवास, चतुर चितेरे चीतरया।
अवल उजल आरास, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४२॥
निपट निरोगी काय, पान खान सब ही पचै।
अति लम्बी हुवै आय, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४३॥
पूत घणो परिवार, सानुकूल सुन्दर सहू।
निपट कह्यौ में नार, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४४॥

बोले ऊंचा बोल, नीचो कद ताकै नहीं ।
रात दिना रंगरोल, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४५॥

घडिम तुले घडियांह, गिणिया जावै नहीं गिणिम ।
जविहर घर जड़ियांह, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४६॥

लाखैं ग्यांनै लोक, कर जोड़ै आस्या करै ।
सदा सुखी नहीं सोक, नहीं पुण्य विन नारणा ॥४७॥

आटो देवै अन्न, घृत मीठो देवै घणा ।
कैइक इसा कृपण, नहिं दियै दाणौ नारणा ॥४८॥

सुख बूझवै सुजाण, अति दुख हूंत अयांण नैं ।
पढियौ क्युंक पुरांण, नर समझै नहीं नारणा ॥४९॥

सिंह सदूला साथ, नाथां भर झूझै वलि ।
भोग करम भाराथ, न हुवै किण सुं नारणा ॥५०॥

माया मिलै न मूल, काया सौ कसखैं कस्यौ ।
अंक लिख्या अणहूल, निहचै जाणौ नारणा ॥५१॥

ऊगै सूरज एक, लाखै गांनै लोयणा ।
निरख्यो जाय निमेप, नहीं तेज सौ नारणा ॥५२॥

पहरीजै पर प्रीत, खाइजै अपनी खुशी ।
राखीजै ए रीत, नित का सुख व्है नारणा ॥५३॥

करिवर कुंभ प्रहार, सींह जण्या सिंहण करै ।
नर जनम्यां सुर नार, न धरे धर पग नारणा ॥५४॥

आरत न करौ एक, रातै भूखौ ना रहै ।
परभातैं भर पेट, नहीं दुक्ख अब नारणा ॥५५॥

अब फाटौ आकास, कहि कारी कैसी करां ।
प्रकट भिखारी पास, नरपति जाचैं नारणा ॥५६॥

इक नरपति इक नार, स्वास्थ रा दौनूं सगा ।
विण स्वारथैं विगार, न करैं संगति नारणा ॥५७॥

नरपति हंदौ नेह, स्वारथ विण श्रवणै सुण्यौ ।
दीठौ किण धर देह, नहीं जगत कहि नारणा ॥५८॥

नरपति तणो निराठ, आसंगो आछौ नहीं ।
विसमांयारी वाट, न्यारौ पैंडौ नारणा ॥५९॥

नीचां तणौ निभेप, संगत न करै साधु जन ।
दीठौ नहिं तौ देखि, नाहर गाडर नारणा ॥६०॥

संपति विण संसार, मानै नहीं मणीस नै ।
परत न लाभै प्यार, निरधन सेती नारणा ॥६१॥

बगला ज्युं अणबोल, मौनी हुय मांणस रहै ।
मन में दया न मूल, निकमौ सगलौ नारणा ॥६२॥

निकसी पर घर नार, फिरत न लागै फूटरी ।
विसनैं लहै विगार, नीच संग सूं नारणा ॥६३॥
पर नारी सूं प्रीति, कीधी कदे न कामरी ।
और न इसी अनीति, नित डरतौ रहै नारणा ॥६४॥
भरियै पेट भंडार, भूनौ ही लागै सुवस ।
अण कीधे आहार, नहीं वनती जग नारणा ॥६५॥
मत वतलावे मूल, मूरख सूं मतलब विना ।
मरम न कहि मां मूल, निकमौ जाणै नारणा ॥६६॥
राजा रांमा रंग, बादल सु विणसै वणै ।
समझी करज्यौ संग, निज मन सेती नारणा ॥६७॥
आवै आथ अखेद, मुकती सकजां माणसां ।
निगुणा और नखेद, न मिलैं किम ही नारणा ॥६८॥
कुंजर तणौं कपाल, घण मोला मोती घणा ।
मुगताफल गलमाल, न मिलै पहिरन नारणा ॥६९॥
चितारौ चित्रांम, कवियण घण कविता करै ।
ठीक नारकी ठांम, निहचै जासी नारणा ॥७०॥
दीधौ जाय न दांम, भ्रम कारण धन मांगतां ।
नांवणियारै नांम, नहि नाकारौ नारणा ॥७१॥

नीचा नेह निवार, वैर न कीजै विविध विध।
ऊनौ दहै अंगार, नहीं श्याम रंग नारणा ॥७२॥
आरतिवंत अखेह *, तिन सूं दिल नहि तोडियैं।
दीजैं धीरज देह, नरपण कहिठै नारणा ॥७३॥
सुगणां तणो सनेह, नित नित नवलौ नीपजैं।
निगुणा हंदौ नेह, निभै न कीनौ नारणा ॥७४॥
आथ तणौ अहंकार, कदै न कीनौ कांम रौ।
रावण रौ परिवार,† न रह्यौ राख्यौ नारणा ॥७५॥
संपद तणौ सनेह, कीजै छै पिण कारमौं।
छेहडै देसो छेह, न चलै साथै नारणा ॥७६॥
आवै आपणै गेह, देखंतां दोड़ी मिलै।
तत सगपण रौ तेह, निकमौ दूजो नारणा ॥७७॥
सुन्दर रूप सुहात, मन मेलौ§ महिला मिलै।
कुलटा कुलज कुपात, निजर न मेलै नारणा ॥७८॥
आरतिवंत अयांण, सरखा दोनूं समझियैं।
पर दुख री पहचान, निपट न होवै नारणा ॥७९॥
संपद तणौ सनेह, विण संपद में विणासियैं।
निरधन हंदो नेह, न मिटै कदे न नारणा ॥८०॥

* अछेह † घरबार § मेलू

पंडित सु अणप्यार, मूरख सूं मनिकरि मिलै ।
उलटौ जस आचार, निमष न मिलै* नारणा ॥८१॥
प्यार करै अणप्यार, कपटै मन मैलौ किसन ।
नित प्रति संग निवार, नीच जांण नै नारणा ॥८२॥
हाथी हूंत हजार, लाख पाथ गरि लौंडतैं ।
लंपट और लवार, न करै संगति नारणा ॥८३॥
मरम न भाखैं मूल, परहरि निंद्या पारकी ।
सोवै साथर सूल, न हुवै दुख किम नारणा ॥८४॥
फटकैं थोथो फूस, उड़ी जाय आकास में ।
सांच कहूँ करि सूंस, न मिलैं कण इक नारणा ॥८५॥
मोटा पेटां मांहि, राखैं जो सोई रहै ।
सरभी पेट समाय, नव मण नीरचो नारणा ॥८६॥
बैठे घर बे हाथ, ऊठंतां आलस करैं ।
भाजै देख भराथ, न रहै अधखिण नारणा ॥८७॥
बसियैं जिण रे वास, तिन सूं कदे न तोडियै ।
अणबणियैं आवास, नां रहि सकीजै नारणा ॥८८॥
हांसा मांहि हजार, कोइ क्यु कवचन† कहौ ।
विरचैं मन जिणवार, न सुणैं एको नारणा ॥८९॥
हाथ्यां हाजर होय, नव मण बांध्यौ नाज नित ।
लिखियौ पावैं लोय, न घटै रती न नारणा ॥९०॥

---

* मलिजै † कुवचन

अमल न कीजैं एक, नफौ मूल जिण में नहीं ।
छीजैं काया छेक, निजरां दीसैं नारणा ।९१॥
सुवरण तणों सुमेर, अलगौ कीधौ ईसरै ।
हरता संपद हेर, न कियौ नेडौ नारणा ॥९२॥
काचौ काया कुंभ, फोड्यां विण ही फूटसी ।
आउ अंजली अंभ, नित पूरौ ह्वै नारणा ॥९३॥
काया किणरे काज, मूआं सूं माणस तणी ।
निरखो निपट निकाज, नरकी काया नारणा ॥९४॥
हियड़ां मांही हेत, झाख्या विन न पडै झलक ।
दिल दिखलाई देत, नयणां देख्यां नारणा ॥९५॥
कागां तणा कपाल, क्या मे ज्यां* ही कूटवै ।
नारण सिहअख्याल, निरख्यां थिरके नारणा ॥९६॥
नैनां हंदो नेह, कीजै नहीं कुमाणसां ।
सपुरस तणौ सनेह, नित को कीजै नारणा ॥९७॥
निगुणौ अपणौ नाह, सांमी दुख्य न सास है ।
चाहै विण रौ चाह, निकमां तोनूं नारणा ॥९८॥
अपजस हूआं आथ, होम्यां वर तीरथ हुवैं ।
सरग मूआं रे साथ, निहचै निकमा नारणा ॥९९॥
नीचां हंदो नेह, खारतणी खेती खड्यां ।
विण रित बरस्यौ मेह, निपट निकांमा नारणा ॥१००॥

---

* क्यामेल्यां

सबलां सूं संसार, दाख्यां विण आफे डरै ।
पुण्य तणौ परकार, निभरम जांणौं नारणा ॥१॥
सबला तणो सनेह, निबला सूं सोहै नहीं ।
जविहर लोह जड़ेह, निंदै कुण नहीं नारणा ॥२॥
लंपट चोर लबार, कूट्यां ही कारज करै ।
गूजर ढोल गंवार, नवि कूट्यां विन नारणा ॥३॥
वडौ अरोपै वंस, चटकै सै नटनी चढै ।
हद सुधौ भयहंस, न भरै दूभर नारणा ॥४॥
आयां आऊंकार, जान कहै घर जावतां ।
नित कौ संग निवार, निकमौ जांणौं नारणा ॥५॥
नीर न्याव इक रीति, मोडै ज्यूं त्यूं ही मुड़ै ।
न गिणैं नीति अनीति, नरपति लूंटै नारणा ॥६॥
स्वारथ तणौ सनेह, विण स्वारथ मैं विणासियै ।
नांचणिया रौ नेह, नांणैं बावै नारणा ॥७॥
हृदयैं ऊपजी रीझ, अट्ठारै अट्ठावनैं ।
जेठ सुकल तिथ तीज, निरमी 'खरतर नारणा ॥८॥

इति श्री संबोध अष्टोत्तरी कृतिरीयं ज्ञानसारस्य
संवत् १९४१ वर्ष मिती आषाढ़ सुदि ७ रवि
शुभं भवतु । लिपिकृतं ब्राह्मणगौड काशीनाथ
नैनसुख । नागपुर नीवासी लिखतं नगर
रतलाम मध्ये समाप्त क० ॥

प्रस्ताविक अष्टोत्तरी

आतमता परमात्मता, लक्षणतायैं एक ।
या तैं शुद्धातम नम्यैं, सिद्ध नमन सुविवेक ॥१॥
निष्पृह राजा रङ्क सौं, बात करत न दबात ।
नगन पुरस सौं पुरस सौं, लूंट्यौ कब न सुनात ॥२॥
मन निसल्य आलोवतां, सब अपराध समात ।
ज्यौं कांटे की वेदना, निकसत टुक न रहात ॥३॥
जो निसदिन खायैं पियैं, वाकौं बाकी भूंप ।
जैसैं अपने देस की, लागत चाल अनूप ॥४॥
बरषा जल मरु देस सब, ऐंचत अपनी ओर ।
जैसैं टूटे पतंग की, लूंटत सब जन डोर ॥५॥
मोल लियत दिख्या दियत, संयम कहा पलात ।
ज्यौं संध्या के मृतक कौं, कोलौं रोवत रात ॥६॥
त्रिकरण करत सुसिद्धता, कहा जंत्र अरु मंत्र ।
विना वृषभ चाले नहीं, ज्यौं गाडी कौ जंत्र ॥७॥
प्रगट करत गुन गुनिन कौं, बसत दूर तर वास ।
अंगुरी तैं निरखाबही, ज्यौं तारे आकास ॥८॥

साधु संग विन साधु जन, न करैं दुष्ट प्रसंग ।
मीन सरल जल कुटल गति, उछलत तरल तरङ्ग ॥६॥

पिंगल की कवितान में, डिंगल कोन अमेज ।
तारिन में कबहु न हुवै, चंद किरन सौ तेज ॥१०॥

पहिली सोच विचार कै, कीजै कारज खेद ।
पी पांनी बूझै कहा, होत जात कै भेद ॥११॥

पाछैं पिछतावा कियैं, गरजन सरिहैं कोय ।
मूंआ फिर नहीं आवही, क्या सोचैं क्या रोय ॥१२॥

आयु डोर विन तनु गुडी, उडै न धर पर जात ।
जैसें टूटी डोर कौ, पतंग हाथ न रहात ॥१३॥

सला लियत कारज करत, सो कबहू न ठगात ।
सीसा गलतल नींव कौ, कब प्रासाद डिगात ॥१४॥

अनुकंपा दांनैं दियत, कहा पात्र परखत ।
सम विसमी निरखै नहीं, जलधर धर वरषंत ॥१५॥

विना चाहै सब ही मिलैं, चाहै कछु न मिलैत ।
बालक मुख जोरावरी, माता माता देत ॥१६॥

जोलौं मुरदा ना जलैं, तौलौं मृतक विराग ।
ज्यौं सुपने की वेदना, तौ लौं न हुवत जाग ॥१७॥

माता करै आहार कौं, बालक पोष लहंत ।
ज्यौं खिचड़ी मैं ढोकली, बाफ हुतैं सीजंत ॥१८॥
अति सीतल मृदु वचन तैं, क्रोधानल बुझ जाय ।
ज्यूं ऊफणतै दूध कूं, पांनी देत समाय ॥१९॥
मत मन वृत गति अति चपल, निष्पृह तैं ठहिगात ।
ज्यौं सद ओषध जोग तैं, चंचल हू जमजात ॥२०॥
क्रोध वचन क्रोधी धुखै, मुनि सुनि शीतल होय ।
ज्यौं मूंसे बुलगार के, अगनैं जरत न कोय ॥२१॥
रोचक बुद्धैं सरल नर, एक सुनैं गुर वैन ।
सीप पुटैं मोती हुवैं, स्वात बूंद तैं ऐंन ॥२२॥
धन धर निरधन होत ही, को आदर न दियंत ।
ज्यौं सूकै सर की पथिक, पंखी तीर तजंत ॥२३॥
बंधे करम जिन जोव नैं, उदयैं आवत ताहि ।
ज्यौं सौ गौ में बछरिया, चूंखत अपनी माय ॥२४॥
पीछे प्रथम न प्रकृति जिय, है अनादि कौ मेल ।
सदा सजोगैं मिल रही, फूल सुवास चंपेल ॥२५॥
आतम रूप उदोत तैं, मोह प्रकृति खय जात ।
ज्यौं अंधियारी रैन कौ, दीपक विनन घटात ॥२६॥

गुर कुल वासैं वसत मुनि, चूकत ही ठहिरात ।
देत धधूनीं पतंग कूं, गोत खात रहिजात ॥२७॥
ज्ञान क्रिया दो मिलत ही, सिध कारज सिधु हुँत ।
ज्यौं भरता संयोग तैं, सचि तय गरभ धरंत ॥२८॥
अनुपूर्वी के जोग जिग, ऊंच नीच गति जात ।
जैसैं पवन प्रयौग तैं, चिहुँ दिस धजा फिरात ॥२९॥
वरजत हूँ केवार हूं, संग न कर परनार ।
तूं रावण दृष्टांत लखि, बूझत क्यों न गिवार ॥३०॥
चाहत सोई मिलत तव, या सम खुसी न और ।
मेहागम धुनि गरज सुनि, ज्यौं चित हरषत मोर ।३१॥
राव रंक कुं सम लखै,* तिल न हरप मन कुंद ।
ज्यौं चिकणे घट पर कछू, ठहिरत नहिं जल बुंद ॥३२॥
जैसी देखत कुटल तक, तैसैं जीभ फिरात ।
दोर सहारै हाथ कै, ज्यौं चकरी छुटजात ॥३३॥
अंगी जेते आंख विन, सहै अंग को भार ।
विन काजल फीके लगै, सोरै तिम सिंगार ॥३४॥
ह्वै सुनिजर तब चौ निजर, (तू?) नृपतै अरज करांहि ।
पतरी वदरी तैं अरक, मुख सनमुख निरखांहि ॥३५॥

* बिगौं

पराधीन जाकै जऊ, झूठ कहै सो सांच।
ज्यौं वाजन की गति वजत, नचति ताल पर नाच ॥३६॥

सिसु जनमत माता मरत, फिर अधार न रहात।
हींडा टूटै गगन तैं, नर धर पर परै जात ॥३७॥

राज सेव तैं राज की, सेवा रीत लखाय।
शब्द साधना विन सधै, सवद अरथ न कराय ॥३८॥

तीखी चितवन चितवनैं, राग विरागी दीठ।
तिय रागैं माता लखै, राग निजर कर पीठ ॥३९॥

काज अकाज न लोभ वस, गिनत न दुख संताप।
ज्यौं द्विज पइसा दांन तैं, मोल लियत पर पाप ॥४०॥

नव पल्लव वनराय सव, विन जलधर हो नांहि।
सघन सदल बादल करै, ज्यौं परवत की छांहि ॥४१॥

रोस पोस नरपति वदति, अनुचर जाव न होय।
सूर उदै अति मंद दुति, ज्यौं ससिधर दग जोय ॥४२॥

खल ते सौ उपगार कर, मांनत नहि इक सोय।
विसहर दूध पिलाइयै, सोइ विषमय होय ॥४३॥

मन फाटै कूं मृदु वचन, कह्यौ करन उपचार।
टूक टूक कर जुडन कूं, टांका देत सुनार ॥४४॥

जठरागनि दीपति हुवति, भूख लगत तिहवार।
करत जुड़ाई मां गहै, कैडां किये करार ॥४५॥

रकम टूक कर लाभ लखि, टुक टुक सौदा लेत।
रिजगारी दरजी करत, ज्यौं सीवन के वैंत ॥४६॥

कोन दीयत काकूं कछू, करत पुण्य की भेट।
सरिता ज्यांनैं समद कौ, हम तैं भरिहै पेट ॥४७॥

जी अचेत चेतत नहीं, छिन छिन छीजत आव।
इक रंग पल ठहिरै नहीं, ज्यौं लोहै का ताव ॥४८॥

तपधन चारित पडिवजै, आतम निरमल होय।
ज्यौं मैले वसनैं करत, धोवी ऊजल धोय ॥४९॥

डाकी डाकण पुरस तिय, प्रगट निजर नहि दीठ।
अति सुंदर सिसु वदन पर, दिखैं दिठौना दीठ ॥५०॥

लगै प्रथम सच वचन कडु, अंति गुणनि कै हेत।
ज्यौं माली जावा दियैं, तरु निरोग संकेत ॥५१॥

उदर भरन कारन सकल, गिनत न काज अकाज।
चेजै पर तूटत परत, ज्यौं तीतर पर वाज ॥५२॥

लघु मुख मोटी वात तैं, नफौ न देख्यौ आंख।
मरणुपकंठै आवही, ज्यौं चींटीं कै पांख ॥५३॥

रंक पुरस रिझवार तैं, कहा कटै दुख फंद।
ज्यौं सूकै सर पर पथिक, पावत नहि जल बुंद ॥५४॥

फाटा चीर सिवाइयै, रूठा लेहु मनाय।
गोतै खाते पतंग कौं, जिझकी दियैं बचाय ॥५५॥

बात बात सब एक है, बतलावण में फेर।
एक पवन बादल मिलै, एकैं देत बिखेर ॥५६॥

चीटी चीटी लरत तउ, दीजै मुकर छुड़ाय।
अगन कणीं कौ लघु कहा, सब* बन देत जलाय ॥५७॥

मन अन्तर की प्रीत कौं, नैंन दिखाई देत।
घनमाला की साख कौं, बनमाला ज्यौं हेत ॥५८॥

बड़ै पुरस दुरवचन सुन, सुलट पलट दै मेट।
भर्यौं कुंभ झलकै नहीं, आधा झलकै नेट ॥५९॥

दोही कैते तरक की, बात करत धर झांख।
इत उत दोऊ दिस लुटत, ज्यौं कउऐं की आंख ॥६०॥

मूरखता मन घन मिटत, ह्वै सदगुर संजोग।
चंचल चंचलता घटै, ज्यौं सद औषध जोग ॥६१॥

मुगध लोक हेरत फिरत, सोना रूपा सिद्ध।
लोभ दसा मनसा मिटत, नव निध ऋद्धि समृद्धि ॥६२॥

---

* घन

शब्द न्याय अलंकार धन, सबही करत अभ्यास ।
पै परमब्र की सिद्धता, न करत ताहि प्रयास ॥६३॥

झूठी माया जगत की, पकड़ी‡ साच समाज ।
कबहु न हुय फल सिद्धता, ज्यौं सुपनैं का राज ॥६४॥

तनु सुभाव कबहु न जुदे, जीव भिन्न हो जांहि ।
ऊख सुभावै मिष्टता, ह्वै कटु रस कब नांहि ॥६५॥

तीछन रुचि करतेग विन, मोह दुरंडन होय ।
करिवर कुंभ प्रहार कौं, कारन हरि तैं होय ॥६६॥

रागी के मन ग्रांन तैं, रागी वस्तु अथाय ।
मृग मरतैं की बांण ज्युं, गाय गाय कछु गाय ॥६७॥

वर कवि कृत कविता वहुत, नई करन को हेत ।
भरन होंहि तैं जोजना, बुद्धि परीक्षा देत ॥६८॥

बड़ै पुरस के उदर में, बड़ी बात रहि जात ।
ज्यौं करिवर के पेट में, नौ मण नाज पचात ॥६९॥

मन प्रदेश जासौं मिलत, छुटै छिनक न छुटात ।
ज्यौं कणकण पारद करत, चिपत चिपत चिपजात ॥७०॥

लज्या जीवन मूल भय, लज्या तनु शृंगार ।
खप सीस पट डार कैं, निरभै खेलत नार ॥७१॥

‡ राच्यौ

अनुभो अमृत पांन तैं, मिथ्या ताप मिटाप ।
गद सद ओषद जोग वस, तनु तैं तुरत घटाय ॥७२॥

मोल मिलत नहि मन चहत, अज कर हित दिनरात ।
पर नारी दृग निरखियत, कौंन नफा हुय आत ॥७३॥

बाल ज्वांन पुन वृद्ध वय, भिन्न अभिन्न अभाव ।
सीतकाल में सीत कौ, भूलत नांहि सुभाव ॥७४॥

हेतु सुदस लांछन रहित, हेत्वाभास कहाय ।
करम रहित करता कहै, अजा कृपांणी न्याय ॥७५॥

केई कछु केई कछू, कहै आतमा राय ।
जिनमत विन सब मत कथन, अंध गयंदै न्याय ॥७६॥

एक एक हू परसपर, अपनैं मतैं अघाय ।
छेदत थल इक एक कौ, सुंदु पंसुदैं न्याय ॥७७॥

एक कथन वांमै कथन, इह लछन है न्याय ।
पुष्ट करत थापित थलैं, कदंब मुकल*के न्याय॥७८॥

सिद्ध संसारी भाव दो, है अन्योन्य अभाव ।
देहल दीपैं ज्ञान दृग, भासै शुद्ध सुभाव ॥७९॥

माली और कडाह की, तरकारी निसपत्ति ।
संयम नांमै संजती, इह निसपत्ति विपत्ति ॥८०॥

---

* इस न्याय का जिक्र आनन्दघन चौबीसी बालावबोध में भी किया है ।

मन चाहत सो मिलत नहीं, त्रिसना तउ न बुझाय ।
जो चाहत सोई मिलत, तब कब घटत बलाय ॥८१॥

आद मध्य अरु अंत वय, विसम न सम सब जात ।
खांन पांन निरोग तनु, पुण्य लछन कहिलात ॥८२॥

खात न खरचत विलासयत, दांन दियन की बात ।
दुरजय लोभ अचिंत गति, सचित धन मर जात ॥८३॥

एरंड बीज रु धूमगति, सहिजै ऊंची हुंत ।
करम रहित तैं सिद्ध की, ऊरध गति लोकांत ॥८४॥

नव अंग टीका अर्थ कूं, चहियत तर्क प्रसंग ।
बिनां खटाइ नां चढै, ज्यौं कसूंम कौ रंग ॥८५॥

विद्या सब के पढन कौ, धोची पूहै सार ।
सांण चढै विन नां चलै, ज्यौं धारा तरवार ॥८६॥

पंडित मूरख ग्रात कूं, वरन खरच इक लेख ।
विना समारै नां हुवै, नैनां काजल रेख ॥८७॥

कलम करत तरु बेर कुं, तब निरोग फल होय ।
खुरतातैं विन गदह की, ज्यौं मस्ती नहि होय ॥८८॥

दिखत चंद मुख की झलक, घूंघट झीनै चीर ।
ओट लियत बतलावही, तिय निणदी कौ वीर ॥८९॥

उष्णकाल में प्रात कौ, सीत समीर लखंत।
वही मध्य दिन संग तैं, अगन रूप फरसंत ॥६०॥

दुष्ट संग विन दुष्टता, कैसे हूँ न लखाय।
प्रगट देखवैकी गरज, कांजी दूध मिलाय ॥६१॥

सुरिजन फल कूं काटियै, तौ जड़तैं जल जाय।
जौ फल तैं फल विलसियै, तव तरु हरित लखाय ॥६२॥

सुकृत या भव में करत, भव भव फल दिखलात।
ज्यौं नलेर के पेड़ मैं, सींचत जल फल जात ॥६३॥

पुण्यवन्त नर की प्रकृत, ऊंची तक मृदु होय।
ऊंडै सर दुरगंध धर, घनधारा सम जोय ॥६४॥

है संसार अनादि सिद्ध, करता कृत कहि कोय।
विन वसन्त वनराय सव, क्यौं पल्लव नहि होय ॥६५॥

देखै सोभा जैन की, थिज मन होत ससोक।
वरषा ऋतु तरु हरित लखि, जात जवासा सूक ॥६६॥

चंचल मन थिर करन कौं, निष्पृहता उपचार।
दूजौ भवथित पाक कौ, तीजौ नहि संसार ॥६७॥

जिनराजा विन जैन मत, फीकौ लगत अपार।
भरता विन सोभै नहीं, ज्यौं तिय तनु सिंगार ॥६८॥

आतम अनुभौ होत ही, छुटत रंग जड़ संग।
ज्यौं अमृत के पांन तैं, अजर होत सब अङ्ग ॥९९॥

समुद्घात केवलि करै, समक्रम आयु वसेप।
जिती चंद्र पख चांदनी, त्यौं तमपख तम लेख ॥१००॥

अस असवारी मुदित भट, नमुदित गदह चढांहि।
वर तरवर की छांहिलौं, दोनूं दिस लुट जांहि ॥१०१॥

गरभ वेदना निकसतैं, विसरत जगत तमांम।
रति समयैं पर प्रसव दुख, भूल जात ज्युं वांम ॥१०२॥

वृद्ध पुरुष हित सीख दै, सो नहि मांनत ज्वान।
कटुक लगै जुर मै कुटक,* ज्युं गुण करत निदांन ॥१०३॥

स्वारथ के सब जगत वस, स्वारथ विन नहि हेत।
प्रसवत पय पसुजात गौ, लात सवें सहि लेत ॥१०४॥

तनु दीपक हित आयुथित, वाती निसदिन मेल।
वपु दीपक उजियार मैं, तेल जहां लौं खेल ॥१०५॥

ब्रह्मा-विष्णु महेश कहि, पैदा पोषक नास।
उन विन अज हूँ हो रहे, इह विरोध आभास ॥१०६॥

हुकम विना पत्ता हिलै, पत्तैं क्या मकदूर।
क्यौं साहिब नहि कर सकै, इह पख जग मंजूर ॥१०७॥

---

* कटुक गिलोय।

जिन मूरति मन थापलै, क्या पूजा क्या भेट ।
याद किये अन सवन कौ, क्यौं नहि भरिहैं पेट ॥१०८॥
आदि पुरुष हम राम कौ, जो चरणामृत लेय ।
सैं देही वैकुण्ठ वसे, क्यौं तुम धारी देह ॥१०९॥
जोग रोध तैं करत जिय, प्रकृत पुरुष निरअंस ।
धातु भिन्न सवही करत, ज्यौं नाहरै की मूंस ॥११०॥
सत्ता प्रवचनमाय दुग, त्यौं आकास (१८८०) समास ।
संवत आसू मास पुर, विक्रम दस चौमास ॥१११॥
इक सय नव दोहे सुगम, प्रस्ताविक नवीन ।
खरतर भट्टारक गछैं, ज्ञानसार मुनि कीन ॥११२॥

इति प्रस्ताविक अष्टोत्तरी सम्पूर्णम्

आत्मनिंदा

हे आत्मा ! हे चेतन ! ऐ कुदृष्टी, ए कुश्रद्धायां, ए अकार्य प्रवृति, ए रसगृद्धीपणों, ऐ खोटी खोटी दृष्टी ! सामायक दोय घड़ी मात्र में तूं मत चिंतवन कर।

क्यारे तूं सम्यक्त्वमोहनी में, क्यारै तूं मिश्र मोहनी में, क्यारे तूं मिथ्यात्व मोहनी में, क्यारे तूं कामराग में, क्यारे तूं स्नेहराग में, क्यारे तूं दृष्टिराग में, क्यारे तूं कुगुरु में, क्यारे तूं कुदेव में, क्यारे तूं कुधर्म में, क्यारे तूं ज्ञानविराधना में, क्यारे तूं दर्शन विराधना में, क्यारे तूं चारित्र विराधना में, क्यारे तूं मनोदण्ड में, क्यारे तूं वचन दण्ड में, क्यारे तूं काय दण्ड में, क्यारे तूं हास्य में, क्यारै तूं रति में, क्यारै तूं अरति में, क्यारै तूं भय में, क्यारै तूं शोक में, क्यारै तूं दुगंछा में, क्यारै तूं कृष्णलेश्या में, क्यारै तूं नीललेश्या में, क्यारै तूं कापोत लेश्या में, क्यारै तूं ऋद्धिगारव में, क्यारै तूं रस गारव में, क्यारे तूं शातागारव में, क्यारै तूं माया शल्य में, क्यारै तूं नियाण शल्य में, क्यारै तूं मिथ्यादर्शनशल्य में, क्यारै थारै तेरै काठीया दोला आंण फिरै छै। क्यारै तारै अठारै पापस्थान दोला आंण फिरै छै।

रे तूं आतमा ! महादुष्टी, महा दुराचारी, अरे तुं हीण तिथ रा जाया, रे तूं हीण पुन्निया, रे तूं हीणदृष्टि, रे तूं अघोर पाप रा करणहार, रे तूं दुष्ट पापीष्टी जीव, प्रायें तो थारै अनंतानुबंधियो क्रोध, अनंतानुबंधीयो मांन, माया, लोभ री

चोकड़ी बापड़ा थारै खपी नहीं, गुणठाणो थारै पालट्यो नहीं, धीर्य गुण आयो नहीं, तृष्णा दाह थारैं मिटी नहीं, आकुल व्याकुलता थारै मिटी नहीं, दरियाव वाला किल्लोल उछलै युं थारै तृष्णा रा किल्लोल उछल रह्या छै, तुं तो क्रिया करै छै सो सुन्य मनसुं करे छै। धीर्य गुण सुं करीस सो लेखैं लागसी, शून्य पणै करी जो क्रिया करी सो तो छार पर लीपणै सरीखो छै।

ए चेतन बापडा सौंस न लैं ते पापी, लेनैं मांजैं तें महापापी। ते अणंतकाय अभख, शीलव्रत, जरदो, डांठली, अमल, भांग, तमाखू रा सौंस लेले मोजिया; बापडा थारो कठे छूटणो हुसी।

हे चेतन तूं पुदगल रैं वास्तै कितरी एक आकुल व्याकुलताइ कर रह्यो छै, ओहो माहरे पारस पत्थर, म्हारै नव निधान, म्हारै रसकूंपो, म्हारै रसायण, चित्रावेल, म्हारै अमृत गुटको, वा देवत नै वस करूँ, वा पतस्याह होजाउं; वा राजा हुजाउं, वा सेठ हुजांउं, वा सेनापति हुजाउं, जिम तिम कर पुद्गल उपार्जन करूं, रे बापड़ा! थारे तो ए बातां उपजैंही उपजैं। दशमें गुणठांणै वाला नै ही लोभ नो परिहार नहीं, तो रे बापडा थारी तौ गरज कठै सुं सरै। हे चेतन तुं युं मन में चिंतव रह्यो छै, म्हारो घर, म्हारो पिता, म्हारी माता, म्हारो पुत्र, म्हारो कलत्र, म्हारो पुद्गल। अरे चेतन चोरासी फिरतैं लाख घर करतो फिरयो, संसार में न किण रो तूं छै न कोई थारो, रे चेतन! थारी तो तूं उत्पत्ति देख, केई वार मां पिता पणै, केई वार पुत्र पणैं, केइ वार पुत्री पणै, केइ वार स्त्री पणै, ऐ थारा नाच तौ देख। ठगरी बेटी कह्यो यो हे माताजी! हे पिताजी! हूँ इतरा

पाप करूं छुं सो कुण भोगवसी ? बेटी ! करसी सो भोगवसी, तो के धिकार पडो इण संसार नैं । संसार में कोई किण रो नहीं ।

औ मांनुखो जन्म, आर्यदेस आर्यकुल, श्रावक रो खोलियो, प्रभुजी रो धर्म, ते पुन्यांनुबंधी पुन्य सूं पायो, पायकर बापडा तैं ब्राह्मण कागला नैं वायर खोयो, तिम तैं चिंतामण रत्न रूप धर्म खोयो, थारो आत्मा री गरज क्युंकर सरै, रे चेतन ! तूं कहै 'हूं' रे तूं कुण' विष्टा मांहिली लट तूं हीज हुवै, मांन रूपीयै गज बाहूबल चढ्यौ, अर संजलणो मांन थो ब्राह्मी सुंदरी बाई सिरीख समझावण वाला जद समझ्या, बापडा जिण रैं औ मांन सो थांरो कहिनै किसो हवाली हुसी ।

ए चेतन ! देख तूं, भरथ महाराज जिणां रै किती एक राजऋद्ध सौभाग थो; तो, कै धिकार हुऔ माहरै राजनै, धिकार हुवौ माहरै पाट नै, धिकार चक्रवर्त्त पदवी नें, धिकार हुवौ माहरै विषय सुखां नैं । धन छै, जे तीर्थंकर महाराज रो देश व्रत धर्म जे पालै छैं । धन जे दान दे छै, धन छे जे शीयल पालै छै, धन जे सर्वव्रत धर्म पालैं छैं, धन जे तपश्या तपै छै, धन जे भावना भावे छै, तो के भावना भावता भरथादि केवलज्ञान केवलदर्शन पाम्या, तो के तुं आ बराबरी रे जीव मत करै, उवे तो तेसठ सिलाका रा पुरस, चरमसरीरी, चोथा आरै रा जीव, तूं पंचम कालरो भरथक्षेत्ररो कोडलो, किसी एक वात ए चेतन ! कर्म अजीव वस्तु, रे चेतन तूं जीव वस्तु, रे चेतन ! जीव सूं जीवतो सदा परवौ करौ पिण अजीव सुं क्युं करै, पिण तूं निबल कर्म महा सबल । रे चेतन ! कर्म तो चवदैं पूर्व धारीयोनै उठाय पटक्या, इग्यारहमें

गुणठाणे रा जीव भुवनभावनकेवलीजी, कमलप्रभाचार्यजी, महाविदेहरा मांनवियांनैं डिगाय दीया। तूं पंचमकाल रौ जीव किसी एक बात।

" आठ करम अट्ठावन सौ (प्रकृति), प्रभु किम कर जीत्यौ जाय।
मोह करम लारै लाग्यो, किम कर जीत्यौ जाय।
संग लगै प्रभु आय, हमारी विनती "

हे चेतन! चारित्र री फौजांमें रहि सद्बोध मुंहते री आज्ञा में रहि सदा आगम सुं परचै राख, संतोष गुण ग्रहण कर। तृष्णा रुपणी दाहनै पूठी मार, ज्युं थारी आत्मारी गरज सरै। धन छै साधु मुनराज, पाचे सुमते सुमता, तीने गुप्ते गुप्ता, छकाय ना पीहर, सात महा भय ना टालणहार, आठ मद ना जीपक, नवनिध ब्रह्मचर्यव्रत नी वाड ना राखणहार, दस विधि यतीधर्म ना उजवालक, इग्यार अंगना भणणहार बारैं उपांगना भणणहार, कुक्खी संबल मलमलिनगात्र, चरित्रपात्र धन्य छै जे मुनि प्रभुजी नी आज्ञा प्रमाणै धर्मपालै, रे चेतन! तनैंई कदै उदै आवसी। रे चेतन! थारै उदै कठा सुं आवै, रे बापडा! थारै संसाररी बहुलताई. तिवारै तनै कठा सुं उदै आवै? धन छै जिके देस विरती श्रावक, जिके प्रभुजी आज्ञा प्रमांणै धर्म पालै, प्रभात उठ सामायक करै पडिकमणौ करै, देवदर्शन करै, प्रभुजी नी द्वादशांग नी वाणी सुणै, देवपूजन, देववंदन, गुरुवंदन, दान, तपश्या, शील, पर्व तिथै पोसौ, संज्यायै देवसी पडिकमणो, धन्य छै देसविरती श्रावक, प्रभुजीनी आज्ञा प्रमांणै जे षडावश्यक करै, मनैंई कदै उदै आवसी।

रे चैतन! तुं इस्या खोटा कांम करै थारा बुरा हवाल हुसी, थारा खोटा परिणाम देखतां तो थारै खोटी गत उदै आवसी।

सामायक मन शुद्धे करो निंद्याविकथा पद परहरो थारी तो समायक आ छै—सामायक मन अशुद्धे करो, निंदा विकथा बहुली करो। पढो गुणो वाचण खप करो, जिम भवसागर लीला तरो। तनै वाचण पढण री खप कठै छै, तैं तो श्रुत ज्ञान नो बहुमान न कीयो, श्रुतज्ञानजी रो गुणणो न कीयो, तरै थारै ज्ञानावरणी रो अंधकार पडल फिर गयो। श्रुतज्ञानजी रो आराधन करै छै, श्रुतज्ञानजी रो बहुमान करै छै, ज्यारा ज्ञान दर्शन चरित्र निर्मल हुवै छै। जिकांई रे ज्ञान री प्राप्त हुवै। जिकांई रे ज्ञान केवलदर्शन री प्राप्ति हुवै- जिकांई ज मुक्त रूपणी स्त्री पांणिग्रहण हुवै।

"दिवस प्रतै दियै सुजांण, कोयसीना खंडी लख प्रमाण।
तेहने पुन्न न हुवै जेतलो, सामायक कीधां तेतलो"

पिण चेतन! तुं इण भरोसे भुले मां। आ थारी समायक उवा नहीं भाई। आ सामायक तो उत्तम जीवां री भाई। आ सामायक आणंद, कामदेव, संख, पुष्कल री, पुरणदास सेठ, चद्रावतंसक राजारी। तुं इयै भरोसे भुले मां। रे चेतन! थारी तो सामायक आ छै—काम काज घर ना चिंतवै, निंदा विकथा कर खोज रहै। आरत रुद्र ध्यांन मन धरै, ते सामायक निष्फल करै। थारी तो समायक आछै भाई।

आप परायो सरसो गिणै, कंचन पत्थर समवड धरै।
साचो थोडो गमतो भणै, ते सामायक सूधै करै॥
चंद्रावतंसक राजा जेह, सामायक व्रत पाल्यौ तेह।

रे चेतन! स्व आत्मा नौ भलो चाहै, पर आत्मा नौ बुरो चाहै

सो तैं पर आत्मा नो बुरो न चाह्यो स्व आतम रो बुरो हीज चाह्यो। रे चेतन! तु' कंचन री तो वांछा राखै, पत्थर नै दूर करै, ज्यारै छाती उपर पथर पडसी, कदेई कंचन री प्राप्त हुवै नहीं। रे चेतन, तु' तो मृषावाद ही बोल रह्यो छै।

रे चेतन! तु' थारो गुण संभारै तो अवेदी छै, अफरसी छै। अघाती छै, अलेसी छै, अविनासी छै, जे तूं थारो गुण संभारै तो छै माई। ओहो! ओहो! ऐ मारा दुसमण, ऐ मारा सज्जन। हे चेतन! कुण थारो दुसमण, कुण थारो सज्जन, हे चेतन! थारै तो आठ कर्म रूपीया सत्रु, वैरी छै। ज्यांनै तूं ज्ञान रूपीयै इंधण सुं बाल भस्मकर दे, ज्यु' थारी आत्मा री गरज सरै। ओहो! हु' भव्य छु'-कै अभव्य छु'। कनै दुरभव्य छु'। कै कोई माहरै पोतै संसार घणो हीज दीसै छै। प्रायैतो हूँ भाई अभव्य दीसु' छु', पछै तो ज्ञानीयां भाव दीठो सो खरो।

रे चेतन! तूं सामायक तो आ करै छ—

खुणै छै खाज मोडै छै करडका। उंघ तणा लेवै सरडका।

तैरी सामायकं तो माया ज्ञानी सकारसी तो लेखै लागसी।

दोहाः—आतमनिंदा आपनी, ज्ञानसार मुनि कीन।

जे आतम निंदा करै, सो नर सुगुन प्रवीन ॥१॥

इति श्री आतमनिंदा संपूर्णम् ॥ संवत् १८७० वर्ष। शुभंभवतुः

संवत् १८८५ वर्ष चैत्र मासे कृष्ण पक्षे

लिखतुं। बीकानेर मध्ये। श्री रस्तुः। श्री कल्याणमस्तुः॥

श्रीमद्ज्ञानसारजी कृत

॥ गूढ़ (निहाल) बावनी ॥

(निहालचन्द पं० वीरचन्द रे चेले सुं पं० नारण री कथन)

॥ दोहा ॥

चांच आंख पर पाउं खग, ठाढो अम्बनि डाल।
हिलत चलत नहि नभ उड़त, कारण कौन निहाल ॥१॥

हाथ पाँव नहिं पीठ मुख, भरत मृगन सी फाल।
पीठ लगे बिन ना* चले, कारण कौन निहाल ॥२॥

धूम शिखा नहिं काठहिं, जरत(:) अग्नि की झाल।
पानी सिंचत ना बुझत, कारण कौन निहाल ॥३॥

हिलत हिंडोरा वेग तें, पहुतो तरु की डाल।
इतउत चलत न आंगुरी, कारण कौन निहाल ॥४॥

वही सरोवर जल भर्यो, वही पथिक खग बाल।
पानी बुंदिक नहिं मिलत, कारण कौन निहाल ॥५॥

घटा बीज जलधार लखि, दौरत★ पपियन बाल×।
पर मुख बूंद न परत इक, कारण कौन निहाल ॥६॥

---

* नहीं चलत (:) झराति ★ धोरत × चाल।

१ चित्रित छै। २ दड़ो छै। ३ वड़वानल छै। ४ चित्रित छै। ५ पालो जमियों छै। ६ चित्रित छै।

आज काल पिय आवही, सुनि बिलखी भई बाल ।
मात पिता हरषित भए, कारण कौन निहाल ॥१४॥
मात पिता सुत जनम तैं, हरषित होत कंगाल ।
सुत निरखत बिलखित भए, कारण कौन निहाल ॥१५॥
तिय सुन्दर सुकमाल गल, पीक दिखत रंग लाल ।
हाड़ मांस लोही न नस, कारण कौन निहाल ॥१६॥
हाथ पीठ पर पांव बिन, चलत बेग गति चाल ।
गेरत तरुवर घर गढनि, कारण कौन निहाल ॥१७॥
कहित हजारों कोश के, समाचार तिहाकाल ।
बदन रदन रसना रहित, कारण कौन निहाल ॥१८॥
चांच पेट पर पाँव बिन, ऊड़त ज्यों खग बाल ।
बिना सहारे नहिं उड़त, कारण कौन निहाल ॥१६॥
तीखी चितवन दृग झलक, ललित दिखाई लाल ।
लली रूस के उठ चली, कारण कौन निहाल ॥२०॥

---

१४ स्त्री रे प्रथम दिवस ऋतु रो छै । १५ पुत्र कोढी । १६ पतंग रै पाणी सुं भरी काच री फाग री सीसी नाम होली समयें हुवे उण रै मूंढै अंगुली दे कै लड़का उलट सुलट सीसी नै करतां सीसी रे गलै में लाल रंग पाणी दीसै सो पीक । १७ प्रलय (पाठान्तर-प्रबल) पवन । १८ कागद । १६ गुड़ी । २० पुनः शयिता नायिकारो रूसनो ।

ससि वदनी ससि पूर्ण लखि, मेट दिठौना भाल ।
हरख नचत दृग पूतरी, कारण कौन निहाल ॥२१॥
गौ वछरी चुंखावही, इह सुभाव सब काल ।
मात सुता न चुंखावही, कारण कौन निहाल ॥२२॥
दावानल वन वन जलै, घर* तरुवर पताडाल ।
ततखिण तृण इक ना जलत, कारण कौन निहाल ॥२३॥
फूल पान जड़ पेड़ बिन, सूकी तरु की डाल ।
फल चाखे सो को जिये, कारण कौन निहाल ॥२४॥
शीश पेट कर पांव बिन, त्रिजग सुगति÷ तिह काल ।
अन प्रेरै कबहु न चले, कारण कौन निहाल ॥२५॥
बूंद न जल मोंघा विकत, पईसे विकत पखाल ।
यह अचरज सब जगत गति, कारण कौन निहाल ॥२६॥

---

*घन ÷तिगति ।

२१ शशि स्यामता सुं सकलंक म्हारो वदन चंद निकलंक तासु हर्ष । २२ गाय सगर्भा सुं दूध सुं टल गई । २३ सघन वर्षा वरसने सुं । २४ बरछी रो फल । २५ तोप रो गोलो । २६ हीरा घणो पाणी देख मुंघे मोल ले, पाणी बूंद ही नहीं ।

प्रगट रकम घट वढ़ दिखत, जमां घटत नही बाल ।
मास मिती सम विसम नहीं, कारण कौन निहाल ॥२७॥
ट्रंक किते इक नग लखै, गिड़े सघन अविसाल ।
नर नारी ठाढ़े चवत, कारण कौन निहाल ॥२८॥
गाज बीज बिन धार जल, ताल भरत तिह ताल ।
घट वढ़ बूंद न होत इक,* कारण कौन निहाल ॥२९॥
शीश पाँऊ कर पेट विन, वेग चलति अति चाल ।
हठ कर गेरति ना+ जगति, कारण कौन निहाल ॥३०॥
चरण वीस कर पेट बिन, सिखा कान सिर भाल ।
अंगुरी एक चले नहीं, कारण कौन निहाल ॥३१॥
अठ कर इक लकरी पकर, हिलत चलत नहीं चाल ।
बोझ उठावत बहुत मन, कारण कौन निहाल ॥३२॥
पर न शीश पाँव न ऊदर, चलत चलाये चाल ।
तृपत होत मानिस÷ रुधिर, कारण कौन निहाल ॥३३॥

*वन सघन +नग ÷मांसन ।

२७ श्वेत कृष्ण पक्ष चन्द्रकला । २८ मिश्री रो कुंजो । २९ दाल धोवतां चालणी रो पाणी कूंड में भरै छै । ३० प्रलय पवन । ३१ छत्री बीसथंभी । ३२ ताकड़ी । ३३ तलवार की धार ।

दिन दिनकर दीसत नहीं, त्यों निसाकर मिसी काल।
दस दिस तारे झिगमिगत, कारण कौन निहाल ॥२४॥
ताल भरयो जल देख कै, दौरे नर पशु आल।
पानी बूंदिक ना मिलत, कारण कौन निहाल ॥२५॥
विन पांखे उड़ जात नभ, उतर जात पाताल।
देत सहारा तब चलत, कारण कौन निहाल ॥२६॥
आठ पाँव सुर पशु नहीं, पुरुष चलावे चाल।
हाड़ होंहि नहीं माँस नस, कारण कौन निहाल ॥२७॥
तिय पिय के संयोग विन, गर्भ धरयो अति बाल।
भयो पुत्र षट् मास में, कारण कौन निहाल ॥२८॥
कठिन होंहि इक भीजतें, जल बिन* निरम निहाल।
अति अचरज देखत हुअत, कारण कौन निहाल ॥२९॥
परब दिवस सब तिय मिली, गावत गीत रसाल।
इक तिय चख आंसू झरत, कारण कौन निहाल ॥४०॥

---

* घण जल।

२४ सम्पूर्ण सूर्य ग्रहण। २५ मृग तृष्णा। २७ चकरी। २७ गिड़-गिड़ी २८ शीप संबंधित मोती। २९ लोहे री खाण (पाठान्तर-पाण) ४० प्रोषित भर्तृकाने भर्तारने स्मर्यां अश्रुपात।

जटा बीच गंगा चलत, सिंह बिछायै खाल ।
लक्षण शङ्कर शिव नहीं, कारण कौन निहाल ॥४१॥
चार हाथ तैं मुख पकर, पानी पियत पताल ।
उलट आत उलटी करत, कारण कौन निहाल ॥४२॥
कार्तिकेय नहिं षट् वदन, च्यार तुंडतैं चाल ।
खांन पांन इक इक* मुखै, कारण कौन निहाल ॥४३॥
सोल पांव सूं ना चलत, चलत चलाये चाल ।
अंगुरी एक खिसै नहीं, कारण कौन निहाल ॥४४॥
पग+ बिन उडै अकाश में, गिरत न लागे ताल ।
विद्याधर वर सुर नहीं, कारण कौन निहाल ॥४५॥
साज वजत संगीत तैं, ताल चमक चौताल ।
निपुण नटी पग चुक धरत, कारण कौन निहाल ॥४६॥

---

*पांचूं +पर । ऩम

४१ बाघंबर उपर बैठो गुर जटा धोवे शिष्य ऊभौ तूंबी सुं जटा में पाणी नाखै । ४२ चडस (कोस) कोई देश कहै कोस उणरै च्यार फांकरी लकड़ी जिण में वरत बांधै चडस कसै उणनै कडचू कहै सो च्यार हाथ उणसुं कोसरो मुख पाणी भरीजै जिण सुं । ४३ अजबगुल महिरी । ४४ सोले ताड़ी चरखे री तिके सुं सोले पग चरखो । ४५ हवाई ४६ नटी मदिरा छकी ।

प्राण दसो सु* इक नहीं, ज्यांन वृद्ध नहिं बाल ।
मरण जनम बिन जीव हैं, कारण कौन निहाल ॥४७॥
तुरत दसन बिन अन भखे, छरद करत तिह काल ।
पेट भरत नहीं पुरसतां, कारण कौन निहाल ॥४८॥
प्राण नहीं मुख इक रदन, अदन विशाल रसाल ।
हदन मूत मुख में करैं, कारण कौन निहाल ॥४९॥
च्यार लठी अठ कर पकर, उन बिच बैठे बाल ।
देत सहारा नभ फिरत, कारण कौन निहाल ॥५०॥
प्रात सुअत संध्या जगत, मृदु अति सुन्दर बाल ।
वंध्या पुत्र दऊं नहीं, कारण कौन निहाल ॥५१॥
विन पैड़ी चवदै चढ़ै, समयंतर कर काल ।
मरण होत ही उड़ चलें, कारण कौन निहाल ॥५२॥
मध्ये प्रवचन मांय दुग, सचा आद रु अंत ।
मिगसर वदि तेरस भई, गूढ़ बावनी कंत ॥५३॥
खरतर भट्टारक गछैं, रत्न राज गणि सीस ।
आग्रह तें दोधक रचै, ग्यानसार मन हींस ॥५४॥

—:इति निहाल बावनी संपूर्णम्:—

* दसूं में ।

४७ सिद्धावस्था । ४८ घरटी । ४९ घाणी । ५० डोलर हींडो ।
५१ कमलनी सूं कमलोत्पत्यामाव, तासुं पुत्र नहीं कमलनी सुं कमल नी उत्पति तासुं वंध्याभाव । ५२ सिद्ध ।

श्रीनवपदजी पूजा

दोहा:—च्यार घातिया क्षय करी, जेह थया भगवंत ।
समवसरण ऋद्धे सहित, वन्दूं ते अरिहन्त ॥ १ ॥

देशी– सूरती महींना नी ।

अनंत भवे अविसेस, ति भव थांनक तप सेव ।
बांध्यौ जिण जिन नाम, एग भव अंतर एव ॥
राय कुलै अवतरिया, चवदै स्वप्न समक्ष ।
शुभ लक्षण सूचित शुभ, गुण शुभ माता पक्ष ॥ १ ॥
जनम महोत्सव करवा, दिशिकुमरी सुर इंद ।
आवै एक एक थी आगल हरख अमंद ॥
पग पग नाटक नाचै, सुर कुमरी ना वृन्द ।
मेर सिखर नवरावै ल्यावै जिण जिणचन्द ॥ २ ॥
लोक अछेरक देहै अतिशय होवें च्यार ।
तीन ज्ञांन थी भोग खीण नौं कर निरधार ॥
तज आगारी उग्र विहारी हुय अणगार ।
संत दंत अभमत्त अमाई जे ब्रह्मचार ॥ ३ ॥
शुकल ध्यान नै ध्यावै, आतम शक्ति अखोह ।
खवगसेणथी हय पड़िहय जिण कीनो मोह ॥
केवल दंसण नांणी शुद्ध सरूपी ख्यात ।
चोतीसै अइसय युत अरिहन्त देव विख्यात ॥ ४ ॥

प्रातिहारिज शोभित सेवित सुर विहरन्त ।
भू पीठै वांणी गुण थी भव वोह कुणन्त ॥
जगजीवन जगवल्लभ जगचत्तु जग सांम ।
वार वार त्रिकरण शुद्धैं माहरौ परणांम ॥ ५ ॥

इति अरिहन्त स्तवना ।

दोहा:—अष्ट करम दल निरदली, अड़ गुण ऋद्ध समृद्ध ।
जन्म मरण भय निर्भयी, नमूं अनंता सिद्ध ॥ १ ॥

देशी (सूरती महीना नी)

अरिहन्त वा सामन्न केवलि कृत समुवाय ।
अकृत समुद्घाती शैलेसी करणैं पाय ॥
मण वय तणु नैं रोधै जोग निरोधी होय ।
जोग निरोधी केवल नांणी कहियै सोय ॥ ६ ॥
आयु त्तय थी दो इग चरम समै रहि सेष ।
वहुत्तर तेरै प्रकृत खपावै हिव नहीं सेष ॥
चरम अङ्ग अवगाहण तीजै भागै ऊंण ।
पहुंता एग समय लोगंतै सिद्ध अजूंण ॥ ७ ॥
पुव्व पश्रोग असंगे सहिजै वंधण छेद ।
धूम सुभावै उर्द्धगति जेहनौ अविच्छेद ॥
इसी पभारा पुहवी पर जोंइण लोगंत ।
एहनी थित नौ थांनक तेहनौ आद न अन्त ॥ ८ ॥
जेय अणंता अपुणुब्भव असरीर अवाह ।
दंसण नांण वडत्ता गुण गति अणंत अगाह ॥

समय वछिन्न सरव द्रव्व गुण पर्याय सुभाव।
चटन[1] विचटनादिक जे जांणै पालै भाव ॥ ९ ॥
गुण इगतीस अट्ठगुण सिद्ध अणंता च्यार।
जेय अणंत अणुत्तर उपमांनौ न प्रचार ॥
सासय चिद्घन आणंद सिद्ध सुखै संपत्त।
एहवा सिद्ध नै होज्यो मम प्रणिपत्त सुनित्त ॥ १० ॥

इति सिद्ध स्तवना ॥

दोहा:—ते आचारज नित नमूं पालै पञ्चाचार।
गुण पैंतीसैं उपदिशै भव्य भणी हितकार ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

आचारता ज्ञानादिक पञ्च विधा आचार।
प्रगट करै सहु जन नै कारण इक उपगार ॥
जे आचारिज देशादिक बहु गुण संपत्त।
तेहथी जंगम जुगपरधांनी ओपम युत्त ॥ ११ ॥
अपमत्ता ऊवउत्ता विकथा जेह विरत्त।
कोहाई पर चत्त धम्म उवएसैं सत्त ॥
सारै जे निज गच्छैं जिण वयणै आसत्त।
साइण वाइण चोइण पडिचोयणायै नित्त ॥ १२ ॥
पञ्चांगी थो जाण्या सूत्र अरथ ना सार।
पर उपगारैं दिव्य धुणि वांचै विस्तार ॥
अत्थमियै जिन सूर केवल अत्थमियै तेम।
प्रगटै सर्व पदार्थ आचारिज दीपक जेम ॥ १३ ॥

१—चदन।

पाप भारै अतिशय भारी पड़ता भव कूप।
पड़तां नै निस्तारै जे आधार सरूप॥
मातादिक हित राखी सारै हित नो कांम।
तेहथी अधिकौ हित कारज सारै निक्काम॥ १४॥
जे बहु लद्ध समिद्धा सातिसया साणंद।
राय समा शासन वन हरित करण भू इंद॥
जिन शासन कुल मंडन खंडन वादीवृन्द।
ज्ञानसार नित प्रणमैं अभिनव शारद चन्द॥ १५॥

इति आचार्य स्तवना॥

दोहा :—द्वादशांग सुत्तत्थ नै पढै पढावै शीश।
मूरख नैं पंडित करै, नमूं नमावी शीश॥

देशी (तेहिज)

वारसंग सुत्तत्थ ना धारग पारग जेह।
उभय वित्थार रुई उवज्झायै लच्छण एह॥
जे पाहांणा समांण शीश नं सूत्र नी धार।
वाट घड़ी जे पूलक करद लोक मझार॥ १६॥
मोर सर्प डसवै नाठौ आतम ज्ञांन।
तेह अचेतन चेतन नैं करै चेतनवांन॥
व्याध अनाणैं पीड़ित जे प्राणी ना प्रांण।
श्रुत अक्षीरै जे करै आतम स्वरूप नो जांण॥ १७॥
गुणवर्ण भंजण मण गय दमणंकुश जे नांण।
देवैं सदा भवियां नै जीवदया मन आंण॥

सेस दांन दिन मास जीवित[1] नो जाणी अंत ।
सुय नांणै जे अंत न जांणी सहु नै दिंत ॥ १८ ॥
अज्ञानंध लोक ने ससमय मुख जे शास्त्र ।
तेणै जाल उतार निरोगी करदै नेत्र ॥
पाप ताप थी लोक तप्या जे आतम ताप ।
शीत करै बावन्न चंदन सम शीतल आप ॥ १६ ॥
जुवराजा नै तुल्य सूरि पदवी नै योग्य ।
गण नी तातैं[2] तत्पर वायण दे शिष्य वर्ग ॥
पारद थी कंचन करै तेहनौ अचिरिज थाय ।
ए पाहण थी रत्न करै प्रणमूं तस पाय ॥ २० ॥

इति उपाध्याय स्तवना ॥

दोहा :—दोनूं विध निपरिग्रही, मैलै मैलौ गात्र ।
पीहर जे छक्काय ना, शुद्ध चरण ना पात्र ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

नाण दंसण चरित्त रूप रयणत्तय एक !
साधै जे मुख मर्गें साधक कहियै एक ॥
दुष्ट ध्यांन जे आर्त रौद्रैं विगत करंत ।
धर्म शुक्ल नैं ध्यावै दुविह शिक्षा सीखंत ॥ २१ ॥
तीने गुप्ते गुप्ता गारव तीनूं गाल ।
पालै जे त्रिपदी नै वरजी तीनूं साल ॥
चौविह (विरह) विगह विरत्ता च्यार कषाय नौ त्याग ।
च्यार प्रकारै धर्म परूपै रस वैराग ॥ २२ ॥

१—जीविन । २—तानैं ।

निज्जिय पंचेन्दी नै उज्झीय पञ्च प्रमाद।
पालै पांच सुमति नै आठ पहुर अप्रमाद॥
छए काय ना पीहर हासाई छड़ मुक्क।
पाणायवाय विरमणादिक पालै वय छक्क॥ २३॥
जे जिय सत्त भया गया अट्ठ मया अममत्त।
ब्रह्म वय नै पालै, नव गुत्तीयैं गुत्त॥
खंत्यादिक दश विध जई धम्म शुद्ध पालंत।
बारस विह पड़िमा नै छक्क विधै कुव्वन्ति॥ २४॥
मूर्तवन्त संयम पांमीजै जेहनै अंग।
उत्कर्षै धार्या अठार सहस शीलंग॥
पनर कर्मभूमैं विचरंतां सूधा साध।
ते सहु साधै वांदूं मन वच तन आराध॥ २५॥

इति साधु स्तवना॥

दोहा :—कह्यौ अनंते केवली, तीन तत्व मय धर्म।
शुद्ध मनै ते सद्दै है, सम्यग दर्शन मर्म॥ १॥

देशी (तेहिज)

जे शुद्ध देव धरम गुरु नवतत्त नी संपत्ति।
सद्दहणा रूपै सैंमयै वरणै सम्मत्त॥
कोड़ा कोड़िग सागर कम्म ठिई नहीं शेष।
तावत आतम पावै एहवी शक्ति विशेष॥ २६॥
अध पुग्गल परियट्ट भव्य भव शेष निवास।
ते विण मिथ्या गंठी नौ नहीं होवै नाश॥

ते सम्यज्ञान ना तीन मिधांन समय परिसिद्ध ।
उवसम त्तय उवसम त्तायक परिणांमनी वृद्धि ॥ २७ ॥
पणवारा उवसम खय उवसम होय असंख ।
त्तायक एक वार थी अधिक न समये संख ॥
धर्म वृत्त नौ मूल धरम पुर मांहि प्रवेश ।
धर्म भवन नौ पीठ धरम आधेय विशेष ॥ २८ ॥
उपशम रस नौ भाजन जे गुण रयण निधांन ।
शुद्ध सरूप धरम जगतै आधार समान ॥
जे विण निष्फल चरण नांण जे विण अप्रमांण ।
जे विन मोत्त न लाभै ए सिद्धन्त प्रमाण ॥ २९ ॥
जे सद्दहणा लत्तण भूषण पमुहा भेद ।
वरणीजै सिद्धन्ते च्यार पांच पण छेद ॥
एह मोत्त भातौ जिण गांठै बांध्यौ होय ।
ते निश्चै थी सिद्ध भजै तिण वांदूं सोय ॥ ३० ॥

इति दर्शन स्तवना ॥

दोहा :- सर्वज्ञै प्रणितागमै, जे जीवादि पदार्थ ।
भिन्न २ इक एक नै, जांणै शुद्ध परमार्थ ॥ १ ॥

देशी (तेहिज)

सर्वज्ञै प्रणितागम तत्त्व यथार्थ प्रमांण ।
ते शुद्धै अवबोध नांण माहरै परमांण ॥
जेणै भत्याभत्य जांणीजै पेय अपेय ।
गम्य अगम्य वस्तु कृत अकृत एहथी नेय ॥ ३१ ॥

सर्व क्रिया नो मूल श्रद्धा भाखी जिनराज।
श्रद्धा मूलैं नांण सदा उपगारी आज॥
जेमय ओही मणपज्जव नांणी सुविशुद्ध।
केवल नांणै पञ्च विहा समयै सुप्रसिद्ध॥ ३२॥
केवल मण ओही ना वयण करे ववयार।
तेह परूव्या मय सुय नो माहरे आधार॥
निश्चय थी सुय नांणै द्वादश अंग सरूप।
लोक आज पिण पामैं एहथी शुद्ध स्वरूप॥ ३३॥
तेहथी पढै पढावै दै निसुणे कृतपुण्य।
पूय लिहाय सहाय करै ते धन्य थी धन्य॥
अज्जवि जाणै जस्स बलैं तिय लोय विचार।
करगत आंवल नी पर प्रगट पणैं निरधार॥ ३४॥
होवै जेह प्रसादैं पूजनीक एह लोय।
एह प्रसादैं सर्व जनां नौ वंदिक होय॥
तेहथी ए अप्रमांण करै ते अति मतिमंद।
ज्ञान नमं मन वंछित पूरक सुरतरु कंद॥ ३५॥

इति ज्ञान स्तवना॥

दोहा :—देश सरब विरति पणैं, गिही जई नै होय।
ते चारित्र सदा जयौ, शिवपद प्रापक सोय॥ १॥

ढाल (तेहिज)

देश बिरवि रूपै जे सर्वंविरति सरूप।
होय गहीण जई नै ते चारित्र अनूप॥

नांण दर्शन पण संपूर्ण फल दाता वृद्ध।
एहथी ह्वै परिकर एहनौं सहु समय प्रसिद्ध ॥ ३६ ॥
जंच जईण जहुत्तार अधिक २ फल दित।
सामायकादि भेदु चारित्रै नैं पञ्च भवति ॥
जिणवर पिण आदर पाल्यौ सूधौ चारित्र।
सम्यक जेण पलव्यौ, अन्यै दीध विचित्र ॥ ३७ ॥
छःखंडाण मखंड राज छोड़ी चक्रवर्त्ती।
दुर्धर तेहवैं सुखिए व्रत पाल्यौ व्रत रक्त ॥
मुझ सरिखा पण रांक चरण पालंता जोय।
उच्च थांनकै थापी वांदै पूजै लोय ॥ ३८ ॥
चारित्त पालंता चारित्री नैं साणंद।
पाय नमै रोमंचित तनु नर वर सुर इंद ॥
जे चारित्र अनंत गुणी पिण सतरै भेद।
वरणीजै सिद्धन्ते तिम एहना दश च्छेद ॥ ३९ ॥
सुमति गुपति जइ धम्म में आदि भावनाचार।
साधै जेहनी शुद्धै ते शुद्ध चरणांचार ॥
दुर्धर दीव अढी में जे चारित्र चरंति।
ते सहु नै मुझ मन भावें प्रणपत्ति करंति ॥ ४० ॥

इति चारित्र स्तवना ॥

दोहा :—दुष्ट आठ कर्म [१] काठ नै, जेह अगनि दृष्टांत।
यथा शक्ति तप अड़वजै, अममाई मति संत ॥ १ ॥

१ — कम।

देशी (सूरती महीनानी)

वाह्य अभ्यन्तर वारै स समय भेद भणंत।
ते इग इगथी जह उत्तर गुण वृद्धि करंत॥
जे[1] भव सिद्ध जाणंते ऋषभादिक जिनराज।
तीर्थंकर तप कीनो कर्म निर्जरा काज॥ ४१॥
अगन तपै कंचन थी माटी जिम फीटंत।
जीव स्वर्ण थी कर्म मैल तप दूर करंत॥
केवल लब्धि अभावै अन्या लब्धि विशेष।
तेहनौ मूल कारण ए, एहथी होय अशेष॥ ४२॥
जे सुरतरू सम एहना फूल देव सुर ऋद्ध।
आतम स्वरूप अंतवृ॑त्तियेँ शिवफल सिद्ध॥
जे अत्यन्त असाध्य लोक में सरबै काम।
सीझै तुरत सहिजथी तप अति रति परणाम॥ ४३॥
दधि दुर्वागुण मंगल कारण लोक प्रसिद्ध।
ते बहु में पहिला मुख्य मंगल सुविशुद्ध॥
कनकावलि रतनावलि लहु गुरू सींहनिक्रीड़।
तप कारक इत्यादि नमू, भाजै भव भीड़॥॥ ४४॥
संवत निश्चय-नय भय तिमवलि प्रवचन माय।
परम-सिद्धे पद वांम गतैं ए अंक गिणाय॥
भाद्रव वदि तेरस ते रस सुं नवपद लीन।
बीकानेरै ज्ञानसार मुनि तवना कीन॥ ४५॥

इति तप स्तवना॥

॥ इति नवपद पूजा संपूर्ण॥

१—ते।

॥ आरती ॥

जै जै नवपद आरति कीजै, सकल मंगल कल्याण लहीजै ।
पहिली आरति अरिहन्त सिद्धा, अरिहन्त सिद्ध अभेद प्रसिद्धा ॥जै०॥१॥
बीजी आचारिज गुण धारी, संघ सकल नौ जे आधारी ।
तीजी उवझाया साधूनी, समय सीखवै सीखै तेहनी ॥जै०॥२॥
तीन तत्त्व सरदहणा रूपै, चौथी उद्धारै भव कूपै ।
पांचमो सर्वज्ञ प्रणितागम, तत्व रह्यो तेहनौ तिम अधिगम ॥जै०॥३॥
छट्ठी देश सर्व चारित्री, करतां हुय काया सुपवित्री ।
बाहिर अभ्यंतर तप बारै, सातमी आरति वारै वारै ॥जै०॥४॥
जे भवि सात आरति उतारै, शुद्ध मन दुर्गति दूर निवारै ।
ज्ञानसार नवपद आराधी, श्रीपालादिक शिव पद साधी ॥जै०॥५॥

॥ अथ नवपद स्तवन लिख्यते ॥

राग (वेलाउल)

भवि पूजा भावें करौ, नवपदनी सार ।
नवपद आतम भाव नै, इक निजर निहार ॥भ०॥१॥
आतम गुण आधेय नौ, नवपद आधार ।
एह अभेदोपचारियै, निज आतम विचार ॥भ०॥२॥
आतमता नवपद मई, नवपद आतमता ।
नवपद भावैं परिणम्यै, निज गुण नो करता ॥भ०॥३॥
नवपद ध्याता भवि थया, त्रिण कालै सिद्ध ।
ज्ञानसार गुण रत्न नौ, नवपद नव निद्ध ॥भ०॥४॥

॥ इति नवपद स्त ॥

सं० १८६२ ज्येष्ट कृष्ण पक्षे १० तिथौ मंगलवासरे पालीताणा नयरै ॥
सं० १८७६ मि० फागुण वदि १२ दिने लि० पं० रत्ननिधान श्री
बीकानेर मध्ये ॥ पत्र ४ संग्रह में ॥

सप्त-दोधक

परणामी परणांम तैं, बांधै आठूं कर्म ।
करे कर्म फल भोगवै, इहै जिनागम मर्म ॥१॥
पै जैसे परणांम मैं, वरतै आतम रांम ।
तैसी तैसी प्रकृत कौ, बंध कहावत नांम ॥२॥
मिथ्यात्वै चो प्रत्यई, करत कर्म को बंध ।
अविरत प्रकृति ति प्रत्यई, होत बंध की संध ॥३॥
सूखम गुण ठांणग हुवै, जोग कसायक बंध ।
करि है जोग संजोग में, होत अयोग अबन्ध ॥४॥
परणांमी परणाम कौ, कर्त्ता कारण हुंत ।
बंध कारणैं कारणीं, है परणांम सु संत ॥५॥
कर्ता जो परणांम नहि, कहि है जीव संबंध ।
तौ ऽयोग गुण ठाण लहिं, क्यौं न करै क्रम बंध ॥६॥
चेतन है निज रूप कौ, कर्ता तीनूं काल ।
निज सरूप अठ सिद्ध कौ, भेदाभेद निहाल ॥७॥

इति श्री ज्ञानसारजिद्वजि विरचितं सप्त दोधक

कुंडलिया

१. (जूआ)

जूआ रम धन कुं चहै, सेवा करकै मांन ।
भीख मांग भोगैं चहै, सबै विडंबन जांन ॥
सबै विडबन जांन, भीख में भोजन चलि है ।
तौ भी कुसल मनाय, मांन सेवा क्युं मिल है ॥
कहि नारन कवि मीत, द्यूत सों धन कब हूआ ।
व्यापारी व्यापर करै, क्युं, रमि है जूआ ॥१॥

२. (पक्षी और मुनि)

पंखी अरु मुनिजनन की, रीत एक नहि दोय ।
वे फिर फिर चेजो चुगै, फिरै गोचरी सोय ॥
फिरै गोचरी सोय, रात दिन वन में वासा ।
एक दिवस लघु बिरख, वडै तरु पंच प्रवासा ॥
पुर निहचै नहि रहै, उडंजै दिस बिन भंखी ।
कहै नारन कवि मीत, सुनी जे आतम कंखी ॥२॥

यक्षराज स्तुति

श्री चिन्तामणि पार्श्वेश सेवको यक्षनायक,
श्री मच्चिंतामणि नामः शोभमाने निज श्रिया ॥१॥
गजाननश्चतुश्पाणि श्यामांग कूर्म वाहनः
श्री पार्श्वापर नाम्नास्तुः सेवकोयः सुखप्रदः ॥२॥
यत्प्रसादाद्बहुः भक्ति लोको भृत सुख भाजन ।
सांप्रतं विद्यासंचापि सश्रियेस्तुसुधर्मणाम् ॥३॥

इति यक्षराज की स्तुति

श्री जिनलाभ सूरि बारखड़ी कवित्त

स तमत साहसवंत, सा हसीकां सिर टीको ।
सि र सूरां सिर सेहरो, सी ल पालण तन नीको ॥
सु मति गुपति सहु धार, सू र गुण सिंहला राजै ।
से वक कूं सुख दयण, सै ल अस मारग साजै ॥
सो सै सदीव सोभाग धर, सौ ध सकल सुगुण सुथिर ।
सं सार पार तारण सदा, स दगुरु श्रीजिनलाभ वर ॥

इति श्री जिनलाभसूरि राजानां सकार द्वादशाक्षरी गर्भिता रचाति विदिता विपश्चित ज्ञानसारेण ।

सवैया तेतीसा

झलहलतो भानु किधुं, शारदा को चंद किधुं,
सुख हू को गाज, मनु अवाज घनराज कौ ।
भुजल प्रचंड किधुं, सुमेरगिरि दंड चंड ।
साहस जिनचंद किधुं, सत्त मृगराज कौ,
छाती कौ कपाट किधुं, कपाट जंबूद्वीप जू कौ ।
राजहंस चाल किधुं, गमन गजराज कौ ।
सुगुननि कौ आगर यूं, सागर रत्नाकर सौ,
सूर कौ प्रताप किधुं, प्रताप गच्छराज कौ ॥१॥

कृतिरियं पं० प्र० ज्ञानासारगणेः ॥

अथ पूरब देश वर्णनम्

छंद—त्रिभङ्गी

कैई मैं देख्या, देश विशेषा, नति रे अवका सब ही में ।
जिह रूप न रेखा, नारी पुरषा, फिर फिर देखा नगरी में ।।
जिह कांणी चुचरी, आधरी बधरी, लंगरी पगुरी है काई ।
पूरब मति जाज्यौ, पच्छिम जाज्यौ, दच्छिण उत्तर हो भाई ।।पूरब०।।१।।
ती करै सुहोवै, बैठां सोवैं पुरुषा जोवैं नैनन सैं ।
पति सैं नां पालै कांन खुजालैं, वैन निकालैं वैनन सैं ।।
तबही धमकावै; सामी धावैं, लाठी लोठी लै साही ।।पूरब०।।२।।
थण लटक्या थरकै, केसां फरकैं अधर फुरकै अति रीस ।
जे रंगे काली है कंकाली, चण्डी काली ज्युं दीसैं ।।
चख जैनी छोटी, पुंदां मोटी, वाटैं घोटी ज्युं वाई ।।पूरब०।।३।।
पुंदां घट घालै, बांहैं झालै, टेडी हालैं जे हालै ।
नदियैं घट पेलैं मुड़दौ ठेलैं पांणी झेलैं अब[1] चालै ।।
फिर पाछी वलती[2], बातां करती, धम धम चलती घर आई ।।पूरब०।।४।।
घट धर निज घर मैं, गमछौ करमें, हित दे सिरमैंले नलमें ।
हित हलदी संगै, अंगो अंगै, सबही रंगै बिन सिरमें ।।
कपड़ौ कर धारै, मैल उतारै, रगड़ा मारै लोगाई ।।पूरब०।।५।।
नरनारी मिल मिल, भेला भिल भिल, बोली किल बिल सहु बोलै ।

१—फिर २—फिरती

कडि सूधो काई, पूंदां ताईं, पाणी में धोती खोले ॥
क्या पुरुषा नारी, वधु कुमारी, क्या बेटी अरु क्या माई ॥पूरव०॥६॥
सब मिलि नैं हेलैं, हेला हेलैं, रामत खेलै इक इकरै ॥
ऊभी हुय खांधै, मूठी बांधै, घुस्सा सांधै राड़ करै ।
इक नैं इक पेलैं इक इक ठेल, पड़ती डुब्बो लैं खाई ॥पूरव०॥७॥
तट बाहिर आई, खड़ी रहाई, क्या बहूआं अरु क्या सासू ।
कड़ि वेणी लटकै कपड़ै फटकै, पाणी झटकै केसां सूं ॥
क्या छोटी मोटी, क्या अवरोटी, केस न बांधै लोगाई ॥पूरव०॥८॥
सिर चरच सिन्दूरैं, मांगन पूरैं ताजू चूरैं सब अंगै ।
कड़ि धोती बन्धैं आधी खंधैं, कुच न ढंकैं सिर नंगै ॥
कर में मंख चूरी, खांच न पूरी, सोइ अधूरी बलि काई ॥पूरव०॥९॥
कैं कानैं तोटी छोटी मोटी, नकवेसर लैं नाक धरै ।
वांका पग राखै, कड़लां सांखै, चलतां खड़का खड़क करै ॥
ब्रह्माजी रीसैं, निरमी दीसैं, रूप न दीसै इकराई ॥पूरव०॥१०॥
मकसूदाबादै, श्रै संवादै, राजगंज सूरीत तणी ।
क्या वरणूं महिला, वरणी पहिलां तिण हुं आधिकै रूप वणी ।
जे नहिं निरलज्जा लज्जा सज्जा, परणी वरणी जे ल्याई ॥पूरव०॥११॥
कुच बाँधै तापड़ गोड़ां आपड़ ईस अढ़ाई हाथ करै ।
पर गांमें, जावै विच नय आवै, खोली तापड़ खंध धरै ॥
मादर की जाई, घसै लुगाई, पहिरै कांठै फिर जाई ॥पूरव०॥१२॥
जनपद पल अच्छी, मारै मच्छी, क्या मोटा अरु क्या छोटा ।
क्या कोई धीवर, क्या फुनि धिजवर, खानै पीनै सब खोटा ॥
क्या नइया दरजी, उनके मुरजी, क्या धोबो अरु क्या नाई ॥पूरव०॥१३॥

जो ब्रह्म विचारै, वैन उचारै, अध्यातम रूपी दीसै ।
जल कंठै जाई, न्हाई धोई, जप करतां जलचर दीसै ॥
कर धर जपमाला, मच्छी वाला, पकड़ी थेलै पधराई ॥पूरब०॥१४॥
वेदध्वनि करता मारग चलता, इक हाथी मच्छी लावै ।
विण न्हायौ भींटै, टेढी मींटै, देखी पाछौ फिर जावै ॥
गंगा जल नाही, फिर भींटाई, फिर आवै अरु फिर जाई ॥पूरब०॥१५॥
अति रोगी देखै, आयु विशेषै, कांठै खड़िया आय धरै ।
पाणीमुख चोवै, जल पगडोवै, हरिबोल हरिबोल करै ॥
आमीनूं मरवै[1], रोगी करवै[2] बोल हरि कहि सां वाई ॥पूरब०॥१६॥
यूं करतां मूऔ, कारज हुऔ, राजो संगी सब आधी ।
कर पूलौ जालै, मुहड़ौ बालै, पाणी घट दै गल बांधी ॥
जल मोहि डबौवै, फेर न जोवै, कोय न रोवै जल नाही ॥पूरब०॥१७॥
रोगी नहि मूऔ, कांठै सूऔ, बांधी भूपड़ तिह वैसे ।
घर के पुहचावै, बैठो खावै, नगरी मांहे नहीं पैसै ॥
मुड़दापुर ठावै, नाम धरावै, हंसै रमै तिह हुलसाई ॥पूरब०॥१८॥
श्रावक घर दाई, रहै लुगाई, झवमची माई जाई ।
घर पीसै पोवै, चून समोवै, तरकारी दै छमकाई ॥
सब झाडू देवै, व्यंजन लेवै, बाल खिलावै हुलराई ॥पूरब०॥१९॥
चूलौ संधूकै, फूंका फूंकै, जल भर धर दै बटलोई ।
आधण ऊकालै, दाल डालै, बाहिर आवै पग धोई ॥
इक लुण न घालै, सोई टालै, पिण चौकैरी चतुराई ॥पूरब०॥२०॥
इक धाइ ल्यावै, बाल धरावै, घर राखै कब घर जावै ।

१—मरवो । २—करवो ।

खुश खाणौ खावै, ज्युं पय आवै, श्रावक बालक यण पावै ॥
बालक कढि ल्यावै, डेरै आवै, पाछी जावै पल खाई ॥पूरब०॥२१॥
तब दूध विछूटै, सीरां खूटै[1], पीवै बालक पेट भरी ।
अति शिशुता जावै, नाज हिलावै, ल्यावै, बालक भेट करी ॥
निज घर में आवै साथ खिलावै, तिण हाथै खाणौं खाई ॥पूरब०॥२२॥
को जात न जाणै, पांत पिछाणै, फिरती आवै परदेशी ।
बाईजी दाखै, रांधन राखैं, दरमावौ कपड़ा देसी ॥
घर में जीमासी पांणी पासी, कौल करी ने रहि काई ॥पूरब०॥२३॥
क्या वर्षा कालै, क्या सीयालै, ऊनालै कण गण चालै ।
सब नाज सुकावैं, धूप दिखावै, पाछा ठामै बलिवालै ॥
इम दिन दो जावै, फूलण आवै, पींडा ईंडा पड़जाई ॥पूरब०॥२४॥
दिन वधता पावै नाज सुलावै, सब में कीड़ा पड़ि आवै ।
तिणखासन गाडै, भरैज भांडै, तोही पींदै सड़ जावै ॥
घर अंगण नीलण, अंदर फूलण, सब धरती वुस वुस आई ॥पूरब॥२५॥
घर वस्त्र विछावै, जौ न उठावै, जमां न पावै के दिन में ।
ऊंची घर राखै, खूंटी साखै, पवरी रंग गमै छिन में ॥
पवरी ज्युं सबही साडै तबही, पुरसा तमक्कूं चल जाई ॥पूरब०॥२६॥
अति मोटा गोला, भेल समेला वांसा खूंटी घर गाडै ।
वांसां छत छावै, तेथ रहावै, राई सरसूं के गाडै ॥
घर सरदी सेती, नीचै केती, थोड़ा दिन में लग जाई ॥पूरब०॥२७॥
दुर्गन्ध विछूटै, नाक न भीटै, खाधौ पाछौ फिर आवै ।
चौ पक्ष प्रमाणै शास्त्र बखाणै, ऊंचो जोजन सित जावै ॥

१—छूटे ।

सो इण देसे सुं, नहीं दूजै सुं, भगवन साची फुरमाई ॥पूरब०॥२८॥
इक चौरौ नांमै, तिण परणामैं, बोली बोलै फिर तैसें ।
मुख मिन्नी परखौ, कांने सरिखौ, पखी होवै तिण देसै ॥
नव बालक पावै, छातैं जावै, फरसैं बालक मरजाई ॥पूरब०॥२९॥
रगचूं च्यौं गाढ़ो, अेकी आड़ी, रस्सै कांटौ अटकावै ।
नर पीठ विडारी, कांटौ डारी, दोरी दूजी हिस सावै ॥
अब इकन (र) फेरै, खाधौगेरै, ख्याली छांटा छिरकाई ।।पूरब०॥३०॥
जे क्षांमित कामैं, केई पामैं, पीठ फड़ावै के यूंही ।
हम निजरै दीठी, तिणै न झूठी, देखी ज्युं लिख दी त्यूंही ॥
अैतव जिण कीधौ, तप पद सीधौ, चरखवाण औ कहिलाई ॥पूरब०॥३१॥
नर कांठै आवै, मुड़दा ल्यावै, मंत्रै मंत्रो उठावै ।
हड़ हड़ हसावै, चिणा चबावै चाव्यां नै फिर निगलावै ॥
बलि दोय उठावै, राड़ करावैं इण मंत्रैं सत्ता पाई[1] ॥पूरब०॥३२॥
को धोती धोवै, पोत निचोवै, भातैं भींट्या जात गई ।
होकौ नहीं पावै, कुण जीमावै, सगपण री तो बात किहां ॥
सब नात बुलाई, घर जीमाई, जात गई सो फिर आई ॥पूरब०॥३३॥
थोड़ै में जावै, बेगी आवै, हलकी में तो संक किही ।
जो ओछी जातां, तिनकी बातां, वड़ जातां में रीत नहीं ॥
पिण के अधिकाई, निजरे आई, सुणौ कहूँ हुं समझाई ॥पूरब०॥३४॥
घर फाड़ी पैठो, निजरै दीठो चोर कही कही कुण तैनै ।
इक तौ अधिकाई कहो सुणाई, बीजी सुण लो जो जे न ॥
सीदैं अथि वींचे, पकड़ी मींचे, रस्सी धांधै मचकाई ॥पूरब०॥३५॥

१—इण विण सत्ता न रहाई ।

यूं जो ले जावै साहिब पावै ज्यो बोलै सो मुलकाई ।
बुलबुल इन चोरी, नांही तोरी बल्बल् इनके हैं ग्वाही ॥
साखी तब भाखै हमरी साखै, बांध्यौ सीदैं बिच माई ॥पूरब०॥३६॥
तस्कर तब आखैं, झूठ न दाखैं, हम मानुज हुरमत वाले ।
इन हुरमत लीधा, चोरी दीधा, हमतौ हैं इनके साले ॥
तब साहिब बोवै, चोर न होवै, तौ तुमरे हैं सदाई ॥पूरब०॥३७॥
कोई यु बोलै, इनकी भौलै, चोरी करनें को नाठौ ।
उन सीदैं आए, नार बुलाए, चोरी दे पकड़्यो काठौ ॥
बंदर ज्युं धासी, जाणै खासी, चोरी बाहर नहि काई ॥पूरब०॥३८॥
कोई इक थाटैं वातां थाटै, जाव बणावी न झूठौ ।
पहिली बुलाए इनके आए; घर में पैठां फिर बैठौ ॥
हम कूंदी चोरी, बाहां मोरी, जोरें जूती जरकाई ॥पूरब०॥३९॥
कहि हुरमत लीना, हमरे दीनां, पंचू मांहे सिर जूता ।
हम साहिब देवैं, सब सह लेवैं, बल्बल् तुमरा क्या बूता ॥
तब तस्कर हाथैं, साहै माथै, पड़के जूती पड़ जाई ॥पूरब०॥४०॥
बाजारै आवै, चोर डरावै, व्यापारी नै यूं कहिनै ।
मांगो सो देस्यां, फेर न कहिस्यां, सौदो लेस्यां सब मिलनै ॥
पण अधिको लेस्यो, दूणो देस्यो, समझी लेज्यो समखाई ॥पूरब०॥४१॥
के चौड़ै धाड़ै धाड़ा पाड़ै, नाम लिखावी दफ्तर में ।
चोरी जो लावै, आधो पावै, आधो साहिब मिन्दर में ॥
अब कोय न चिन्ता, हुआ निचिन्ता, मौजां माणै मन भाई ॥पूरब०॥४२॥
बड़ गंगा संगा, अंग पसंगा, रंग तरंगा लघु गंगा ।
भागीरथ लाई इण दिशिआई, उदधै धाई उम्संगा ॥

तिण नामै कत्थी, भागीरत्थी, शिव शासनकी सा माई ।।पूरब०।।४३।।
जलधार पवाहैं, इण दिशि वाहैं, के देशन कौ मल ताणी ।
गंधोधर सेती, चासा खेती, खातन नांखै को आणी ।।
पिण कण अति छोटौ, कोफल मोटौ, रस कोई मैं न भराई ।।पूरब०।।४४।।
सब नीरस खाणौ, रस नहीं हाणौ दाढ़ैं चावो नैं देख्यौ ।
सब फीकौ लागै, स्वाद न जागै, परखा परखी लै पेख्यौ ।।
इक आंबा मनहर, स्वादे, माधुर लाखे कोड़े न गिणाई ।।पूरब०।।४५।।
जीतां दे मारैं, मुड़दा तारैं तिण मुड़दा तिरता दीसै ।
ज्युं गीदड़ पच्छी, वलि पल भच्छी, कउआ सिकरा अति रीसैं ।
इक चुंचा चारैं, इकैं पछारैं, निवला पंखी उड़ जाई ।।पूरब०।।४६।।
अब चूंचां मारै, उदर विदारैं, मांसाहारैं अति रत्ता ।
लंबौ मुख थोथर, मानुं कोथर, पल गटकावैं उन्मत्ता ।।
अब गीदड़ ऊडै, तिरै न बूडै, आठो मुड़दा भख जाई ।।पूरब०।।४७।।
दोनूं तट तीरैं, नीरैं सीरैं, घन वनरासई पसराई ।
किण वरणी जावै, पार न पावै, रायपसेणी ज्युं गाई ।।
त्युं देखी नैना, भाखी वैना, वर्णन कर नहीं वरणाई ।।पूरब०।।४८।।
गाम्हां बिच मिन्दर, मोटा सुन्दर, अति ऊंचा पर आगासी ।
तिह बैठा लहिरी मोजी लहिरी, मिसं मांनुस ज्युं सुर वासी ।।
औना घर वर घर, मानुं सुरपुर गंगा दर्शन तट आई ।।पूरब०।।४९।।
जल नभ आकारैं, तिण परचारैं, देव विमानै वलि देवा ।
तिम नावा नांना, देव विमाना, सुरवर सम सहिरी लेवा ।।
ते वेक्रिय सगतैं, चालैं युगतैं, इह डांड्र मै देही ।।पूरब०।।५०।।
मेली घर द्वारैं, नौका वारैं, ऊतर आपणैं घर पसै ।

तिम उड़ पामेले, अधरा चालै, मूल विमानैं जइ वेसे ॥
इह कोसी जूती, धरती हूँती, ऊंचा पिण तिण रहि जाई ॥पूरब०॥५१॥
ए सहु परदेशी, नहीं इण देसी, जांम्यौ बंगालै जिनकै ।
सिर नाहीं पघरी, माथौ गगरी, पवन शिखा ज्यूं पट फरकै ॥
नख शिखलुं गहिणौ, नाम न कहिणौं, इक धोती री ठकुराई ॥पूरब०॥५२॥
भेला जब वैसे, औसा दीसै, जैसी कउआं की माला ।
क्या वरी कुमारी, वुड्डी नारी, कारी त्युं ही नर काला ॥
क्या शोभा कीजै, देख्यां रीझै, इक जीभैंगुण न कहाई ॥पूरब०॥५३॥
रूपैं कर नारी, वरणन भारी, तन काजल रौ खरच घणौ ।
क्या पुरुषा नारी, रंगै कारी, रूपाली अरु गोर पणौ ॥
सों कर्म प्रमाणैं, इण दिस जाणैं, सौ मांहे पिण सो कोई ॥पूरब०॥५४॥
अप अपणौ थाटै, नौका थाटै, के गज मुक्खी लिख पक्खी ।
के बारासिंगीं, केय कुरंगी, के रोझी के मुखमच्छी ॥
के बत्तकपक्षी, सिंहामुक्खी, के घुड़दौड़ी निपजाई ॥पूरब०॥५५॥
हुअ बाबू भेला, सहू समेला, मिजलस मेला में आवै ।
त्रिशौदी नालै, वरषाकालै, वर गंगा जल भर जावै ॥
वण पङ्कज जातैं, मोटे पातैं पवनै परमल पसराई ॥पूरब०॥५६॥
वेश्या सँग लावे, नाच करावैं, अति रूपाली जे अगे ।
तत्ता तत थेई, थेई थेई, साज बनावै सब संगै ॥
अति मीठो गावै, नाच थटावै, घस आवै अप्सर धाई ॥पूरब०॥५७॥
कूदण अरु नाचण, खावण पीवण, नावां ऊपर ही होवै ।
चंदनि जब छिटकैं कौलनि चिटकै, के जागै ज्युं के सोवै ॥
वौलैं बोलावै भमरौ आवै, संग करै पति पौढ़ाई ॥पूरब०॥५८॥

दिनकर दिन चारै, वात उचारै, कौंला मानं सो झूठी ।
षट्पद के संगैं, अंगो अंगैं, रमती रंगै, हम दीठी ॥
कौंलन दल आखैं, रीसें झांखे, कौंलनि नेना[1] भरि आई ॥पूरब०॥५६॥
जिह पङ्कज नारी, खेचरयारी,[2] करनै खेलै कुज्जोड़ा ।
के नारी वरसैं, ज्ञारन फरसैं, ते ठामें रहिसज्जोड़ा ॥
भलचर री जावै, पड़दै आवै, पिण पड़दै में ठगाई ॥पूरब०॥६०॥
इक नौका जावै दूजी आवै, वांधै इक नै इक सेती ।
के जारै ल्यावै, आपण जावै, १ल करै नर सू केती ॥
यूं रहिन भेला केतो वेला, न्यारी नावां कर जाई ॥पूरब०॥६१॥
ऊजाणै आवै, भाठी जावै, नइया साडी मिल गावै ।
सहु साडी तालैं, वैठा चालै, समभ्रणदाणा भर ल्यावैं ॥
लचका भम्मलिया डांडा कलिया, आगै सहु सूंवे जाई ॥पूरब०॥६२॥
तिरता नौ सोहै, जन मन मोहै, मांहै वैठा सव सहिरी ।
जल ऊपर मिन्दर, सोहै सुरवर, मांनू भासी सुरगपुरी ॥
क्या शोभा कीजै, देख्यां रीझै, वरणन सूं वरणीनाई ॥पूरब०॥६३॥
वरसालौ आवै नदी भरावै, वधतै पाणी विस्तारै ।
मचांण वंधावै तेथ रहावै, इक इक नौका घर द्वारै ॥
तिण ऊपर आवौ, तिणसु जावौ, वलि जल भासी वनराई ॥पूरब०॥६४॥
नहीं काली घट्टा, वादल थट्टा, मोटी छंट्टा सूं वरसै ।
नहिं मोर झिंगोरा, दादुर सोरा, पपिहा पिउ पिउ पो तरसै ॥
विन वरसा कालै, क्या मीयालै, ऊनालै घन वरसाही ॥पूरब०॥६५॥
वहु कीचड़ मच्चै, लच्चा पिच्चै, लचलच धरती लचकावै ।

१—अंखियां । २—खेचरथारी ।

को भोलै भावैं, पांव धरावैं, कट तट सूधी धस जवै ॥
धर मत्थे मानूं' निगलो जांनूं', अवतारे कर उपमाई ॥पूरब०॥६६॥
सगटी ज्युं धर पर त्युं जल ऊपर, नौका चालै जन बैठे ।
को संक न आनै, सब तिर जानै, घर जाणी तिण में पैठे ॥
ढेऊ जब पावै, नीचो जावै, उठि आवै फिर धस जाई ॥पूरब०॥६७॥
नौका सूं आणौ, नौका जाणौ, आर पार रौ काम घणौ ।
गोदारै बैसे, जन सुविशेषै, ठीक न राखै भार तणौ ॥
धारा में आवै धक्कौ खावै, के डूबौ के तिरजाई ॥पूरब०॥६८॥
तब मौज न काई, जीव डराई, कला न काई बरि आवै ।
हाहा कर रोवैं, सब जन जोवैं, कोय निकालण नावै ॥
क्या बाबू बेटा, उनके घोटा, गंगामाई गिलजाई ॥पूरब०॥६९॥
भातै परभातैं, खावैं रातैं, फिर ढक राखै दे पाणी ।
दूजो दिन जावै, बुच बुच आवै, खावैं खुश खाणौ जाणी ॥
अब मौज सुणेज्यो, हांस न कीज्यो, मुगती चूरै मिरचाई ॥पूरब०॥७०॥
जो मौजी बढीया, मौजे चढीया, आदरक कचू भातां में ।
नींबू नोचोव, लूण देवै, भात पखाल कहै नामें ॥
देख्यां घिण आवै, स्वादै खावै, सूग न लावै इक राई ॥पूरब०॥७१॥
इण विण पिण खाणौ, भातै जाणौ, दाल दूसरी अरहर की ।
को चून न खावै, भोलै भावै, पेट दुखावै मरदूं की ॥
चक्की नहीं पावै, केतै गामैं, ढीकी कर कण कूटाई ॥पूरब०॥७२॥
जौ भोलै खाधी, रोटी बाधी, ऊपर आधी फिर खाधी ।
तौ उदर पीड़ादै, रद करावै, नांहि पचावै ह्वै व्याधी ॥
तिण कोई न खावै, देख डरावै, सिखी खाधां मरजाही ॥पूरब०॥७३॥

सब देस मसेरी, चौदिस घेरी, बिच खाटैं घर सो जावैं ।
जो चौड़ै पौड़ै, वस्त्र न ओढ़ै, मच्छर चटका चटकावै ॥
यूं रयणी जावै, नींद न आवै, दुखमा परगट दरसाई ॥पूरब०॥७४॥
ए मच्छर खोटा, इन सुं मोटा, अति डांसा पिण तिण देसै ।
चूंचां पिण लम्बी, पांउ पलम्बी, वन वन छांही दब बैसे ॥
रैणी जब आई, तब ऊड़ाई घरघर मांहे धस जाई ॥पूरब०॥७५॥
अति शोर मचावै, लोक डरावै, दौड़ी जावै के ऊंचा ।
के पड़दै पैसे, चौड़े बैसे, मारै जम दोढ़ पर चूंचा ॥
तब खाज खुणावै धसल लगावै, केते मच्छर मरजाई ॥पूरब०॥७६॥
परभातें देखै, न्यारी पेखै ठाम ठाम कपड़ै छूंटी ।
क्या सब राती, हरी न पाती ओल बन्ध नहीं अतिछूटी ॥
आ अनुभौ दीठी, तिणै न झूठी, वीतक करणी बतलाई ॥पूरब०॥७७॥
पिण देश न जूका, धोती हूका, पट देख्यां नहिं पावै ।
इनकौ इक कारण भाखै नारण, लोही बिन कुण निपजावै ॥
सब रंगै पीला, अंगै सीला, पुरुष नारी नहिं गाई ॥पूरब०॥७८॥
दासी कहि दाई, वेश्या बाई जी कारै रांधण जाई ।
जल खाणौ भाखै, पूरी चाखै, बीबी दाखै बलि बाई ॥
वैद्यै कविराजा, बोल झाझा, मूंआं कहि गंगा पाई ॥पूरब०॥७९॥
जुरुआ कहि नारी, घर कूंवारी, पनरस भाखै पुन्यूं कुं ।
बट्टम जे डंडो, मोग्या रंडो, गाळ कहै सब वृद्धुं कुं ॥
पागल कहिं गहिलै, महिलो महिलै, खातै सौंदि सु बतलाई ॥पूरब०॥८०॥
बहिणै कुं भसणौ, हेलण तिरणौ, डाक हाक कुं बोलावै ।
जिह नाज भरावै, गोलौ गावै, वाटो साडो जोग वै ॥

ऊतरतौ पाणी, भाटी वाणी, चढ़ै उजाण सु कहिलाई ॥पूरव०॥८१॥
फरियादै नालस, पंचां सालस पछ्कु हमरा कहि नामै।
डांडारु वैठका चपू काठ का, गमछा रूमालै गावै ॥
लज्या कु हुरमत, विष्टा इल्लत, भाखै साखी कुं ग्वाही ॥पूरव०॥८२॥
नहि नर आकारी, वृद्धा नारी पुरुषा भाषै सहुतेनै।
ववुआ कहि छोटै, वावू मोटै. पुत्र न भाखै को जैने ॥
वैसण नै थाकौ, खाणौ होक, इतनी वोली देखाई ॥पूरव०॥८३॥
पति वैठो जोवै, जारो होवै. नारी सोवै, जारां सूं।
पति कोय न पालै, नीचौ भालै, जोर न चालै दारा सु ॥
आ इण ही देसै, रीति विशेषै, किण ठामै निजरे नाई ॥पूरव०॥८४॥
पति नाहि सुहावै, दूजी ल्यावै, अदालत में को नावै।
जो कोई झगड़ै, टांगं रगड़ै, कवही साहिव तो पावै ॥
जोरू की नालस, लाये सालस, हम वीवी के हमराई ॥पूरव०॥८५॥
यूं न्याव निवेड़ै, तिणै न छेड़े, पड़ै न केड़ै को रंडी।
तिण अति मदमाती, जारें राती, गिणै न राती क्या मंडी ॥
तिण नारी कीधो, ऊंधो सीधो, सीधो ऊंधीनर गाई ॥पूरब०॥८६॥
घर पेले पारै. ऊलैं डवारैं, पीहर जेनौ सो नारी।
पीहर मिस सेती, सासर हूँती जोखें खेलै केजारी ॥
नारी संकेतैं, घर पीहर तै, वोलावण आई दाई ॥पूरव०॥८७॥
माई वुलाई भेजी आई, हम वहुआरू लैने कूं।
नावैं वेसावैं, म्यानै ल्यावै, पाछो फेरै म्यानै कूं ॥
अव ढकी न्यावैं, तिह लै जावै, जिह पर जारै वतलाई ॥पूरव०॥८८॥
तिह रहिनैं रातैं, वलि परभातै, पीहर घर में अव जाई।

तुम नांही बुलाई, हमतो आई, मयो हमकूं न सुहाई ।
पीहर न पिछाणैं, पति नहि जाणैं, अधि विच जारी करि आई॥पूरब०॥८६॥
कुट्ठलियौ वसति, नारी ससती, नारैं घ.वै सो जावै ।
को अछी बोलै, थोड़ै मोलैं, हम तुमरे घर में आवैं ॥
अढ्ढाई तीनां, रुपीयां दीनां, लूंठै घर में धस जाई ॥पूरब०॥६०॥
कया नर अरु नारी, चावै जारी, जो इण देसैं सुखे रहो ।
को राज न सका, तिणै निसंका, मन मानै सो सुणौ कहो॥
इक चोरी जारी, तणी नकारी, देखी परगट दरसाई ॥पूरब०॥६१॥
इक माट भरावै, दही भरावै, नित कौ तै में ते ठावै ।
पिलू पड़ जावै, पांख्यां आवै, पंखी पांखे उड़ जावै ॥
इम वच्छर पावै, ठाहौ ठावै आछ्र रही सो उठि आई ॥पूरब०॥६२॥
सो पाणी पीवै, राजी जीवै, घण दुरगंधी अति खट्टौ ।
तव मस्ती आवै, सुद्ध गमावै, किह पघरी किह दुप्पट्टौ ॥
खट्टी मुंगोरी त्युं कचोरी, खट्टो खाणौ खुस खाई ॥पूरब०॥६३॥
पूरव अति रोगी, मूल न सोगी, परगट देख्यौ नैनां सूं ।
जो रोग लखीजै, तौ बोलीजैं, पिण कारण छै तीनां सूं ॥
मुड़दा जल पीणो, वायू लूणौ, तड़कौ रोगैं उपजाई ॥पूरब०॥६४॥
दिन में कै तरके, पवन फरूकै, खिण सरदी अरु खिण सीजै ।
खिण में ओढीजैं, दूरौ कीजै, पंखौ लीजै ठहिरीजै ॥
ए बाहिर ताई, रहितां पाई, अभ्यन्तर नहिं समझाई ॥पूरब०॥६५॥
खिण धूप खमीजै, सिर पकड़ीजै, घट घूमै अरु चल भारी ।
जौ तिणही विरीया, घट जल भरियां, माथ ढलियां कया कारी ॥
युं चित्त कुपावै, उद्धक जावै, मूर्च्छा कर धर पड़ जाइ ॥पूरब०॥६६॥

ज्युं धूपै कीधौ, त्युं ही सीधौ, वरण न जाणौ वलि वातें ।
पिण ते अधिकाई, दिन में पाई, औ पामीजै दिन सातें ॥
तिण इक अधिकाई, वातें पाई, अब पाणी वारी आई ॥पूरब०॥६७॥
सूतां नहीं रातैं त्युं परभातैं, ऊभ्यौ जाग्यौ जिण कालें ।
पाणी जौ पीवै, मरै न जीवै, पिण रोगी ह्वै तत्कालें ॥
उत्कृष्टी वेला, निश्चै पेला, निस्संदेहा वध जाई ॥पूरब०॥६८॥
के सेर दुसेरी, थेली ढेरी, चौ पञ्च सेर्यां के केई ।
के साता आठा, शिथिला काठा, पनरा सतरा केतेई ॥
अधमणीया केते, मणभर तेतै, के दो मणिया अढ्ढाई ॥पूरब०॥६९॥
के खंध उठावै, कड़िया जावै, चाकर पकड़ै के आगे ।
तब पीछै चालें, नहीं नहि हालै, चलता दीसै यू मागें ॥
इत उत लड़ थड़ता, पटका पड़ता, टांग धरै दक्षिण बांई ॥पूरब०॥१००॥
लम्बा के रद्दा, गोल गिरद्दा, के लटकंता के ऊंचा ।
के जांघां तांइ गोडा मांई, पीड़ग्रां पांई, केनीचा ॥
कोई जब बैठे, पोता हेठै, धर तिण ऊपर बैसाई ॥पूरब०॥१०१॥
केइ वैसंता, सास भरंता, मुख आगैं पोता मेलै ।
बालक जब आवै, थेलौ पावै, चढ़ कर कूदै के खेलै ॥
के हाटैं आवै, वही धरावै, लेखो मांडै लरझाई ॥पूरब०॥१०२॥
को डीलें पतलौ, पावां प्रथुलौ फील पांउ तिण रोगी कौ ।
नामे कर बोलै, गज पग तोलै, पांव हुवै सब कोई कौ ॥
क्या कोई धन धर, क्या निर्धन नर, त्यु नारी पिण का कोई ॥पूरब०॥१०३॥
यूं कोई हाथै, बांहां साथै, खंधा माथै गल फूलै ।
के छाती पेटैं त्युं ही मेटै, पेडु आवै त्यूं झूलै ॥

यूं जांघा आवै, ढींचण जावै, जल सब अंगैं उतराई ॥पूरब०॥१०४॥
ज्युं नर त्युं नारै एक विचारै, सब अंगैं जल सम होई ।
विण गूझैं खोरै, जल न किणीर वृद्धा छोटी क्या कोई ॥
नर एक नवाई, पोतैं पाई, और नहीं को ओढाई ॥पूरब०॥१०५॥
कविराजा आवै, नाड़ दिखावै, सरसूं सरसी इग गोली ।
देखंता देसी, पथ सूं लेसी, खान पान नहिं पथ मेली ॥
इक दूध पिलावै, दूध खिलावै, दूध वड़ी तिण कहिलाई ॥पूरब०॥१०६॥
पाणी नहिं पावैं, लूण न खावै, दूधे भावैं ज्युं पावैं ।
यूं सेर दुसेरी, धड़ी दुसेरी, के दस हुंती वध जावैं ॥
जे दूधे चढसी, रोगैं घटसी दूध वढै, विण मर जाई ॥पूरब०॥१०७॥
इक दूध बड़ी जिम, दही बड़ी इम, इच्छा वटिका तिम ऐसैं ।
विषधरैं कमावैं, गुटी वणावै, जहिर मिलावै फिर तेसैं ॥
कंठे कफ आवै, तौलुं खावै, मर जावै के वच जाई ॥पूरब०॥१०८॥
तीनुं ही नामैं, त्युं परिणामै, इच्छा वटिका जे भाखी ।
तिण अच्छा आवै, सोई खावै, इच्छा वटिका तिण दाखी ॥
सब शोथ उतारै, अंग समारै, विगरै देही विगराई ॥पूरब०॥१०९॥
इक तेल वणावै, आग चढावैं, अति ऊकालै जग आवै ।
तब अगुरी दीजै, जलै न सीजै, फरसैं शीतल फरसावैं ॥
यूं केती जातै, न्यारी भांतै, पाक तेल सब कहिलाई ॥पूरब०॥११०॥
किलकत्तैं कांनो, लूणो पाणी, लूनौ वायु फिरवावै ।
तिण तेल लगावै, के मरदावै, पीछै नावै सब जावै ॥
जौ पाक न पावै, सरसू ल्यावै, तेल विना को न रहाई ॥पूरब०॥१११॥
इक नाकैं फोड़ी, दोवै तोड़ी, नवसादर की नास दियै ।

फाका करवावैं, दिन दो जावै तीजै दिन कछु नाज लियै ॥
जो खबर न पाई, तौ विघनाइ, आठ आरोगै मृत पाई ॥पूरब०॥११२॥
इक वंसै पेरी, पोलै केरी, नामै चूंगौ बोलावै।
ते ग्वालण राखै, हाथैं साखै पीवै तिणसुं पय पावै॥
पय सब घर देवैं, फिरती लेवैं, मच्छी चूंगै भरलाई ॥पूरब०॥११३॥
इक लिंगा कारैं, मिट्टी सारैं, बैठक मांहेवो छूटै।
हुय ऊभी टेडी, बैसी डैढी, घड़ी घड़ा कर सूं कूटैं ॥
वट कादो जावै, पेट फड़ावै, विण महिनत मल न झड़ाई॥पू०॥११४॥
विघनर आराधै, मंत्रैं साधै, देवी सुप्रसन दै वाणी।
पञ्चासित मेघा, गैंडा दीधा, माजे सीधा तिण ठाणी ॥
तिण जंगल जावै तिहां रहावै व्यापारी संगै ल्याई ॥पूरब०॥११५॥
देवी धरभाखी, दोनु पाखी, कार करी तिण बीच रहै।
बाहिर पग चारैं, गैंडा मारै, माहैं रहितां क्युं न कहै॥
खग जात सुभावै, फिरचर आवै, थेही पर मल परठाई ॥पूरब०॥११६॥
मल मुंचन बिरियां, दारू भरियां, मारैं गोली मल धारै।
तब आंतां वेधै, एतै खेदैं, ओहेड़ी गैंडा मारै॥
अब चाम कटाई, ढाल बणाई, सिलहट रगै रंगाई ॥पूरब०॥११७॥
लट रेसम लावै, तूत खिलावै, मसती पावै घर मंडै।
घर मांहे पैठैं, तिण में बैठैं, पक्के घर जब तब खंडै ॥
तिण सेती पहिली, पाणी मेली, ऊकालै जब उकलाई ॥पूरब०॥११८॥
क्रम रेसम घालै, फिर ऊबालै, सीजै जब तब चरखी पै।
तारै बिलगावै, चरख फिरावै, सबल पटावै तिणही पै॥
युं कीटक कोवै, रेसम होवै, जीती लट जल सीजाई ॥पूरब०॥११९॥

काटी क्रम जावै, काम न आवै, कोयो निकमौ कहिलावै ।
जीतां सीजावै, कामै आवै, मूंऔ सो कामै नावै ॥
अति दुष्ट कमाई, करै सदाई, निरखी नैणा दिखलाई ॥पूरब०॥१२०॥
खंभ के लटकावै, केते ल्यावै, पात पात कर छीलावै ।
सब कुं सूकावे, फेर जलावै, भसमी पाणी भीजावै ॥
पाणी उतारै, कपड़ौ डारै, अब ऊकालै उकलाई ॥पूरब०॥१२१॥
गो अश्व मुताली, ठामै झाली, कपड़ौ घाली ऊबालै ।
युं मल छोड़ावै, कांठै जावै, धोई कपड़ौ उजवालै ॥
लो निर्धन होवै, इण विध धोवै, धन धर रजकै धोलाई ॥पू० ॥१२२॥
जो साबण धोवै, साबण होवै, चरबी चूनौ मेलाई ।
अब आग चढ़ाई, अति औटाई, सावण किरिया बतलाई ॥
जो द्रव्य दुगंधौ वस्त्र सुगंधौ, होवै कैसे कहिलाई ॥पूरब०॥१२३॥
वनराय वखाणूं, नाम न जाणूं, दीठा तरु जे इण देशे ।
जे किहां न दीसै, विश्वा वीसै, ते इण देशै सुविशेषै ॥
घण पंखी माला, वुड्ढा बाला, सरस सुरै नभ पूराई ॥पूरब०॥१२४॥
रौसैं विकराला, भादौ वाला, घन माला ज्युं तनु काला ।
फिरता दंताला, टलैं न टाला, मदवाला ज्युं मतवाला ॥
जंगल में दीसै, भरिया रीसें, थक पीसै मानुज धाई ॥पूरब०॥१२५॥
ज्युं ही सुंडाला, त्युं पूंछाला, मूंछाला अति मछराला ।
चख चंचल चाला, बीजलवाला, दे आफाला हाथाला ॥
गज कुंभ विदारै, गैंडा मारै, माणस री क्या अधिकाई ॥पूरब०॥१२६॥
गैंडा फिर यूंही, आरण त्युंही, टोलै टोलै फिर चीता ।
झिगी में बैसे, माणस दीसै, पकड़ै रीस सुवदीता ॥

मानुज कुं मारैं, पेट विदारैं, भूला सावज भख जाई ॥पूरब०॥१२७॥
दैसैं अति ऊंडो, लोकैं लूंडो, लोकैं मूंडो नहीं दया।
पर पीर न आणै, इज्जत जाणै, बढ़िया माणै गया दया॥
वागैं अति वणीयो, जाय न थुणियो द्रव्ये कमणा नहिंकाई ॥पू०॥१२८॥
वस्त्रैं अति ओच्छौ, देश न सुच्छौ, बोली काविल सुं मिलती।
रूपैं अति निघलो, पुरुष न सबलो, हिंसा नारक सुं मिलती॥
आचारैं उज्जल, चलणै कज्जल, लज्जा पांति नहीं आई ॥पूरब०॥१२९॥
देहे अति दुक्खो, सुक्खी लुक्खी, पुत्रे सुक्खी को दीसैं।
वसती अति बहुली, लंबी पहुली, सब घर बाड़ी ज्युं दीसै॥
स्यानां खड़खड़िया, श्रवणे सुणिया, घर घर दीसै न नवाई ॥पू०॥१३०॥
जो लोभी होवै, पूरब जावै, जात्रा चाहै सो जावौ।
तीर्थैं अति वारू, दर्शन सारू, जन्मन्तर जिन फरसावौ॥
आवण नाकारो, रोगैं सारो और रीत दिस दिखलाई ।पू०॥१३१॥
निंद्या नहीं कीधी, सबही सीधी दीठी जैसे ज्युं वगैं।
त्युं ही मैं भाखी, काण न राखी, भूठ न दाखी इक अगै॥
जनपद जिन देख्यो, जिणै न पेख्यौ, साच भूठ तिण परखाई ॥पू०॥१३२॥

॥ कलश ॥

घणुं घणुं क्या कहूं कह्यो मैं किंचित कोई।
सब दीठौ सब लहै, देस दीठौ नहिं जोई॥
जाणी जेती वात तिती, मैं प्रगट वखाणी।
भूठी कथ नहीं कथी, कही है साच कहाणी॥
पिण रहिसहू इक वात नौ, तन सुख चाहै देहधर।
नारण घरी अरु क्या पहुर, रहै नहीं सो सुघर नर ॥१३३॥

॥ इति पूरब देश छन्द सम्पूर्णम्॥
सं० १८७२ रै मिती माघ शुक्ल द्वादश्यां तिथौ गरुवारे।

❀ श्री गौड़ी पार्श्वनाथाय नमः ❀

॥ श्री माला पिङ्गल छंद ॥

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्त सुसिद्ध पद, आचारज उवझाय।
सरव लोक के साधु कुं, प्रणमूं श्री गुरुपाय ॥ १ ॥

प्राकृत तैं भाषा करूं, माला पिङ्गल नाम।
सुखैं बोध बालक लहै, परसम कौ नहिं काम ॥ २ ॥

असंख्यात सागर सवे, उपमा कैसैं होय।
श्रुत पूरव चवदै सकल, है अनन्त इह लोय ॥ ३ ॥

जो विद्या सब जगत की, इनमें रही मिलाय।
नदीनाथ के पेट में, ज्यों सब नदी समाय ॥ ४ ॥

पिङ्गल[1] विद्या सब प्रगट, नागराय नैं कीन।
लोक बहिर बुद्धैं कहै, पुन विचार अति खीन ॥ ५ ॥

शेष नाग वाणी रहित, फुनि विवेक तैं हीन।
लघु दीरघ गण अगण की, संकलना किम कीन ॥ ६ ॥

उरपर दुजिहा जात में, शेष नाग है मुख्य।
छंद शास्त्र रचना रचै, सो नहिं निपुण मनुष्य ॥ ७ ॥

ए सब कल्पित वात है, विद्या चवद निधान।
पूरव है उनतैं भयो, षट् भाषा को ज्ञान ॥ ८ ॥

---

१ छंद भेद सब ही

× अष्टगण–मSSS भSII ज ISI सIIS न III य ISS रSIS तSSI

संद मती कहै शेष ने, कहे छंद के छेद।
प्राणी सब की चाल पर, ताल छंद के भेद ॥ ९ ॥
छपन कोड़ है ताल के, तितै छंद विच्छेद।
ताल छंद की योजना, वढै छेद प्रतिछेद ॥ १० ॥
सबै छंद के ताल के, भेद प्रभेद लिखन्त।
गहन कठिन कुं आज के, देख ग्रन्थ अलसन्त ॥ ११ ॥
यातैं थोरे छंद के, लच्छण करैं सुशुद्ध।
गण अच्छर मत ताल जति, शोधो सकल विशुद्ध ॥ १२ ॥
ताल बन्ध विन छंद कुं, कैसे हू न कहाय।
ताल भंग तैं छंद की, चाल भंग हो जाय ॥ १३ ॥
बिन तालै सब जीव सुं, चाल चलो नहीं जाय।
ताल चूक जिह पग धरै, तिण[२] प्राणी अखड़ाय ॥ १४ ॥
छंद पदै विच यति करी, ताल मान संकेत।
हीनाधिक जति करति गति; भंग होत इन हेत ॥ १५ ॥
प्रत्यत्तें परिमाण कौं, भाख्यौ शास्त्र अभाव।
हाथ कंकणौ आरसी, किण कारण सद्भाव ॥ १६ ॥
पिङ्गल दधि खीरोधि सम, छंद भेद अणपार।
लघु दीरघ द्वै[3] गण अगण विवरन करुं विचार ॥१७॥

टिप्पणी कुशचन्द्र जी भंडार प्रति—स्थान अज्ञात
मस्त्रि गुरु त्रिलघु श्चनकारो मादि गुरु स्तत आदि लघुर्यः
जो गुरू मध्योमध्य लघूरसो त गुरूवः थितोंत लंतन्न घुस्तः ॥

२ तिह ३ दो

अथ लघु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथाः—

लघु अकार ह स तै मिलै, त्यों इकार मिल जाय।
पुन उ ऋ लृ सु रहस मिलै, पांचू लघु कहिवाय ॥ १८ ॥

अथ गुरु अक्षर लक्षण वर्णनम् यथाः—

आ ई ऊ ए हस मिले, ऐ ओ वहुर मिलाय।
औ अं अः हस कूं मिलै, ए नव गुरु कहिलाय ॥ १६ ॥

संयोगी की आदि में, जो लघु अक्षर होय।
ताकूं ही गुर जाण के, मात्रा गिणीयो दोय ॥ २० ॥

पद आदें अंतै गुरू, तैसे ही लघु होय।
हीनाधिक मात्रा चहै, लघु गुरु मानो सोय ॥ २१ ॥

अथ आठ गण लक्षण नाम वर्णनम् यथा :–(तोटक छंद-इकताल

मगणैं गुरु तीन भगण कहै, गुर एक धुरैं लघु दोय चहै।
जगणैं लघु दो अरु मध्य गुरू, सगणैं लघु दो पुन अंत गुरु॥ २२ ॥
लघु तीन जहां नगणैं भणियै, लघु एक धुरैं यगणै थुणियै।
गुरू दो लघु मध्य गणैं रगणैं; गुर दो लघु अंत करो त गणैं ॥ २३ ॥

अथ गण अगण फल अफल वर्णनम् यथाः–(पुनःतोटक छंद)

लखमी मगणै जस हो भगणैं, रुज भै जगणैं सगणेय भणैं।
बुध आयु करै, यगणे नगणैं, गमनै विनसैं रगणैं तगणैं ॥ २४ ॥

॥ दोहरा छंद ॥

रूपक कै आदै न कर, दाधा अक्षर आठ।
ह ज ध र घ न ख भ ए प्रगट, पूरव मांहि पाठ ॥ २५ ॥

अथ प्रथम मगण गण सुं सारंगी (इकताल) छंद लक्षण वर्णनम् यथा:–

आदैं आठैं जत्तैं जाणौ, आतैं दूजी कीजैं हैं।
पादैं पादैं पत्रैं दीर्घा, लध्वैं को ना लीजैं है ॥
बीजौ कोई जाणौ भेदा, सो तौ इन मैं नांही है।
पांचे मग्ना सारंगी में, भाख्यौ पूरैं मांही हैं ॥ २६ ॥

अथ द्वितीय भगण गण सुं दोधक (इकताल) छंदलक्षण यथा:–

च्यार भगन्न बनाय रु आंनहु सोलह मात पदैं पद ठानहु।
अंक विचार करौ गिन वारहु, लक्षण दोधक छंद उचारहु[४] ॥२७॥

अथ तृतीय जगण गण सुं मोतीदाम (इकताल) नाम छंद लक्षण यथा:–

पदैं पद वेद जगन्न मिलाय, करौ दस दो गिन अंक बनाय।
बतावत पूरब सोलह मात, कहौ इह मोतिय-दाम सुजात ॥२८॥

अथ चतुर्थ सगण गण सुं तोटक नाम छंद लक्षण यथा:—

गण वेद अभेद सगण्ण करै, पद में दस दो गिण अंक धरै।
सब षोडस मत्त अभिन्न गहौ, कहि नारण तोटक छंद कहौ ॥२९॥

---

४ विचारहु

अथ पंचम नगणै सु तरुल नयन[5] नांम छंद लक्षण वर्णन यथाः—

मति गति उकति अति करहु, नगन चउ गिन चतुर बहु ।
वरणदुदस लघु पद धर, तरुल नयन इन पर कर ॥ ३० ॥

अथ षष्टम यगण गण सु भुजंगप्रयाति(इकताल)नाम छंद लक्षण यथाः—

पदै च्यार यगन्न कौ साथ कीजै, भली वीस मत्ता सवै ठौर दीजै ।
यही पूर्व में भेद याका किया है, भणौ राज छंदा भुजंगप्रया है॥३१॥—

अथ सप्तम रगण गण सु कामिनी मोहन(इकताल)छंद नाम लक्षण यथाः

वेद रागन्न कौ मेल यामैं करै, वीस मत्ता पदैं सर्व मांहें धरै ।
पूर्व वाणी इसी धारकै लोजियै, कामिनी मोहनौं छंद यौं कीजियै ॥३२॥

अथ अष्टम तगण गणसु मैनावली(इकताल)नाम छंद लक्षण वर्णनंयथाः—

ठाणै जहां वेद तग्गन्न कूं जाण, वीसूं भली मत्त मेली करै आण ।
भाखी इसी पूर्व में केवली वांण, मैनावली नाम सो छंद कौ जाण॥३३॥

अथ लघु गुरु सम्बन्धित नाराच (इकताल) छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

उकत्ति मत्ति गत्ति अत्ति वीस चार हू कला ।
मिलाय कैं जु कीजियै सु अंक सोलहू भला ॥
इकेक अंक अंतरै लहू गुरु प्रमानियै,
कहो जु पूर्व बीच में नराच छंद जानियै ॥३४॥

---

५ तगण

अथ लघु गुरु सम्बन्धित प्रमाणका छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सु एक एक अंतरै, लहू गुरू वसू (८) करै ।
कला सु बारहों गहै, प्रमाण काय यों कहै ॥३५॥

अथ गुरुलघु सम्बन्धित मल्लिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आठ अंक हू गिणाय, दीह चौ लघु मिलाय।
पूर्व उक्ति युक्ति जान, मल्लिकाय यों बखान ॥३६॥

अथ कमल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिल नगणै लियै, दुतिय सगणैं दियै।
फिर लहु गुरु कियैं, कमल कहि दीजियै ॥३७॥

अथ यगण सु अर्द्ध भुजंगी संख नारी नाम छंद लक्षण यथाः—

भरौ दोय गन्नैं, तुकै भिन्न भिन्नै। दसौं मत्त सारी भणौ संख नारी॥३८॥

अथ अर्द्ध मोतीदाम मालती[६] नाम छंद लक्षण वर्णनम यथाः—

दोहा— जगन दोय कर एक पद, ऐसे पद कर चार ।
मत्त आठ इक एक में, मालति छंद निहार ॥३९॥

प्रसन्नह होय कहो प्रभु मोहि। कवै निरधार करो भव पार ॥४०॥

अथ प्रथम सगण गण सु अर्द्ध तोटक तिलका नाम छंद लक्षणयथाः

दोहा— सगण दोय सबमें धरैं, षट अंकै पद होय।
मत्त आठ इक एक में, तिलका नामें सोय ॥४१॥

---

६ मालती

करुणा करियै, मुहि ऊधरियै। विनती करिहूं कवलूं फिरहूं ॥४२॥

अथ रगण गण सु अद्धं कांपनी मोहन विमोहा छंद लक्षण यथाः

दोहा सोरठा— रगन धरौ इह दोइ, षट षट अंकै पद करौ।
माश्रा दस दस होय, नाम विमोहा छंद कौ ॥४३॥

संकटै वारियै, दीनकूं तारियै। बापजी क्या करूं, चाकरी भी फिरूं ॥४४॥

अथ मोहनी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

करहु प्रथम मत बार, दूसरै आठ।
मोहनी नाम कहियै पूरवै पाठ ॥४५॥

अथ मरकत माला नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलैं कीजै ग्यार, दूजै बारै दीजै।
मरकत माला नाम, ऐसे दो दल कीजै ॥४६॥

अथ दोहा छंद नाम लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलै पद तेरै करौ, दूजौ इक दस मात।
तीजै फिर तेरै धारौ, दोहा छंद कहात ॥४७॥
तुम बिन मोसे पतित की, लाज राख है कौन।
ग्रीष्म ताप कौ हर सकै, बिन मलयाचल पौन ॥४८॥

अथ सोरठा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलै पद इग्यार, दूजै तेरै मात धर।
तीजै इक दस धार, चौथै तेरै सोरठा ॥४९॥
अति ही चित्त उदास, गौड़ी गौड़ी जे कहै।
आपै सुक्ख निवास, तिहां उदासी दूर कर ॥५०॥

सोरठा भेदः— पहिलै कीजै ग्यार, तेरै ग्यारै द्रुतिय पद ।
चौथै मात्रा च्यार, खोड़ौ··· । ॥५१॥

सोरठा खोडो— करुणा निध करतार, जग सगलौ जंपै सुजस ।
तार सकै तौ तार, नहीं तौ सर्यो··· । ॥५२॥

अथ गाहा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं दो दस कीजै, अट्ठारह बारह दूजै तीजै ।
पद् नव चौथै गाई, पुव्वै गाहा भाख्यौ नाम ॥५३॥

अथ उग्गाहा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

अठ सात कला विसमें चरण, समकी इग दस मान ।
भणै पूर्व कवि नारण सुनहु, उग्गाहा पहिचान ॥५४॥

अथ चुल्लिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पहिलै पद तेरै धरै, दूजै में सोलै कर लीजै ।
सर्व चुल्लिका छंद की, गिन अठ्ठावन मत कर दीजै ॥५५॥

अथ चौपाई नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर अठ मत्ता फिर कर सात, सब पद मांहिं पनरै जात ।
अठ सग मत्ता यति थिति धरौ; छंद चौपाई ऐसै करो॥५६॥

अथ अडिल्ल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

हीनाधिक अक्षर पद कीजै, पै पट दस मत्ता गिन लीजै ।
लघु दीरघ कौ नियम न धरियै; ऐसै छंद अडिल्लै करियै ॥५७॥

अथ तोमर हरणू फाल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

करियै सगण्णिक लाय, वलि दो जगण्ण मिलाय।

षट् तीन अंक गिरोह, कहि छंद तोमर एह ॥५८॥

अथ मधु भार छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरठाः— कर धुर मत्ता च्यार, एक जगन अन्तै धरो।

औ लक्षण मधु भार, धार करौ कवि उक्ति मति ॥५६॥

कहि हुं पुकार, मुहि तार तार। सुनियै जिनेश, सेवित सुरेश ॥६०॥

अथ विजोहा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

रगणै कीजियै,दोय दो दीजियै। युंगणैं जोल है, सो विजोहा कहै॥६१॥

अथ हरिपद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरह मत्ता प्रथम करीजै, ग्यारै बीजै जान।

च्त्तार दल योंही कर दीयै सो हरिपद पहिचान ॥६२॥

अथ ललित पद नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

सोरह मत्ता आदैं दीजैं, दूजे बारै आनैं।

यही ललित गति ललित पद नाम, छंदैं पूर्व वखानैं ॥६३॥

अथ अनुकूला छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद उचारी भगन मिलावै, दो गुरु आगैं लहु चउ लावै।

अंत गुरू दो फिर कर लीजै, यूं अनुकूला समय कहीजै ॥६४॥

अथ हाकल छंद लक्षण वर्णनम् यथा: —

इनमें सात चौदस मेल, ऐसे च्यार पद कर मेल ।
चौ जत एक पण जत दोय, विरचै समय हाकल होय ॥६५॥

अथ चित्रपदा नाम छंद लक्षण वर्णन यथा:—

दोय भगरण करीजै, ज्यों गुरु दो धर दीजै ।
पूर्व कला रवि[१] यामैं, चित्र पदा कहि नामैं ॥६६॥
क्या कहियै तुम ही सूं, तूं सब जाण सवे सूं ।
हो करुणानिधि तारौ, मो भव पार उतारौ ॥६७॥

अथ पवंगम नाम छंद वर्णनम् यथा:—

पहिलै कर इग्यार, और दसहू धरौ ।
पदमें मत इकवीस, रगण अंतै करौ ॥
वर कवि धर मति उक्ति, मरस ज्ञति कौ चहै ।
छंद पवंगम नाम, नारण इसौ कहै ॥६८॥

अथ रसावल नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

करियै इक दस आदि, बहुर दस तीन मिलावै ।
सब मत्ता चौवीस, कली का मेल मिलावै ॥
यति मति कर संभार, नाम कहि छंद रसावल ।
इह लक्षण पूर्वोक्ति, जुगति मीठी अति यौं गुल ॥६९॥

१ रचि यामैं

अथ पद्धड़ी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

अठ दोय मेल कर यति दिखाय। फुनि पंच एक धर पद मिलाय॥
सोलै मत अंतै, जगण होय। कहि पूर्व पद्धड़ी छंद सोय॥७०॥

अथ दुवहिया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

करियै मात आद सूं सोलै, दूजै दो दस मेलै।
बीसरु आठ एक पद कीजै, ऐसै च्यारुं मेलै॥
दीरघ एक अंक धर अंतैं, अक्षर नियमन कीजै।
यही छंद कौ नाम दुवहिया, पूरब मांहि कहिजै॥७१॥

अथ शंकर नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धर आदि की यति मत्त सोलै, दूसरै दस फेर।
इक पदै वीस रु पट करीजै, अंत गुरु लहु हेर॥
ऐसै वणावौ च्यार पद कुं, लखो लक्षण धार।
यूं कहै नारण पूर्व सेती, छंद संकर सार॥७२॥

अथ त्रिभंगी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुरतैं धर दस की दूजी अठ की, फुनि दो षट् की कर तीजै।
चौथी जति करियै षट मत भरियै, इन अनुसरियै सब कीजै।
दस करियै तिगुणा फिर दो धरणा, ऐसैं करणा पद संगी।
पूरब में गायौ लक्षण पायौ, छंद कहायौ तिरभंगी॥७३॥

अथ द्रटपटानाम छंद लक्षण वर्णनं यथाः—

पहिलै दस दो इक धरै, दस दूजै दीजै।
इण लक्षण सूं 'द्रटपट', नारण कहि कीजै ॥७४॥

अथ मरहटा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर तैं दस कीजै अठ धर वीजै, तीजै इक दस ठाम।
गुणतीसूं मत्ता सब संजुत्ता, अंत गुरु लहु धाम ॥
पद मत जुत लावै उकत उपावै, जति[१०] जति कर विसराम।
नारण कहि करियै चाल उचरियै, छंद मरहटा नाम ॥७५॥

अथ लीलावती नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा —

धुर तैं यति एक भरै अट्ठारै, दूजी पण नव फेर करै
सब है वत्तीस कला इक पद में, ऐसैं च्यारूं मांहि धरै ॥
इनमें नहीं गिणत अंक की गण की, एक गुरु तुक अंत गहै ॥
लक्षण ए भांख्यौ पूर्वं भाख्यौ, यौं लीलावति छंद कहै ॥७६॥

अथ पौमावती नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुरली विरत सोल की कीजै, दूजी जोड़ इसी पर लीजै।
सब वत्तीस कला भाखीजै, ऐंं च्यारूं सम राखीजै।
अक्षर गण की गिणत न भावै, अंतै दो गुरु निहचै ल्यावै ॥

१० यित

कहि नारण ए पूर्वं गावै, औ पौमावति छंद कहावै ॥ ७७ ॥

अथ गीया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

धुर सोलै कीजै एक यति में, फेर दो दस मेलियै।
कर आठ वीसूं मात पद[11]में, च्यार ऐसैं मेलियै ॥
नहिं लहु गुरू का भेद इनमें, रगण अंतै राखियै ।
मैं कहूं पूरब कथन सेती, छंद गीया भाखियै ॥ ७८ ॥

अथ पैड़ी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

इक दस दो धुरैं धरियै, ज्यौं पण दस संख्या कीजियै।
न गुरू लहु का भेद यामें, सब आठ वीस भर लीजियै ॥
अंक गिणती न इसी में, इक रगण अंतै वखाणियै ॥
पूर्व उक्त की जुगत सूं यौं, छंदै पैड़ी जांणियै ॥ ७६ ॥

अथ रुड़ छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

प्रथम्म पनरै मात कीजै, एकादस दूसरै, तीजै आठ सग भर लीजै।
चौथे कर दस एक, चौषट पण पांचमें दीजै ॥
राढा सगसठ मत्त कहि, याकौ पूरव धाम।
जब यामैं दोहा मिलै, रुडू छंद कहि नाम ॥ ८० ॥

---

11 सब में

अथ कुंडलिया नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं दोहा छंद कर, रोडक आगैं देय।
चौथो चरण करै जिको, सो दो वेर कहेय॥
सो दो वेर कहेय, पाय पण एक करीजै।
इक तुक में चौवीस कला गिण गिण मेलीजैं॥
साख्यौ लक्षण एह, पूर्व के मत संवादे।
इह कुंडलिया नाम, मिलै तुक अंतै आदै॥ ८१॥

अथ कुंडलिया छंद,मुनि स्तुतिर्यथाः—

पंखी अरु मुनि जनन की, रीत एक नहि दोय।
वे फिर फिर चेजो चुगै, फिरै गोचरी सोय॥
फिरै गोचरी सोय, रात दिन वन में वासा।
एक दिवस लघु विरख, वड़े तरु पंच प्रवासा॥
पुन निहचै नहीं रहै, ऊडजै दिस विन मंखी।
कहै नारण कवि मीत, मुनी जे आतम कंखी॥ ८२॥

अथ कुंडलिनी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

विसमैं वारै मत्ता बीजै अठार पंच दस चौथै रोडक आगैं दीजैं।
भणैं पूर्व कुंडलनी छंद ए कुंडलनी छंद पदै द्वै वेर भणीजै॥
इकसौ तेपन मात सवै पद में कर दीजै॥

और नहीं कछु भेद, अंत आदैं तुक इसमें ।
मिलै यही है रहिस, पढम ते गाहा जिसमें ॥ ८३ ॥

अथ रंगिका नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

अठ दो कीजै प्रथम लाय, दूजै में अठ मिलाय ।
तीजौ अठ पट कर उक्त विचार ॥
योंही जति [१२] समझ लच्छन,सोई साधु विचच्छन पूर्व कथन प्रमान,
करौ ऐसैं च्यार ॥
और गण की गिणत नांहि,त्योंही मात कीठ [१३] ठांहि,
वरन [१४] वरवत्तीस एक तुक धार अंतै गुरु अरु लहु धर और नांहि भेद फिर
ऐसी चाल वही छंद रंगिका उचार ॥ ८४ ॥

अथ रंगी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

पहिलै चौ पांच जानियै, दूजै सात ठांनियै,
तीजै एते आनिय अंत पांच है ।
वरन अठावीस धरौ, यूं च्यार तुक भरौ,
याकी चाल यौं करौ या जुगत है ।
लहु गुरु अंत राखियै, कलकत्ती भाखियै,मति छत दाखियै आ उक्त है ।
गुरु लहु गिणत नहीं, यही जानलौ सही,
पूर्व मांहि एक ही रंगियौ कहै ॥ ८५ ॥

---

१२ जित १३ कीन १४ वरन

अथ घनाचर नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर तें सवार कर धरौ चरन पोडस यातें आगें भरै आठ फेर सात लीजियै
सर्व इकतीस कौ प्रमाण जान एकै पद,
ऐसे भ्रति उक्ति तैं च्यार चारू कीजियै ॥
यामैं लघु दीरघ त्यु' गणा गण भेद नांहि
अंत मांहि दोय सोय लहु गुरू चहियै ।
भेद छेद पूर्व देख, कह्यो सो अशेष लेख
नारण कहत याकु घनाछरी कहियै ॥ ८६ ॥

अथ दुर्मला छंद नाम लक्षण वर्णनम् यथाः—

वर आठ सगन्न मिलाय भरैं, पद भेद यही कवि जान करौ ।
इस एक तुकैं सब अंक बनावहु, बीस रु चार विचार धरौ ॥
इनमें कछु और कहै नहिं भेद, कला दुय तीस नहीं विसरौ ।
कहि नारण भव्य सुनौ इस चाज़हि, दुर्मल छंद सही उचरौ ॥८७॥

अथ मत्तगयंद छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद गुरुय भगन्न करै, सग एक पदैं गुरु दो फिर दीजै ।
तीन रु बीस मिलावहु अक्षर,मात बत्तीस सवै गिन लीजै ॥
लच्छन ग्यान सुजान बनावहु, भेद इसौ इन सूं समझीजै ।

मत्त मयंगल चालत नारण, मत्त गयंदह छंद कहीजै ॥ ८८ ॥

अथ कड़खा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

कीजियै दोय पद मांहि दस दस फिरी, तीसरै आठ दो सात मेलै ।
सर्व मत तीस अरु, सात उपर धरै, दोय गुरु अंत में सही मेलै ॥
राग कड़खा कहै, चाल याकीं यहै,[१] ताल दे तान सुं मान लावै ।
लच्छन इनकौ गहौ, छंद कड़खा कहौ, पूर्व के कथन सूं मति मिलावै ॥८६॥

अथ झूलणा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

मिलै आठ यगान्न को साथ याकै कछु, और तौ भेद याकौ नहीं है ।
सबै मत्ता चालीस चालीस पूरी धरौ, अंक चौवीस यामैं सही है ।
कली च्यार ऐसी भरौ, चाल याही करौ, बालकै झूलणा यौं झुलावै ।
दुए ताल दीजै, इसी गत्त लीजै, दही ढाल तौ झूलणा छंद पावै ॥६०॥

अथ सवैया छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

धुर तें विरत धरौ दस पट सुं पण दस की दूजी कर मेल ।
सब मत तीस एक कर पद में, अंक गुरु लहु अंते मेल ॥
और न कोई गण की गिणन, अंक न गिणती यामैं कोय ।
चेतालै सैं चाल इसी की, नारण छंद सवइया सोय ॥ ६१ ॥

---

[१] १५ लहै

अथ पटपदी चाल सूं छप्पय नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नहिं लहु दीरघ नियम, आठ सोलै मत करियै।
ग्यारै तेरै जत्त आन, चाह तुक भरियै।
एक रसाउल नाम, दूसरै वस्तुक कहियै।
अंतैं दो की विरत, पंच दस तेरह चहियै।
सब पट पद तामैं द्वै रहे, इनमें वर अठवीस गहि
याकी गति यूका चाल पर, छप्पय छंद कवित्त कहि ॥६२॥

अथ साडी पूर्व देशीय रागणी सम्बन्धित साटक नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदि दो दस अंक निसंक कीजै दूजै करै सातहू।
पहिलै नव दो सात मात लीजै बीजै धरै बारकं
पनरै दूणा धार कला करियै, अंतै गुरु राखियै
पद मैं नौ नौ एक वण्ण भरियै पूर्वै कहै साटकं ॥६३॥

अथ तुंगय छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नगन दुय धरीजै, सु अठ वरन कीजै।
दुय गुरु धर अन्तै, तुंगय लछ भनंतै ॥ ६४ ॥

अथ कमल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

पण वरन साधियै, लहु सहु आराधियै।
रगन धर अंत तै, कमल इस मंत तै ॥ ६५ ॥

अथ मीना क्रोड़ नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आद भगणै करियै फेरतगणै धरियै।
पैल लहुतैं गुरु है, नामहु मीनाक्रिड़ है ॥ ९६ ॥

अथ महा लक्ष्मी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

तीन मेलै रगण्ण भला,एक में पन्नरै हू कला।
या तरै च्यार कूंही करौ, यूं महा लक्ष्मि गण्णों भरौ ॥ ९७ ॥

अथ पाइत्त छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं जाकै मगन करै, ताकैं आगै भगन भरै।
वाकै आगै [16]सगन गहौ, यौं पाईत्तैं समझि कहौ ॥ ९८ ॥

अथ इन्द्र बज्रा नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

आदैं तगण्णै वर दोय कीजै, अंतै जगण्णै फिर एक दीजै।
पादंत दो गुरु धार राखै, सो इन्द्र वज्रा विबुधेश भाखै ॥ ९९ ॥

अथ उपजाति उपेन्द्र वज्रा गुरु एकताल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

चुरंत एकेक जगण्ण कीजै, बिचै फिरी एक तगण्ण दीजै।
पदन्त दो दीह विचार राखै. उपेन्द्र वज्रा विबुधेन्द्र भाखै ॥१००॥

अथ पुष्पताग्र लघु (इकताल) छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

ननरय विसमैं पदै सुधारै. नजर[17] एक गुरु समै बधारै।
इस विध छंद धारकै करीजै,इन रचना वर पुष्पितामहीजै[18] ॥१०१

अथ द्रुत विलंबित गुरु[19] ताल छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

नगन[20] एक भगन्न दुए करौ, तिनहि अंतर गन्नफिरी धरौ।

१६, अंतै १७ नजर, १८ महीजै, १९ एक, २० नगन।

इस विधे लखि लच्छन लीजियें, द्रुत विलंबित छंद करीजियें॥१०२

अथ कुसुम विचित्रा छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

प्रथम नगणमें यगण करीजें, नगण यगणमें फिर धर दीजै ।
इन विधनायें विरचउ चारो, कुसुम विचित्रा रहिस विचारो ॥१०३

अथ गुरु एक ताल स्रग्विणी छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

मध्य यामैं लघू सोय रगणण है, च्यार ऐसें धरि एक पदें कहै।
और यामैं नहीं भेद को जानियें,स्रग्विणी छन्द को नाम वखानियें॥१०४॥

अथ लघु दोय ताल मणिमाला नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

तो यो फिर तौयो गणणे समझीजें जत्तें पट अंकै च्यारू पद लीजै ।
यामें कछु औरें भेद नहीं जानो ऐसें मणिमाला छंदै पहिचानौ॥१०५॥

अथ लघु दोय ताल ललिता छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

यामें प्रथम्म तगणें करीजियै, ताहो तलें भगण कूं धरीजियै ।
योंही जगणण रगणांत धरियें, भाखै सुबुद्धि ललिता उचारियै ॥१०६॥

प्रथम तीन गुरू ताल दीजे, पछै लघु दोय ताल (दो दो)दीजै,
अंतै गुरु ताल दो एक पद में दीजें

वैश्वदेवी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथाः—

प्राथम्मैं कीजै दो मगणणा मिलाई, ता आगें दीजै दोय गण्णा मिलाई ।
पंचकै जत्ते वैश्वदेवी पुणीजै, यूं पूर्वं भाख्यो छक्क मुक्कं मुणीजे॥१०७॥

इसौ नवमालिनो छंद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

इस विध कीजियै सुगन धोरी, नगन जगन्न दो बुध विचारी।
भगन्न यगन्न यूं समझ लीजै, यह नव मालिनी लछन कीजै॥१०८॥

अथ त्तमा नाम छंद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

नगण दुय करै तगग्णा दोय दै, प्रथम सग धरो फेर दो चौवदै।
इस विधि यति सूं अंत दीर्घ गहै.इह लछन धरै सो त्तमा नाम है॥१०९॥

अथ मत्त मयूर नाम छंद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

कीजै आदै ज्यु मगणौं फेर तगणौं,ताकै आगै दोय गणौं मेल सगणौं॥
च्यारै नवै यत्त धरी नै पदपूरै अंतै दीजै एक गुरु(पद)मत्त मयूरै॥११०

अथ मजु भाषणी नाम छंद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

धुरैं करो एक जगणों तगण्ण कुं फिरी धरीजै सगण्ण यूं जगण्ण कूं
पदंत दीजै गुरु सु बुद्धि राखणी,कहो य नामैं प्रवर मंजु भाषणी॥१११॥

अथ माया नाम छद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

आदै दीजै पांच गुरु सगण लीजै. तैसें ही कीजै भगणौ दो गुरु दीजै
ऐसे धारै च्यार पदै अत्तर तैरै,मत्ता बावीसूं भरमाया धुनि देरै॥११२॥

अथ प्रहरण कलिका नाम छंद लत्तरण वर्णनम् यथा—

प्रथम करहु दो ननगन भगन कुं, फिर तिह धरियै नगन सगुरुकुं।
सब पद[२३]गिनीयै दस षट कलिका. कर वर बुद्धि तैं प्रहरण कलिका॥११३

अथ वसन्त तिलका नाम छंद लत्तरण वर्णनम् यथाः—

आदै करै तगन फेर भगण्ण कीजै, तैसें फिरी जगन दोय गुरु दु दीजै

---

२३ मत

ऐसे सुधार धरियै वर अंक मेली, आर्यो वसन्त तिलका कवि बुद्धि मेली॥११४

अथ सिंहोद्धता नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा:—

कीजै धुरे तगण एक भगण्ण एक, दो दे फिरी जगण एक गुरु विवेक
अंतै लघू समक साव गुरु न देय,[२४] सिंहोद्धता सुकविता कविता अमेय॥११५

अथ उद्धर्षिणी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

धारौ प्रथम्म तगणं[२५] फिर दो भगण्ण, दो दीजियै जगण दोइ लहूय वण्ण।
ऐसें सुधार करियै अति इक धार, उद्धर्षिणीव कहियै करियै विचार॥११६॥

अथ मधु माधवी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

कीजै तगण्ण धुर फेर भगण्ण देय, ताहि पछे करसु दोय जगण्ण लेय।
ऐसें समार धरियै गुरु दो प्रमीय, अंतें लघु कर लियै मधु माधवीय॥११७

अथ इन्दुवदना नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

आद करियै भगन कुं फिर जगण्णं, ता ताल[२६] दियै सगन हू नगन भण्णं।
दोय गुरु अंत धरकै सु पद पूरै, इन्दु वदना इस विधै कर सनूरै॥११८॥

अथ अलोला नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

आदै धार मगण्णैं दीजै, फेर सगण्णै, ता आगै मगणैं ज्यु त्यु ही मेल भगण्णैं।
या रीतें करियै दो अंते दीह धरीजै, याको नाम अलोला सातें ब्रत्त करीजै॥११९॥

अथ शशिकला नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा:—

धुर चउ नगन फिर इक सगन है, इस विध धर कर चतुर पद गहै।

२४ दोय २५ मगण्णैं २६ तल

गिन पट दसहि वर इसमहि कला। पण दस वरण तिह[27]इह शशि-कला ॥ १२० ॥

अथ मणिगुण निकर नाम छंद लच्छण वर्णनम यथा:

प्रथम चउ नगन सहित सगन सूं. चतुर चतुर पद करइ सविध सूं अवर सवहि लहु गुरु चरम धरै, अठ सग जति हुय मणि गुण निकरै ॥ १२१ ॥

अथ मालिनी नाम छंद लच्छण वर्णनम यथा।

नगन दुय करीजै फेर मग्ने धरीजै, यगन यगन दीजै पाय पूरो भरीजै इन विध रचनायें साधियै भेद यामें, लहु हुय दुह तालै मालिनी छंद नामैं ॥ १२२ ॥

अथ प्रभद्रक नाम छंद लच्छण वर्णनम यथा:—

नगण करै प्रथम्म जगसौं धरीजियै, भगण जगण्ण धार रग णंतदीजियै। करहु सुधार मात पट तीन रुद्रकं, इह विध छंद जात कहियै प्रभद्रकं ॥ १२३ ॥

अथ एला नाम छंद लच्छण वर्णनम यथा:—

कहिकै धुरै सगन जगन धर दीजै, उनतै दुए नगन यगन धर कीजै पण कीजै तै मत नव दस कर भेला, इनतै कहे बुध वर कवि नर एला ॥ १२४ ॥

अथ चन्द्रलेखा नाम छंद लच्छण वर्णनम यथा:—

आदैं धारै मगण्णं तातै रगण्णं[28] कहीजै,
आगै मगण्ण राखै त्यूं यगण्णा दोय दीजै।

---

२७ जिहतिह २८ क कीजै

याकी संभार जत्तें पूर्वें कहि सात शेषा।
ताकूं आठैं समारैं यूं होय है चन्द्र लेखा॥१२५॥

अथ ऋषभ गज विलसित नाम छंद लक्षण वर्णनम यथाः—

धार सुधार कै भगन धुर करई कहु।
ताहि तलै धरैं वर रगन बुधि नरहु॥
फेर दियै नगण्ण तिय गुरु इक धरनै।
नाम कहैं विबुध ऋषभ गज विलसतै॥१२६॥

अथ वाणनी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

धुर धरियै नगण्ण जगणें भगण्ण लावै,
जगण रगण्ण देय पद अंत दीह आवै,
चतुर विचार वीस दुय मात सर्व दीजै।
इस विध पूरवैं कहित वाणनीय कीजै॥१२७॥

अथ शिखरणी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथाः

प्रथम्मैं साधीजै यगण मगणें नग्गण करै,
फिर पाछे दीजै सगण भगणें हू बुध वरै।
पदन्तै दो धारै इक लहु गुरुलक्षण भणी,
रसैं रुद्रैं जति उनहिं कहि नामें शिखरणी॥१२८॥

अथ पृथ्वी नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

धुरैं जगण दे फिरी सगण यूं जगण्णैं करै,
वली सगण कीजियै यगण धार पांछे भरै।

दिये लहुअ अंत मैं गुर इकेक देई रचै,
यही लच्छन जत्त है अठ नवै पृथ्वी रुचे ॥ १२९ ॥

अथ वंश पत्र पतित नाम छंद लच्छण वर्णनम् यथा—

आद दिये भगएण रगणै नगण फिर लिये,
ताहि तलै भगएण नगणौं लग चरम दिये ।
याहि विधैं कवीजन करै अति उक्ति छतै,
वारहु वंसपत्र पतितैं दस सग यतितैं ॥ १३० ॥

अथ हरिणी नाम छंद लछण वर्णनम् यथा—

धुर धर दिये नगणौ कैं सगणण वसेणहू,
मगण रगणौ यूं ही लोजै सगणण फिरी लहू ।
चरम करियै दीर्घं एकै मृगैं गति ए गहै,
षट चउ सगैं जत्तैं मेलैं तिणैं हरिणी कहै ॥ १३१ ॥

अथ मन्द्राक्रांता नाम छंद लच्छण वर्णनं यथा—

अदैं दीजै भगण[२९] भगणै तगणै फेर आणै,
पाछै कीजै तगण तगणै अंत दो दीह ठाणै ।
ऐसैं धारै सरब गण कुं पाद पूरौ लहीजै,
मन्द्राक्रान्ता चउ षड संगै जत्त याकी कहीजै ॥ १३२ ॥

अथ नर्कुटक नाम छंद लच्छण वर्णनम् यथा—

प्रथम धरै नगण्ण जगणौं भगणै करियै,

२९ मगण

उनहि तलै जगरण जगरों ल गुरु भरियैं ।
इस विध कीजियै चवद दो इक अंक तुकैं,
दस दस दोय मात पद मैं कर नकुंदकै ॥ १३३ ॥

अथ कुसुमितलता वेल्लिता नाम छंद लच्चणम् यथा—

आदै धारीजै मगण तगणौ फेर दीजै नगण्णों,
ता आगै लीजे यगण यगणौ और राखै यगण्णौ ॥
या चालै छंदा कुसुमित लदा वेल्लिता नाम जांणो,
यौं जत्ते कीजै पण षड सगै लत्तणौ हू पिछाणो ॥ १३४ ॥

अथ मेघविस्फूर्जिता नाम छंद लच्चण वर्णतम् यथा—

करीजै आदैं यूं यगण मगणौं नग्गणैं त्यूं सगण्णौं,
फिरि पाछै दीजै रगण रगणौ अंत में दोह भण्णैं ।
इसी रीतैं धारै तिनहि कहियै मेघ विस्फूर्जिता है,
भली उक्कैं कीजै षड षड सगैं जत्त याकी कहा है ॥ १३५ ॥

अथ सार्दूलविक्रीड़ित नाम छंद लच्चणम यथा—

आदैं धार मगण्ण फेर सगणौ जगण्ण पाछै धरैं,
आरो ताहि सगण्ण मेल तगणै तगण्ण दूजौ करैं ।
ऐसै वुद्धि विचार पाय भरियै दीहंक दे अंत तै,
वारै वण्ण सुधार जत्त करियै सार्दूलविक्रीड़ितै ॥ १३६ ॥

अथ सुवदना नाम छंद लच्चण वर्णनम यथा—

आदैं कीजै विचारी मगण रगणहू भगण्ण करियैं,

ताकै आगै करीजै नगण यगण कूं भगण्ण धरियै।
पादतें दोय दीजै लहु गुर वरणौं पूर्वोक्त वचना,
याही रीतै सुधारी सग सग जतियैं नामैं सुवदना ॥ १३७ ॥

अथ स्त्रग्धरा नाम छंद लक्षणम यथा—

आदैं दीजै मगण्णौ फिर रगण धरै भगण्णैं भेल दीजै,
त्योंही लीजै नगण्णौ वलिय (गण) दुए यगण्णौ फेर कीजै।
वीजों को नांहि भेदा सग सग जतियै धार संभार राखै,
अैसे अंकै समारि कविवर करियै स्त्रगधरा पूर्व भाखैं ॥१३८॥

अथ प्रभद्रक नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आद करीजियै भगणहू रगण्ण नगणौ रगण्ण करियै,
ताहि तलै दियै नगण कूं फिरि रगण यूं नगण्ण धरियै।
या विधि धारकै गण धरै इकेक गुरु अंत दे पद भरै,
दो अठ अक्षरैं जति गहैं यही लक्षन सूं प्रभद्रक करै ॥१३९॥

अथ अश्वललित नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

धुरि धरियै नगण्ण जगणै भगण्ण फिर दीजियै बुधि वरैं,
तिनहि तलैं जगण्ण भगणौं दिय वलि जगण्ण भग्गण धरै।
इण विधतै सबै गण धरै लहु गुरुय अंत मैं दुय लहैं,
इक दश दो दसै जति करै जदाश्वललिताश्व चाल बनिहैं ॥१४०॥

अथ मत्ताक्रीड़ा नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा —

आदैं धारै दो मगण्णौ अति ललित मति करहु धर तगणै,
ता पाछै दीजै नगण्णौ सरव लहु लछन नगन तिय भणै।
ऐसें कीजै च्यारू पाया इक लहुय गुरुय चरम फिर धरै,
मत्ताक्रीडा नामै छंदा अडवरण पण दस जति युति करै॥१४१॥

अथ तन्वी नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आद करीजै भगन फिर करै तगण्ण और नगण धर दीजै,
फेर सगणै करहु भगण कु ताहि तलै पुन भगण धरीजै।
दोय[३०] नगण्णौ फिर यगण करै च्यार सुधार धरहु पद गिन्नी,
होय इसीकै जति पण सग तैं दो दस तैं मति वर कर तन्वी॥१४२॥

अथ क्रौंच पदा नाम छंद लक्षण वर्णनम यथा—

आदिम राखै भगण्णौ पुन करहु मगन लछ डर धर कै,
तहि तलै दैं एक सगण्णै पण पण अठ जति कर पद गिन कै।
त्यु हि करीजै फेर भगण्णौ नगण चतुर गुरु इक चरम गहै,
क्रौंच पदा से नाम भणीजै जिन समय कथन कवि जनहिं लहै॥१४३

अथ भुजंग विजृंभिज नाम छंद लक्षण वर्णनम् यथा—

आदैं धारै दो मगण्णे फिर तगण लहु गुरु दुए पदतहि दीजियै,
पाछै राखै दो नगण्णौ त्रतिय नगण विबुध रचै रगणिणक कीजियै।
ताकै आगै सगण्णौ कै अठ इक दस जति गिन कै भलो पर कीजतैं,

३० देय

पूर्वे भाख्यौ ऐसौ छंदा शुभतर सुरधुनि नकरै भुजंग विजृं मितै॥१४४

अथ ग्रन्थ परिसमाप्ति प्रशंसा कथनम—

दोहा ।

आद् मध्य मङ्गल करन, सपूरन कै हेत ।
अन्तिम मङ्गल हर्ष कौ, कारन कवि संकेत ॥ १४५ ॥
जो दधि मंथन की क्रिया, ताको तौलूं खेद ।
मांखन निकसै मथन कौ, उद्यम खेद निषेध ॥ १४६ ॥
परिसमाप्ति ग्रन्थै भई, इष्ट कृपा आयास ।
नौका बिन दधि तिरन कौ, को करि सकै प्रयास ॥ १४७ ॥
जवू दीपै मेर सम, और न को ऊतुंग ।
त्यूं शरीर मय गच्छ सकल, खरतर गच्छ उतमंग ॥ १४८ ॥
गीर्वाण बाणी सारदा, मुख तै भई प्रगट्ट ।
यातै खरतर गच्छ मैं, विद्या कौ आर्भट्ट ॥ १४९ ॥
ताके शिखा समान विभु, श्री जिन लाभ सुरीश ।
ज्ञानसार भाषा रचै, रत्नराज गणी शीश ॥ १५० ॥

चौपाई—

संवत कायैं फिर भय देय, प्रवचन मायैं सिद्ध शिल लेय ।
फागुण नवमी ऊजल पत्त, कीनो लत्तण लज्ञ विपत्त॥ १५१ ॥
रूप दीपतैं वावन किये, वृत्तारत्न तैं केते लिए ।
चिन्तामणि तैं केई देख, रचना कीनी कवि मति पेख ॥१५२॥
नहिं प्रस्तार न कर उदिष्ट, मेरु मर्कटी न कियो नष्ट ।

आधुनकाली पंडित लोक, ग्रन्थ कठिन लखि देहैं धोक॥१५३॥

॥ दोहा ॥

इक सौ अठ दो मेर के, वृत्ति किए मतिमंद।
यातै योकूं भाखियौ, नामैं माला छंद॥ १५४

॥ इति श्री मालापिङ्गल छंद सम्पूर्णम ॥

सं० १८८४ चैत्र शुक्ल १० शनौ पं. जेठा पठनार्थं लि० श्री विक्रमपुर नगरे महोपाध्याय युक्तिधीर गणि लिपीचक्रे।

॥ श्री माला पिङ्गल छंद सूची ॥

—इति छंदाति—

॥ इति माला पिङ्गल छंदः सूची संपूर्णम् ॥
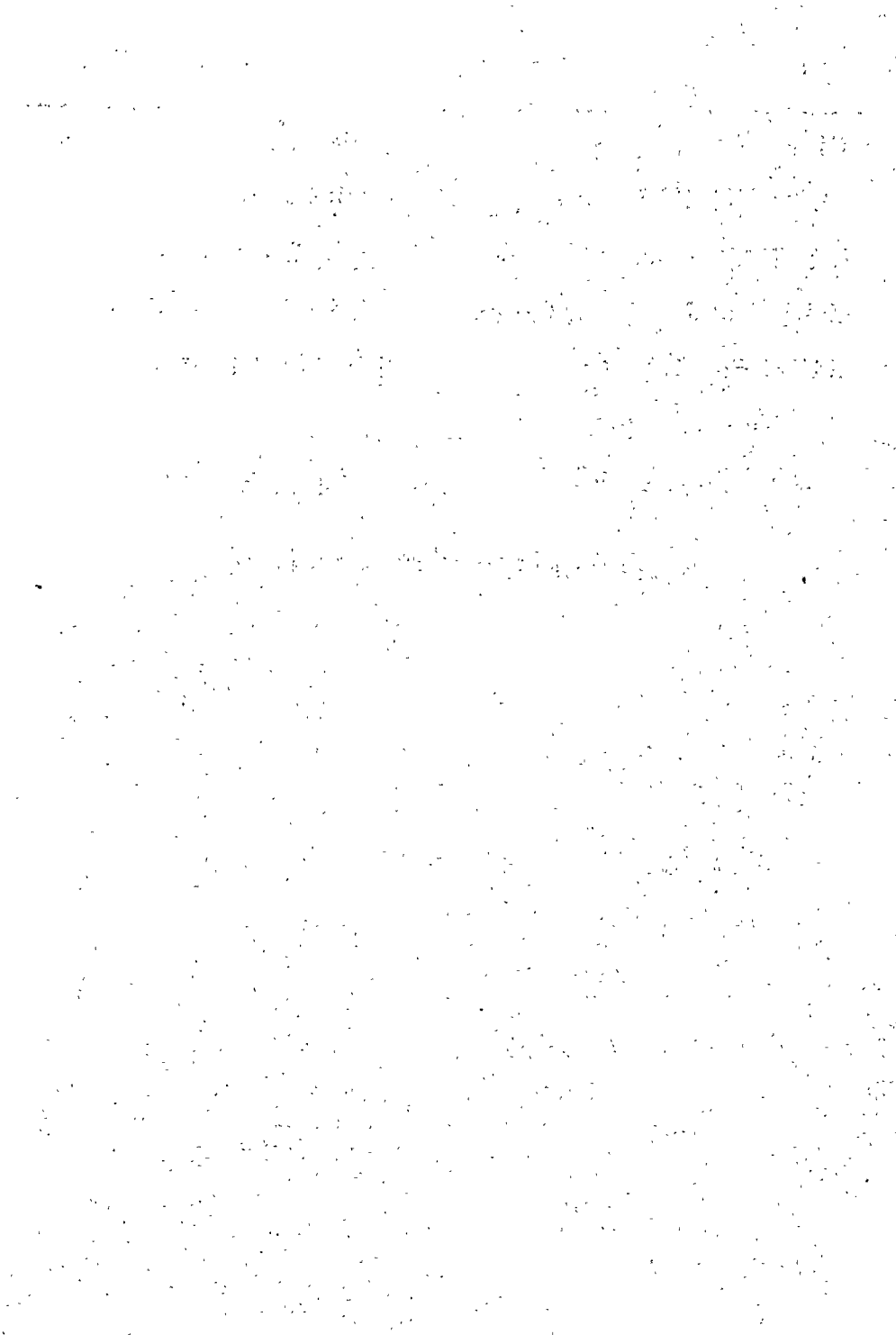
परिशिष्ट (१)

अवतरण संग्रह

पृष्ठ	पंक्ति	अवतरण
३५	२४	"अक्खरस्स अणंतमो भागो निच्चुग्घाड़ियो चिट्ठइ।"
१४६	१३	,, ,, ,,
३६	१६	यत्सत्त्वे यत्सत्व मत्वयः तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः।
४१	७	'तिन्नाणं तारयाणं'। (नमोत्थुणं से)
४१	१५	अन्वय लक्षणमाह—यत्सत्वे यत्सत्त्वमन्वयः स्वरूप सत्वे परमात्मता सत्वं मृ अथ व्यतिरेक लक्षण माह-तद्भावे तद्भावो व्यतिरेकः स्वरूपाभावे परमात्मताभावः
८१	६	न रंगिज्जा न धोइज्जा। (आचाराङ्ग)
१५६	१६	,, ,,
८१	१३	"आरंभे नत्थि दया" दयामूले धम्मे पन्नते।
३५६	७	,, ,, ,,
८१	२०	हियाए सुहाए निस्सेसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ
३५६	६	,, ,, ,, (पञ्चमांगे)
८२	१०	पूयानिरारंभिया।
८३	६	मदुक्तिः—मारे मत के ममत के करें लराई घोर। जे आपण मत में नहीं, कहै जिनागम चोर॥ (मतिप्रबोधछतीसी पृ० १७५)

८४ ५ अभयं सुपत्तदाणं, अणुकम्पा चिय कित्तिदाणं च।
दुन्नवि मुक्खो भणिओ, तिन्नवि भोगाइया हुंति॥

८५ ४ मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयोः।
(चाणक्यनीति, पार्श्वनाथ चरित्र)

८५ ६ आगम आगमधर नै हाथे नावै किन विध आंकूं।
किहां किणै जो हठकरिनै हटकूं तौ व्याल तणी पर
वांकू हो। (आनन्दघन कुंथुजिनस्तवन)

८६ ६ विवहारो विहुवलवं जं छउमत्थंच वंदए अरिहा—
आवश्यक-निर्युक्तौ

८६ १२ किरिया वड़पत्त समा १८४ १६, ३५७-५, ३७६-८,
४१७ ३ (स्थानांगे)

८७ ७ आनंदघन कहै—"निहचै एक आनंदो"
पुनः निहचै सरस अनंत (पद नं०)

८८ १७ मदुक्तिः—आतम शुद्ध सरूप कौ, कारण जिनमत एक।
हमसे भैंसे भेषधर कीच कियौ एक मेक॥
(मति-प्रबोध छत्तीसी देखो पृ० १७६)

१४१ १५ अन्न गिलायवेत्ति अन्नं विना ग्लायति ग्लानो भवति
अन्न ग्लायक प्रत्यग्र कूरादि निष्पत्तिं यावत् बुभुक्षातुर
तयाप्रतीक्षितु मशक्नुवत् यः पयुत कूरादि प्रातरेव भुंक्ते
कूरगडुक प्राय इत्यर्थः [भगवती सूत्र]

१४१ २० सव्वेसु पि तवेसु कसाय निग्गह समं तवो नत्थि

जं तेण नागदत्तो सिद्धो वहुसोवि भुंजंतो ॥
[पुष्पमाला प्रकरणे]

१४२ १८ वर्षति मेघ कुणालायां, दिनानि दस पञ्च च ।
मूसलधार प्रमाणेन यथा रात्रौ तथा दिवा । १ ।

१४३ १४ "जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहोव वड्ढइ
दोय मास कणय कज्ज कोडीएवि न नट्टइ ॥"
(उत्तराध्ययन सूत्र अ० ८ गा०१७)

१४४ १० अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमति लोभता ।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषा स्वभावजा ॥

१४४ १५ "विवहार नयच्छेए तित्थच्छेओ जओ भणिओ ।"

१८३ ६ १८६ ५ ३६४ ४ " "

१४५ १६ "ऋतेज्ञानान्न मुक्ति" अनुभूतिस्वरूपाचार्य कृत व्याकरण

१४८ ६ १८६ ३ ३५८ ५ ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

१४८ ६ हयं नाणं कियाहीणं हया अन्नाणिणो किया
१८६ पासंतो पंगुलोदड्ढो धावमाणोय अंधलो

४१५ २० " " "

१५० ६ कालो सहाव नियइ पुव्वकयं पुरसकारणे पञ्च
२७१ समवाए सम्मतं एगंते होइ मिच्छत्तं ॥ १ ॥

१५१ १६, १८५ १५, १८६ ५, ३६५-२२ एगंते होइ मिच्छत्तं
(उपर्युक्त कालो० श्लोक का चतुर्थ)

१५० १३ आनंदघन—काललबधि लहि पंथनिहालस्युं (अजित-स्तवन)

१५२ १६ "जोलूं घट में प्राण है, तोलूं वीण बजाय"

१५८ २२ "प्रेत की सी पुरी, मधु लेपी सी छुरी" एवुं समयसार
वालो कहै छै क्रिया नै

१६० १६ जीवी आस मरण भय विप्पमुक्के।

१६१ १६ आत्मातु पुष्कर पत्रवन्निरुपलेप।

१६१ २० "सिद्ध सनातन जो कहुं, तौ उपजै विनसै कौन"

पुनरपि—शुद्ध स्वरूपी जो कहूं बंधन मोक्ष विचार
न घटै संसारी दशा पुण्य पाप औतार

३६६ ८ „ „ (आनन्दघन पद २१)

१६२ १६ कनकोपलवत् पयड़ पुरष तणी, जोड़ी अनादि सुभाव
(आनन्दघन पद्मप्रभ स्त०)

१६२ १८ ईश्वर प्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा स्वभ्रमेववा

१६३ १५ रूपी कहुं तो कछु नहीं, (आनन्दघन पद नं०८१)
१५ "षट दरसण जिन अंग भणीजै" („ नमिनाथस्तवन)

१६७ १३ अप्पे समणा वहवे मुंडा

१६८ १२ पंखी पग आकाश
१६ जिय कोहा जियमाणा

१६६ १७ स्मृते भिन्न ज्ञानमनुभव

१७१ १५ आसवा ते परीसवा, परिसवाते आसवा (आचारांगे)

१७१ १२ वाह्य कष्ट थी ऊंचूं चढ़वुं, ते तो जड़नो भाव।
संयम श्रेणिशिखर पर चढ़वुं ते निज आतम भाव॥

१८८ १५ „ „ „
योग क्रिया वलि तेह—एहवुं १२ भावना में कह्यु

१७२ १५ ढूंढत हारी रे, सुनियत याहू गाम। ढूं०।
जिन ढूंढ्या तिन पाइयौरे, गहिरै पानी पैठ
हूं भूंडी डूबत डरी, रहिय किनारै पैठ। ढूं०।

१८६ ५ नमुक्कारसी व्रत नहीं, करतो कूर आहार
भावशुद्ध तैं सिद्ध हैं, कूरगड्ड अणगार
भाव शुद्धता जौ भई, तो कहाक्रिया कौ चार
दृढ़प्रहार मुगते गयौ, हत्या कीनी च्यार
(श्रीमद्कृत भावषट्त्रिंशिका)

१८६ २३ पढमे पोर सिज्झायं वीए झाणं तीए गोयरि कालं
३८३ चउत्थेपुणरवि सिज्झायं रात्रे पढमे पोरसि सिज्झायं
वीए झाणं तीए सयणकालं चउत्थे पुणरवि सिज्झायं—

१८७ २० मदुक्ति—पूर्वकोड़ि देशोनता, क्रिया कठिन जिन कीन
कूरुड़ बकुरड नरक गति, अशुद्ध भाव तें लीन। १।
(भाव छत्तीसी)

१८८ ५ यः क्रियावान् सः पण्डितः
१५ आनंदघन मुनि कहे—जबलग आवै नहीं मन ठाम,
तब लग कष्ट क्रिया सब निष्फल, ज्यूं गगने चित्राम।

नोट—वास्तव में यहां लिखने में नाम भूल प्रतीत होता है। इस पद के रचयिता उपाध्याय यशोविजय हैं। (दे० गुर्जरसाहित्य संग्रह पृ० १६४)

१८९ ६ नाणेण जाणए भावं दंसणेण च सद्दइ

चारित्तेण मणुन्नाई तवेण परिसिज्झइ ।

(उत्तराध्ययन अ० २८ गा० ३५)

१८६ ६ संजोग सिद्धि अफलं वयंती नहु एग चक्केण रहो पयाई ।

४१६ ६ अंधोय पंगूय वणे समेचा तेनं पउत्ता नगरे पविट्ठा ॥२॥

१८६ १४ आनंदघन मुन्युक्ति :—

ज्ञान धरौ करौसंयम किरिया न फिरावौ मन वाम ।
चिदानंदघन सुजस विलासी प्रगटै आतमराम ॥

(वास्तव में यह यशोविजयजी रचित पदका अंश है दे० गु० सा० सं० पृ० १६४)

१८६ २० पढमं नाणं तओ पवत्ति (दया) (दश०अ० ४ गा० १०)

२२२ ६ दिवस प्रतें दियै सुजाण, सोना खंडी लक्ष प्रमाण ।
तेहनै पुण्य न हुवै जेतलो, सामायक कीधां तेतलो ॥

२२७ १४ फूहड़ लंवोदर खर दशनी पृ० ६७

२४२ १६ "दौड़त दौड़त दौड़ियौ, जेती मन नी रे दौड़ ।
प्रेम प्रतीत विचारौ ढूकड़ी, गुरगम लेज्यो रे जोड़ ॥"
पुनः बंधमोख निहचै नहीं पुनः निहचै सरम अनंत
(आनन्दघन धर्मनाथ स्त)

अचलअवाधित देवकूं हो खेमसरीर लखंत एषा मदुक्तिः

२४३ १ निजस्वरूप निश्चैनय निरखूं, सुद्ध परम पद मेरो ।
हूंही अकल अनादि सिद्ध हूं, अजर न अमर अनेरो ।

३२१ २० ,, ,, (बहुत्तरी पद १२ पृष्ठ ४१)

बंध मोख नहिं हमरै कबही नहीं उपपात विनाशा।
शुद्ध सरूपी हम सब कालै ज्ञानसार पद वासा॥
(पृष्ठ ५८)

२४४ ७ जो अप्पा सोई परमप्पा

२५४ १४ काल पाक कारण मिल्यै सहिज सिद्ध ह्वै जाय।
बिन वरषा फूलै फलै, ज्यों वसंत वनराय॥
(पृष्ठ १५१)

२५७ १३ उट्ठाणेणं कम्मेणं परकम्मेणं बलेणं विरिएणं पुरसकार परकम्मेति —भगवती

२६१ १६ पणवारा उवसमियं

२७१ १२ काल सत्त्वे सर्व पदार्थ सत्त्वं कालाऽभावे सर्व पदार्था-भावेति राद्धान्तः

२७२ ६ कालःसृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालःसुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः॥१॥ पुनरपि
काले फलंति तरवः काले बीजं च वापयेत्
काले पुष्पवती नारी सर्वकालेन जायते॥२॥

२७२ १८ वस्तुनः परणमनं स्वभावः परणमनत्त्वं च किं नाम वस्तु धर्मत्त्वं परणमनत्त्वं यत्र यत्र वस्तुत्त्वं तत्र तत्र परणमनत्त्वं परणमनत्त्वेन बिना पदार्थस्यापत्तिर्नस्यात् इति भावः इत्यनेन कृत्त्वा पदार्थस्य मूलकारण स्वभावैव दर्शित यत्र यत्र स्वभावत्त्व तत्र तत्र पदार्थत्त्वं यत्र यत्र स्वभावत्त्वा भाव स्तत्र तत्र पदार्थत्त्वाभावेतिराद्धान्तः

२७४ ११ यस्मिन् यस्मिन् भावे यत्तदूव्यवस्थाभवनं तन्नियतत्त्वंति राद्धान्तः नियतत्त्व शब्दस्य सर्वेषु पदार्थेषु कार्य कारणताऽस्ति तदेव दर्शयति कार्य भवितव्यं कारणता भवितव्ये पदार्थेषु तदैक्यत्वं इत्यनेन कृत्वा भवितव्यस्य पदार्थेन सह कार्य कारण भावता दर्शिता।

२७५ २० इदमपूर्वस्य लक्षणंकिं नाम अपूर्वत्वं पूर्वमुपार्जितं जीवेन शुभाशुभ कर्म तत् पूर्वोपार्जितं पुनः पूर्वोपार्जितः पूर्वोपार्जितैः पूर्वोपार्जिताः कुत्रवर्ततेपूर्वोपार्जिते पूर्वोपार्जितं च तत् कर्म च पूर्वोपार्जित कर्म तस्मिन्नेव पूर्वोपार्जित कर्मतति ।

२७७ ३ कारणेन कृत्वा निष्पद्यते तत्कार्यं पुरुष निष्टोत्पत्तिना कृत्वा निष्पद्यते तत् पुरषकार्य यथा देवदत्तेन घटः क्रियते तत्र घट निष्टोत्पत्त्यनुकूला मृपिण्डः कुलाल चक्र चीवरादिका या क्रिया सा घट निष्टोत्पत्तेः कारणं कार्य घटोत्पत्तिः कारणं मृत्पिण्डादिः कार्य घटोत्पत्तिः कार्यता घटोत्पत्तौ इत्यनेन कार्य कारण भावता दर्शितेति

२८२ १८ अमृत की इक बूंद तें, अजर होत सब अङ्ग।

२८३ ७ "क्षुरी छुरी कृपाणिका" इति हेमकोषे॥

२८४ ४ आनंदघनोक्ति—नींद अज्ञान अनादि की मेट गही निज रीत। (पद नं० ४)

१५ यावद्विघ्नोत्सारण समर्थ मङ्गलत्त्वेन कारणता समाप्तिं प्रति। (नैयायिक)

२८७ ८ दान विघन वारी सहु जियनै, अभयदान पद दाता।
लाभ विघन जग विघन निवारक, परम लाभ रस माता॥
वीर्य विघन पंण्डित वीर्य हणी, पूरण पदवी योगी।
भोगोपभोग दोय विघन निवारी, पूरण भोग सुभोगी॥
आनन्दघनजी कृत मल्लि जिन स्तवन

२८७ १७ एगे आया (आचारांग समवायांग स्थानाङ्ग)
२८८ ६ कडे माणे कडे (भगवती)
२८८ १८ बहिरातम अघरूप (आनन्दघन-सुमतिनाथ स्तवन)
२८८ १६ "जीवा मुत्ता संसारिणोय" (जीवविचार)
२८६ १ मदुक्ति—सत्ताभिन्नै सिद्ध अनंतै रूप अभेद (पृष्ठ)
२६० १३ आनंदघने कह्युं—चेतनता परिणामन चूकै,
१७ पुनरपि आनंदघनोक्ति—कर्त्ता परिणामी परिणामो
२६५ ७ „ „ वासुपूज्यस्त०)
२६२ १४ एगो मे सासओ अप्पा (संथारपोरसी)
२६४ ७ पुनः एषा मदुक्ति—उपति विनास रूप रति परिणम,
जड़के गति थिति कायरे।
अविनाशी अनघड़ चिद्रूपी, कालै तूं न कलाय रे॥१॥
रोग सोग नहीं दुख सुख भोगी, जनम मरण नहिं कायरे।
चिदानंदघन चिद् आभासी, अमई अमम अमाय रे॥२॥
२६६ ४ „ „ (बहुत्तरी पद ३ पृ० ३२)
पुनःमदुक्ति—
ज्ञान शक्ति निज चेतन सत्ता, भाषी जिन दिनकारे।

सत्ता अचल अनादि अवाधित, (पृ० ३५)

पुनरपि मदुक्ति—

राग दोष मिथ्या की परणित, शुद्ध सुभावन समावै।

अनकल अचल अनादि अवाधित, आतम भाव समावै।१।

(बहुत्तरी प० १४ पृ० ४५)

३६६ १३
३१६ १४
२६५ १
३०२ ६
} मिथ्यात्वाविरति कषाययोगा बंध हेतवः (तत्त्वार्थसूत्र अध्या० ८)

२६५ १० परिणामी चेतन परिणामो, ज्ञान करम फल भावी

३०८ ३ ,, ,, (आनंदघन वासुपूज्य स्त०)

पुनःमदुक्ति—चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान सकति विस्तारै। (पृ० ३५)

२६६ ६ पुनः मदुक्तिः—गज सुकमालादिक मुनि भयौ जड़ सम्वन्ध विभायरे (पृ० ३२)

१३ तमेव सच्चं निस्संकं जं जिणेण पवेइयं (आचारांग)

२० आनंदघनोक्ति - आतम ज्ञानी श्रमण कहावै, बीजा तौ द्रव्य लिंगीरे (वासुपूज्य स्त०)

२१ तथा मदुक्ति-आतम तत्ववेत्ता तप निधनी, अन्य श्रमण न कहाय रे (पृ० ३३)

३१० १२ ,, ,, ,, ,,

२६८ २ —बरसा बूंद समुंद समानें, खबर न पावै कोई

३४२·२० आनंदघन ह्वै ज्योति समावै, अलख कहावै सोई
(आनंदघन पद नं० २३)

२६६ ५ „—औधू नटनागर की बाजी, जाणै न बांभण काजी
थिरता एक समय में ठाणै, उपजै विनसै तबही
उलट पलट ध्रुव सत्ता राखै, या हम सुनी न कबही
औ० १ ॥ (पद नं० ८)

८ एगे समए एगा किरिया (स्थानांग)

३०१ ६ आनंदघनोक्ति—आतम बुद्धे कायादिक ग्रह्यो, बहि-
रातम अघरूप । (सुमतिनाथ स्त०)

१५ „ कहा निगोड़ी मोहनी हो, मोहकलाल गिंवार ।
(पद नं० ८७)

१६ एषा मदुक्ति—मोहनीय के लरका लरकी, हस हस
गोद खिलावै । (पृष्ट ४६)

३०२ १२ कर्मग्रन्थ कर्त्ताए कह्यु—कीरई जिएण हेऊहिं जेणतो
भन्नए कम्मं

१५ करता परिणामी परिणामो, कर्म जे जीवे करियैरे।
एक अनेक रूप नयवादैं, नियते नर अणुसरियैंरे।

३१४ ७ „ „ (आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३०४ १ नाणं च दसणं चैव चरित्तं च तवो तहा । वीरियं उव-
ओगोय एयं जीवस्स लक्खणं (उत्त० अ० २८ गा० ११)

३०५ १ यथा आनंदघनोक्ति—कनकोपलवत् पइड़ पुरस तणी
जोड़ी अनादि सुभाव (पद्मप्रभ स्त०)

४ जीवति प्राणान् धारयतिजीव—जीवेन क्रियतेयत् तत्कर्मः

१० मदुक्ति–जीव करम जोड़, है अनादि सुभावसुं (पृ० १६२)

३०८ ३ —चेतनता परिणामी चेतन, ज्ञान करम फल भावीरे

३१४ १७ „ ज्ञान करम फल चेतन कहिए, लेज्योतेह मनावीरे (आनंदघन वासुपूज्य स्तवन)

३२१ १ „ „ „

३०८ ५ विशेषावश्यक—जहसो विसेसधम्मो चेयणं तह मया किरिया

१७ भाष्ये—ननु गुणस्वभावयोर भेद् एवं तद्भेद निबंधन धर्मभेदा भावात्

१८ तर्कसंग्रहे—गुण गुणिनो क्रिया क्रियावतो ।

३०६ १ सगति मरोरै जीव की, उदै महा बलवान

३१० १० आनंदघनोक्ति—आध्यातम जे वस्तु विचारी
„ भाव अध्यातम निजगुनसाधै, तो तेहथी रढ मंडोरे (श्रेयांस स्त०)

३११ ६ अत्थं भासइ अरिहा, सुत्तं गुंथंति गणहरा निउणा ।

१३ आनंदघनोक्ति—चित पंकज खोजै सो चीनै, रमता आनंद भौंरा (पद नं० २७)

२० हेमकोश—मोक्षो पायो योगो ज्ञान

३१२ ६ आगमधर गुरू समकिती, क्रिया संवर सार रे

संप्रदाई अवंचक सदा, सुचि अनुभवाधार रे। १।

पुनः—भजे सुगुरु संतान रे, (आनंदघन शांति स्तवन)

पुनः—परिचय पातक घातक साधुसुं रे, (संभव स्त०)

३५३ २२ „ „ अकुशल अपचय चते

३१३ ११ „ आपणो आतम भावजे, एक चेतना धार रे

३२६ ५ अवर सवि साथ संयोग थी, ए निज परिकर सार रे

३२७ ६ „ „ „ (शांतिनाथ स्त०)

३१५ ४ „ दीपक घट मंदिर कियौ, सहिज सुजोत सरूप

आप पराई आपनी, जानत वस्तु अनूप

(प० नं० ४)

६ निज सरूप बालक नहिं जानै पर संगति रति मानै।

भयै सरूप ज्ञान तें भगनी, अपने पर पहिचानै॥

(देखो ज्ञानसार पद नं० १३ पृ० ४२

१७ आनंदघन—निराकार अभेद संग्राहक, भेद ग्राहक साकारो रे।

३१९ ४ उत्तराध्ययने—नमुणी रण्ण वासेणं

३५३ १२ „ „

३५३ ११ „ नाणेण य मुणी होई

३१६ ९ „ एयं पंचविहं नाणं दव्वाणय गुणाणय

पज्जवाणंच सव्वेसिं नाणं नाणीहिं दंसियं

(अ० २७ गा० ५)

२४ „ नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा

(अ० २८ गा० ३०)

३२० १८ आनंदघनोक्ति—चेतनता परिणाम न चूकै, चेतन कहि
जिनचंदो। (वासुपूज्य स्तवन)

३२५ ७ „ „ „ „

३२१ १६ „ बंध मोख निहचै नहीं हो, विवहारै लख दोय।
कुशल खेम अनादि ही हो, नित्य अबाधित जोय
(पद नं० ८८)

३२२ १२ भवे मोक्षे च सर्वत्र निस्पृहो मुनि सत्तमः।

३२२ १२, ३६२ ८ अभयदेवसूरि—समे मुक्खे भवेतहा,

३२२ १८ मदुक्तिः—कदेन लागै कर्म, कहै आतमारामसूं
इह मिथ्यामति भर्म, बंध मोख है आतमा।
(आत्मप्रबोध छतीसी पृ० १६१)

३२३ १६ आनंदघन – चेतन आपा कैसे लहोई चे०
सत्ता एक अखंड अबाधित, इह सिद्धंत पछजोई १
अन्वय अरू व्यतिरेक हेतु कूं, समझ रूप भ्रमखोई
आरोपित सब धर्म और है, आनंदघन तत सोई २

२८७-१७, २६४-२, २६४-६, ३१७-१६, ३४५-५, (पद नं० ५५)

३२४ १७ साता उच्च गोय मणु सुर दुग पंचिंद जाय।
पांच सरीर आद मति सरीर उवंग-कहाय॥

३२५ ११ आनंदघनोक्ति—आनंदघन देवेन्द्रसे योगी बहुर न कलि
में आऊं रे। वाल्हा ते योगेचित्त ल्याऊं (पद नं० ३७)

३२७ २१ अप्पा कत्ता विकत्ताय

३३१ १६ आनंदघनोक्ति—तृसना रांड भांडकी जाई, कहा घर करै सवारो (पद नं० १४)
जावत तृष्णा मोह है, तुमहुं तावत मिथ्या भावो (पद नं ८०)

३३३ ११ मुत्ता निग्गंथिया दुहा
१५ गाथा—जहा मत्थ वसूइ ए हयाए हम्मए ताड़ो
तह कम्माण हम्मंति मोहणिज्जे खयंपए १
२० आनंदघनोक्ति—सत्ता थल में मोह विडारत, ए ए सुरिजन मुह निसरी (पद नं० ११)

३३५ १५ „ "वहिरातम अघरूप" "कायादिक नो साखी धर रह्यो (सुमतिनाथ स्तवन)

३३६ ११ „ आरोपित सब धर्म और है, आनंदघन तत सोई। (पद नं० २८)
२० „ निरविकल्प रस पीजिये, तौ शुद्ध निरंजन एक।

३४३ १ पुनः—गई पुतली लौन की, थाह सिन्धु कौ लेन
आपा गल इकमिक भई, सिद्ध गमन की सैन १

३४६ ६ आनंदघनोक्ति—अतिंद्रिय गुण गण मणि आगरू, इम परमातम साध (सुमतिनाथ स्तवन)

३४८ १६ मदुक्ति—स्यादवाद जिन मत कथन, अस्ति नास्तिता रूप
ता विनको कैसे लखै, आतम सुद्ध सरूप १ (पृ० १५६)

३४६ ६ सालंबणो झाणो

३५० ५ —फल विसंवाद जेह मां नहीं, शव्द ते अर्थ संवन्ध रे

सकल नयवाद व्यापी रह्यौ ते शिव साधन संधि रे
(आनंदघन—शांति स्तवन)

१५ भाव अध्यातम निजगुण साधे तो तेहथी रढ मंडो रे
(आनंदघन—श्रेयांसजिन स्तवन)

३५१ १३ पाणिनी—क्षण परं परोक्षं

३५२ १० मदुक्ति—"पै वंचक करणी जिती, तेती सरव असिद्ध"

निश्चै सिद्ध जौलों नहीं, विवहारें जिय मेल।
जोलूं पियफरसै नहीं, तव गुडिया सूं खेल। १।
जौलूं भावै न शुद्धता, तौलूं किरिया खेल।
वानी जौलों पीलहै, तौलों निकसै तेल। २।
जौलों कारज सिद्ध नहीं, तौलों उद्यम खेद।
वट कारज की सिद्ध तें, उद्यम खेद निपेध। ३।
(भावषट् त्रिंशिका पृ० १५२)

१६ अणाइए अपज्जवसिए

३६१ ६ न देवो विद्यते काष्टे, (चाणिक्य नीति)

३६२ ६ रतन जड़ित मंदिर तजे, सव सखियन कौ साथ
धिग मन धोखै लालके, वयों पीक पर हाथ। (भर्तृहरि)

३६४ ११ सद्धा भट्ठो भट्ठो, सद्धा भट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
चरण रहिआ सिज्झइ, सद्धा भट्ठा न सिज्झंति॥ १॥
(पाठान्तर दंसण भट्ठो०)

२० मंद मतिए, दुसमा कालनें जैनिए—ज्ञानसार बहुत्तरि

३६५ २१ सिद्ध समान सदा पद मेरो—समयसार

३६९ १३ आनंदघन—अब हम अमर भये न मरेंगे—पूरा पद
(नं० ४२)

३७० १ स्वकीय बहुत्तरी में—अनुभव हम कबके संसारी
(पूरा पद नं० १४)

१३ सिद्ध संसार समापन्नगा असंसारे समापन्नगाय नो
असंसार समापन्नगा संसार समापन्नगा—पन्नवणाटीका

३७२ ५ मदुक्ति—वैदेहक बिन जो निरआसी, सोइ विडंबनभासी
याकी आस्या विन आस्यानो, बीज कौन उगासी
कामादिक सब याकी संतति, पर परणितकी मासी
यातें योगी सोय सरोगी, जो आस्या नवि घासी
(पद नं० ३७)

३७४ आनंदघन—निरपरपंच बसै परमेसर, घटमें सूक्षम बारी।
आप अभ्यास लखै कोई विरला निरखै धू की तारी ॥ (पद ७)

३७५ ५ ,, रेचक कुंभक पूरक कारी, मन इन्द्रिय जय कासी।
ब्रह्म रंध्र मधि आसन पूरी, अनहद तान बजासी
माहरो बालूड़ो सन्यासी ॥ (पद नं० ६)

१८ "पिण्डे सो ब्रह्माण्डे, मूरख खोजै खण्डे खण्डे"

९ आनंदघन—हल चल खेल खबर ले घट की, चीन्हे
रमता जल में (पद नं० ७)

३७६ ७ ,, कायादिक नो साखी धर रह्यो, अन्तर
आतम रूप (सुमति स्तवन)

३७८ १ „ जिन सरूप थई जिन आराधे, ते सही
जिनवर होवे रे (नमिनाथ स्तवन)

३८१ १७ अरिहंतो महदेवो, जावज्जीवं मुसाहूणो गुरुणो।
जिणपन्नते तत्तं इय समत्तं मए गहियं ॥ (आवश्यकसूत्र)

३८३ 'समइय सामाइयं होइ'

३८४ ३ कुक्कडि पाय पसारण, अतरंत पमज्जएभूमी। संकोसिय
संडासा, उव्वट्टंतेय कायपडिलेहा (संथारापोरसी)

१० कम्मनिज्जराएति।

१३ वारस विहो तव निज्जराय।

३८५ ६ हेया वंधा तव पुण पावा।

१८ वाल मरणेय पंडिय मरणेयं सेकिंते वालमरणे २ दुवा-
लसविहे पन्नते—भगवती

३८६ १ पंडिय मरणे दुविहे पन्नते पाओपगमणे य भत्तपच्च-
क्खाणेय से किं तं पाओपगमणे दुविहे पन्नते तंजहा
नीहारिमेय अनिहारिमेय नियमा अप्पडिक्कमे भत्त
पच्चक्खाणे दुविहे पन्नते तं०। निहारिमेय अनिहारिमेय
नियम सप्पडिक्कमे दुविहे पंडिय मरणेणं मरमाणे
जीवे अणंतेहिं नेरइय भवग्गहणेहिं अप्पाणं वि संजोए
इ वीर्या वयति —भगवती जी १० शतक

३८७ १५ तच्चेवं सामाइयमिह पढमं सावज्जे जत्थ वज्जिउं जोगे
समणाणं होइ समोदेसेणं देसविरओवि ॥ व्या० ॥
इह सामायिकं नाम प्रथमं शिक्षाव्रतं भवति यस्मिन्सा-

मायिके कृतेसति देशविरतोपि सावद्यान्मनो वाक्काय व्यापारान् वर्जयित्वा सर्वविरतानां सदृशो भवति कथमित्याह देशेन देशोपमया यथा चन्द्रमुखी ललना समुद्रवत्तडाग इति इतरथा तु अस्त्येव साधु श्राद्धयोर्महान् भेदः तथाहि साधुरुत्कर्षतो द्वादशांगी मप्यधीते श्राद्धस्तु षड्जीवनिकाध्ययन मेव पुनः साधुरुत्कर्षत सर्वार्थसिद्धि विमानेष्युत्पद्यते श्राद्धस्तु द्वादशे कल्पे एव तथा साधोर्मृतस्य सुरगतिः सिद्धिगतिर्वास्यात् श्राद्धस्यतु सुरगति रेव पुनः साधोश्चत्वारः संज्वलन कषायाएव कषाय वर्जितो वाऽसौस्यात् श्राद्धस्यतु अष्टौ प्रत्याख्याना वरणाः ४ संज्वलना ४ श्चस्युः पुनः साधोः पंचानां व्रतानां समुदितानामेव प्रतिपत्तिः श्राद्धस्य तु व्यस्तानां समस्तानां वा इच्छानुसारेण स्यात् तथा साधोरेकवारमपि प्रतिपन्नं सामायिकं जावज्जीव मवतिष्ठते श्राद्धस्तु पुनः पुनस्तत्प्रतिपद्यते पुनः साधोरेक व्रतभंगे सर्व व्रतभंगः स्यात् अन्योन्यं सापेक्षत्वात् श्राद्धस्तु न तथेत्यादि

३८८ १५ आसवा ते परिसवा परीसवा ते आसवा—अचारांगे

३६६ १६ „ „ „

३८६ ३ जो बंधो मुक्खो मुणै, तौ बंधो निब्भंत ।

अप्प सहावै निम्मलो, लहु निव्वाण लहंत । समयसार

४१७ १६ „ „ गाथावद्ध कलशामेंछै

३८६ १६ तहारूवेणं भंते समणं वा माहणं वा पज्जवासमाणस्स किं फला पज्जुवासणा गोयमा सवणफला सेणं भंते सवणे किं फले णाण फले सेणं भंते नाणे किं फले विन्नाण फले एवं विन्नाणेणं पच्चक्खाण फले पच्चक्खाणेणं संयम फले संजमेणं अणण्ह फले अणण्हेणं तवफले तवेणं वोदाण फले वोदाणेणं अकिरिया फले सेणं भंते अकिरिया किं फला गो० सिद्धि पज्जवसाण फला पन्नत्ते ति अस्यार्थः हे भदंत तथारूप मुचितस्य भाव श्रमणं वा साधु माहणं वा श्रावक पर्य्युपासमानस्य जतो पर्य्युपासना तत्सेवा साध्वादि सेवा किं फला कीदृग् फल प्रदायनी प्रज्ञप्ते तिप्रश्नः अत्रोत्तरं गौतम श्रवण फलेति सिद्धान्त श्रवण फला तत्किं फलं नाणफलेत्ति श्रुतज्ञानफलं श्रवणादि श्रुतज्ञानमवाप्यते एवं प्रतिपदं प्रश्नकार्यं विन्नाण फलेत्ति विशिष्ट ज्ञान फलं श्रुत ज्ञानादि हेयोपादेय विवेक कारि विज्ञान मुत्पद्यते एव पच्चक्खाणफलेत्ति विनिवृत्ति फलं विशिष्ट ज्ञानोहि पायंप्रत्याख्याति संयम फलेत्ति कृत प्रत्याख्यानस्य हि संयमो भवत्येव अणण्ह फलेत्ति अनाश्रव फलः संयमवान् किल नवं कर्मनोपादत्ते तव फलेत्ति अनाश्रवोहि लघु कर्मत्वात्तपस्यतीति वोदाण फलेत्ति व्यवदानं कर्म्मनिर्ज्जरणं तपसाहि पुरातनं कर्म निर्ज्जरयति अकिरिया फलेत्ति योगनिरोध फलं कर्मनिर्ज्जरा तोहि योगनिरोध कुरुते सिद्धि पज्जवसाण फलेत्ति सिद्धि

लक्षणं पर्यवसान फलं सकल फल पर्यंतवर्त्ति फलं यस्याः सा (भगवती शतक २ उद्देशा ५ वां)

३६१ १७ सजमेणं भंते जीवा किं जणइ—एगंतनिज्जरेति

३६२ ६ समाणे लिट्ठु कंचणे, समेपूआवमाणेसु

१० लाघवेणं च खंतीए गुत्ती मुत्ती अणुत्तरे
संवरेणं तवेणंच संजमेण मणुत्तरे

३६४ ११ निश्चैसिद्ध जौलों नहीं, विवहारै जिय मेल।
जौलों पिय फरसे नहीं, तब गुडिया सुं खेल ॥१॥

३६५ १ निश्चै हू भी सिध नहीं विवहार दे छोड़।
इक पतंग आकाश में, फिर दे दोरी तोड़॥
(पृ० १५२)

३६५ ३ ठाणांगजी में—"हेउ चउविहे पन्नते अवाते उवाते ठवणाकम्मे पच्चुपन्न विणासी" अपाय उपाय स्थापना कर्म प्रत्युत्पन्न विनासी

१६ समणेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ

३६६ १५ समयसार—दीन भयौ प्रभु पद जपै, मुगति कहांसे होय

२० अदेवे देव सण्णा देवे अदेवसण्णा धम्मे अधम्म सण्णा अधम्मे धम्म सण्णा सुगुरे कुगुरु सण्णा कुगुरे सुगुरु सण्णा

३६८ १४ "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः" यथा—मदुक्तिः—
अंध क्रिया अरु पंगु ज्ञान, इकतै सिद्ध न होय निदान
ज्ञानवन्त जो करणी करै, मोख पदारथ निहचै वर ।१।
सुद्ध सरूप धरौ तपकरो, ज्ञान क्रियातें शिवगति वरौ।
एक ज्ञान तें मानै मोख, सो अज्ञान मिथ्यामति पोख ॥

३६६ ३७ अपनौ शुद्धातमपद जोवै, क्रिया विभावे मगन न होवै ।
मोख पदारथ मानै ऐसे, जिनमत तें विपरीत विसेसैं ।१।

(पृ० १५८)

घर में या वन में रहो, भेख रूप विन भेख ।
तप संजम करणी विना, कोई न लखे अलेख ॥
कोई न लखै अलेख, विना तप संयम करणी ।
ज्ञान क्रिया ए दोय, उदधि संसार वितरणी ॥
एक ज्ञान हू मोख, मान कारण क्यों भरमै ।
तप संजम द्वै धरौ, लखौ अनलख घट घरमें ॥

(पृ० १६२)

४०१ १२ "अक्खाणसिणी"

४०२ ८ कबीरपंथीनिरंजनीः—

पत्थर पूज्यां हर मिलै तो, मैं पूजूं पहार ।
सब से भली चक्की, सो पीस खाय संसार ॥

४०४ ७ मदुक्तिः—पर परणित से भिन्न भए जब, किंचित
कर असमर्थी । (पृ० ६३)

१७ न्हाया कयवलिकम्मा—भगवती, तुंगिया श्रावकाधिकारे

४०५ कयवलि कम्मत्ति स्नानानंतरं कृत वलि कर्मः यैं स्वगृह
देवानां—अभयदेवसूरिकृत भगवतीजी वृत्ति

४१० ७ कइविहेणं भंते ववहारपन्नते गोयमा पंचविहे ववहारे
पन्नते तंजहा—आगमे सुत्तं आणा धारणा जीए जहासे
तत्थ आगमे सिया आगमेणं ववहारं पट्ठवेज्जा णोय

से तत्थ आगमेसिया जहासे तत्थसुएसिया सुएणं ववहार पट्ठवेज्जा णोवासे तत्थसुए सिया जहासे तत्थ आणा सिया आणाए ववहारं पट्ठवेज्जा णोय से तत्थ धारणा सिया जहा से तत्थ जीए सिया जीएणं ववहारं पट्ठवेज्जा इच्चे एहिंपंचहिं ववहारं पट्ठवेज्जा तंजहा आगमेणं १ सुएणं २ आणाए ३ धारणाए ४ जीएणं ५ जहा जहा से आगमे सुएआणा धारणा जीए तहा तहा ववहारं पट्ठवेज्जा से किमाहु भंते आगम बलिया समणा निग्गंथा इच्चे तं पंचविहं ववहारं जया जया जहिं जहिं तया तया तहिं तहिं अणिस्सि ओवसि तं सम्मं ववहारमाणे समणे निग्गंथे आणाए आराहए भवइ। (भगवती श० ८उ०८)

४११ ३ निच्छय मग्गो मुक्खो

४१२ १० सप्तनया भवंति नैगमादयः उक्तं च—नगम, संग्रह-व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़, एवंभूत नयाः एते च द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक लक्षणे नय द्वयेऽन्तर्भाव्यन्ते द्रव्यमेव परमार्थतो ऽस्ति न पर्याया इत्यभ्युपगमपरो द्रव्यास्तिकः पर्यायाएव वस्तुतः संति न द्रव्य मित्यऽभ्युपगमपरः पर्यायास्तिक स्तत्राद्यास्त्रयो द्रव्यास्तिकाः शेषास्तु पर्यायास्तिकाः (अनुयोगद्वारवृत्तौ)

१८ जीवाणं भंते किं सासया असासया गोयमा ! जीवा सिय सासया सिय असासया से केणट्ठेणं भंते एवं

वुच्चइ जीवा सिय सासया सिय असासया गोयमा दव्वट्ठयाए सासया भावट्ठयाए असासया से तेणट्ठे णं गोयमा एवं वुच्चइ जाव सिय असासया भगवती
शतक ७ उद्देश २

४१३ १२ निच्छयओ दुन्नेयं को भावे कम्मि वट्टए समणो
ववहारो अकीरइ जो पुव्वट्ठिओ चरित्तंमि ॥१॥
(आवश्यक निर्युक्ति)

४१४ ३ ववहारो विहु वलवं जं छउमत्थं च वंदए अरिहा
जा होइ अणा भिन्नो जाणंतो धम्मयं एयं ॥१॥ (भाष्य)

४१४ १७ निच्छय मग्गो मुक्खो ववहारो पुन्न कारणो वुत्तो
पढमो संवरख्वो आसवहेओ तओ वीओ ॥ १ ॥

४१५ ६ जइ जिण मयं पवज्जह ता मा ववहार निच्छये मुयह
इक्केण विणा तित्थं छिज्जइ अन्नेण ओ तत्तं ॥ १ ॥

४१६ १५ णाणं पयासकं सोहगो तवो संजमोय गुत्ति करो
तिण्हंपि समाओगे मोक्खो जिण सासणे भणिओ ॥१॥
[भगवती उ० ८ श० १०]

४१७ १ वाह्य कष्ट देखाड़ी मुझ सरिखा वणा,
वंचे मुगध नैं दे उपदेश सुहामणा। (पृ० १३७)

६ प वंचक करणी जिती, तेती सरव असिद्ध। (पृ० १७४)

७ ज्ञानातम समवाय है, किरिया जड़ सम्बन्ध।
यातैं किरिया आतमा, तीन काल असंबंध।१। पृ० १४८

११ धर्मी अपनैं धर्म कुं, न तजै तीनूं काल।
आतम ज्ञान गुण ना तजै, जड़ किरिया की चाल॥
(पृ० १४६)

४१८ १२ असंवुडेणं भंते अणगारे किं सिज्झइ बुज्झइ मुचइ परिनिव्वाइ सव्वदुक्खाणमंतं करेइ गो० नो इणट्ठे समट्ठे से केणट्ठेणं भंते जाव नो अंतं करेइ गो० असंवुड़े अणगारे आउय वज्जाओ सत्तकम्म पगड़ीओ सिढिल वंधण वद्धाओ वणिय वंधण वद्धाओ पकरेइ रहस्स कालट्ठियाओ दीह कालट्ठिईयाओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणु भावाओ पकरेइ अप्प पदेसग्गाओ वहुपदेसग्गाओ पकरेइ आउयंचणं कम्मं सिय वंधइ सिय नो वंधइ असाया वेयणिज्जं चणं कम्मं भुज्जो भुज्जो उवचिणाइ अणाइयं चं अणवदग्गं दीह मद्धं चाउरंत संसार कंतारं अणुपरियट्टइ से तेणट्ठेणं गो० असंवुड़े अणगारे णोसिज्झइ (भगवती श० १ उ० १)

४१९ ६ पयमक्खरंपि एगंपि, जो न रोयइ सुत्त निदट्ठं।
सेसं रोयंतो विहु, मिच्छदिट्ठी जमालिव्व। १।

४२० ८ मण परमोहि पुलाए, आहरग खवग उवसमे कप्पे।
संजमति केवलि सव्भणाय, जंवुम्मि विच्छिन्ना। १।
(प्रवचन सारोद्धार)

१८ कलहकरा डमरकरा असमाधिकरा वहवे मुंडा अप्पे समणा

४२१ ४ निश्चय नय हृदये धरी, पालीजै विवहार।
पुण्यवंत ते पामस्यै जी, भवसमुद्र नो पार।१।
(यशोविजय, सीमंधर स्त० ढा० ५)

६ आत्मगुण विध्वंसना ते अधर्म, आत्मगुण रक्षणा तेह धर्म। —देवचन्द्रजी (अध्यात्म गीता)

१८ कहण्णं भंते जीवा गरुयत्त हव्वमागच्छंति गो० पाणाइवाएणं मुसावाएणं आदि मेहुण परिग्गह कोह माण माया लोभ पेज्ज दोस कलह अब्भक्खाण पेसुन्न रति अरति परपरिवाये मायामोसं मिच्छादंसणसल्लेणं एवं खलु गोयमा जीवा गरुयत्तं हव्व मागच्छंति कहण्णं भंते जीवा लहुयत्तं हव्व मागच्छंति गोयमा पाणाइवाय वेरमणे जाव मिच्छादंसण सल्ल वेरमणेणं एवं खलु गोयमा जीवा लहुयत्तं हव्व मागच्छंति एवं संसार आउली करेंति एवं परित्ति करेंति एवंदीही करेंति एवं रहस्सी करेंति एवं अणुपरियट्टेंति एवं वीयी वयंति पसत्था-चत्तारि अपसत्था चत्तारि (भगवती श० १ उ० १)

४२२ १३ वचन सापेक्ष व्यवहार साचौ कह्यो, वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठौ (आनंदघन, अनंतनाथ स्तवन)

———

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	४	तंही	तूंही
७	९	सहिबा	साहिबा
७	१५	संसरु	संसरूँ
२८	३	पूजता	पूरता
३५	१९	धमवन्त	धर्मवन्त
३५	२५	निच्चरघाढिओ	निच्चु रघा-ढिओ
३६	१७	मत्वय:	मन्वय:
३६	२१	*	†
३६	२१	†	*
४०	२१	जणा पछे	जणायछे
४१	१६	सत्वं मृ	सत्वं
४१	२०	चेरा	चेरो
४५	१७	हुन्दर	हुन्नर
५६	२१	अनहदधु निकुं	अनहद धुनिकुं
५७	५	वसियारो	वसियारा
६३	६	अबाधत	अबाधित
६२	११	उदासा	उदासी
६४	१६	विवजित	विवर्जित
६३	९	रिंदन	निंदन
७५	१४	पर	परि
७५	१६	भेस	भेष
७५	१७	मान्	मानूं
७६	१६	अिन	जिन
८३	११	हंसा	हिंसा
८५	८	हर	हट
८९	८	दशन	दर्शन
९०	१८	एकांतपणं	एकांतपणु
९०	२२	निर्दशन	निदर्शन
९२	१६	खभ	लभ
९२	२१	ढ़ढिया	ढुंढिया
१०४	१	दखे	देखे
१०४	११	सनोठा	सनोटा
११५	८	उजेरा	उजरा
१२२	१७	दीसें	दीवसें
१३१	३	छाड	छांड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३४	१४	घरो	धरो
१३७	३	वंचन	वचन
१४९	१२	कालमा	काल मां
१५३	१०	निश्चैं	निश्चैं
१७१	८	कोघ	क्रोध
१७१	२३	सामझावण	समझावण
१७२	३	तप	तप १
१८६	१४	पोर	पोरिसि
१८९	१२	तेनं	तेणं
१९४	१७	उम्फलै	उछलै
१९६	१८	प्रघल	प्रबल
१९९	१	करवर	करिवर
२००	१८	धूम	भ्रम
२०५	९	अषने	अपने
२०५	१५	वृभष	वृषभ
२०९	१८	उषचार	उपचार
२१३	१३	कदव	कदंब
२२४	६	चेतनै	चेतन नै
२२५	८	विष	विषे
२२५	२२	ते	स्मृते
२२७	७	माट	माटे
२२७	९	माह्नि	मोहिनी
२२९	४	सुमत	सुमता
२३१	१४	दण	देण
२३८	४	छज	छेज
२३९	१२	गई गई	गई
२५१	७	व्याधाये	बाधाये
२५१	८	दिव्यतीत	दिव्यत
२५१	१०	निरुपद्रववी	निरुपद्रवी
२५५	१८	एतल	एतले
२५७	४	छ	छे
२६०	८	न जाणे	जाणे
२७१	५	तौ	नौ
२७२	२	समुद्द	समुद्र
२७२	१०	काल	कालः
२७२	१०	जालः	कालः
२७२	१९	परणमनं	परिणमनं
,,	,,	परणमनत्वं	परिणमनत्वं
,,	२०	,,	,,
,,	,,	,,	,,
२७३	२	परणमनत्वेन	परिणमनत्वेन
२७३	३	स्वभावत्व	स्वभावत्वं
२७३	५	आलखाण	ओलखाण
२७३	८	नीपंज	नीपजे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७३	१०	जार	जोर
२७६	३	कर्मंतति	कर्मति
२७६	६	कर छौ	करै छै
२७९	८	इचणौ	इचरणौ
२७९	५।९	सूरिः	सूरि
,,	११	परिमलाहृत	परिमलाहृत
,,	१३	गुरुः	गुरु
,,	१५	रित	रति
२८०	३	०दीप्त	०दीप्ति
,,	१५	तंदुलैः	तंदुलै
२८२	५	ललति	ललित
२८४	८	समभिरूढ़ि	समभिरूढ़
,,	११	सुंप्रशस्त	सुप्रशस्त
,,	१९	अल्लोक	अलोक
२८५	१३	०काई	०कायादि
२८८	२१	संसारणीय	संसारिणीय
२९०	५	भेदा	भेद
,,	१६	परणमथी	परणमनथी
२९५	१८	इम	इण
२९६	४	अपाततनी	अपातनी
,,	१०	मयो	मायो
२९७	१८	तृ	ते
२९९	१२	आ मत्व	आत्मत्त्व
३००	१८	साध्यक	साधक
३०४	१५	न	नै
३१०	२	थौ	थै
,,	६	एतल	एतले
३११	४	कहिय	कहिये
३२०	२०	मूं	नूं
३२१	६	सत्वें	सत्वं
,,	९	रुच	रुचि
३२३	१८	सिधंत	सिद्धंत
३२५	२१	अराधे	आराधे
३२६	१३	,,	,,
३२७	१३	भात्र	मात्र
३२९	२	अतिशान	अतिशयेन
,,	१७	प्रग	प्रगव्यो
३३१	१६	प्रघान	प्रधान
३३२	७	युंयन	युंजन
३३६	१९	ध्याने	ध्याने
३४३	२	सांम	नाम
३४६	७	मण	मणि
३४८	३	अतिंद्रिय	अतींद्रिय
३४८	१२	स्व स्व	स्व

,,	१४	स्यादवाद	स्याद्वाद
३५३	२	उपकठ	उपकण्ठ
३५३	७५	अणुभोगो	अणुवओगो
३५३	२	उपकठ	उपकंठ
,,	७१	अणुओगो	अणुवओगो
,,	१६	जगतां	जागतां
,,	,,	अभ्यस न	अभ्यसन
३५४	४	पामीज	पामीजै
,,	९	चूर्ण	चूर्णि
,,	,,	नियुक्त	निर्युक्ति
,,	१०	अभ्यसद्	अभ्यासाद्
३५५	७	वृत्तियें	वृत्तियें
३५७	७	जो	"जो
,,	,,	परमप्पा	परमप्पा
,,	,,	सिद्धप्पा	सिद्धप्पा
,,	१०	पर	परं
३५८	४	किहाई	किहांई
,,	८	श्रेणकैं	श्रेणिके
,,	१०	परमेश्वररैं	परमेश्वरे
,,		श्रेणक नैं	श्रेणिकने
,,		तैं	तैं
३५९	२	रोगील	रोगीलै
,,	१६	त्यावनौ	त्यावानौ
,,	१६	व्यापारो	व्यापारो
,,	२१	हंसा	हिंसा
३६०	४	गमनागम	गमनागमन
,,	७	आगम	आगमन
,,	१२	कांरणैं	कारणै
३६१	१७	बांवंल	बांबल
,,	१८	वुद्धि	वुद्धि
३६२	२	बुद्धे	वुद्धे
,,	३	वुद्ध	,,
३६३	७	देख्या	देख्यौ
,,	१६	प्रत्यक्षे	प्रत्यक्ष
,,	१७	प्रमाणा	प्रमाण
३६४	१	कृपांयें	कृपायैं
,,	१२	सिज्मइ	सिज्मन्ति
,,	१२	भांव	भाव
,,	१५	कदास	कदा च
,,	२०	दुसमा	दुसम
३६५	६	यायावन्मात्र	यावन्मात्र
,,	११	नौ	तौ
३६६	४	व्यभ	व्यभि
३६८	१७	विशेपें	विशेपैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७१	५	आत्मानु	आत्मा तु
,,	७	परविगार्थं	परं भोगार्थं
,,	१५	जटलादिक	जटिलादिक
३७१	१५	उच्चाररणऊंचे	उच्चारणऊंचे
३७२	७	को	जो
३७३	६	नाभिना	लिंगना मूलमां स्वाधिष्ठान चक्रे तेज वायुथी रेचक कुंभक पूरक करे, त्यांथी नाभिना
,,	७	तीजो	चोथो
,,	२०	ताई	तांई
३७४	१२	धू	भ्रू
,,	१९	ऐमें	एमें
३७५	१८	बीजुं	बीजुं
,,	१९	ब्रह्मंडे	ब्रह्मांडे
३७६	५	ह्वो	हो
,,	१०	दुखनो अवेदवु	दुःखने अवेदे
,,	१३	पचिंई	पांचेंई
३७७	१०	भीजें	भींजें
,,	१६	परामात्मा	परमात्मा
,,	२०	का का	का
३७८	१६	गत	गति
,,	१८	मतीं	मती
,,		सवं	सर्व
३७९	१०	जांणी	जाणी
,,	११	कैं	कै
,,	१६	भमरा	भमरी
३८०	२१	चल्या	चाल्या
३८१	१२	जोव	जीव
३८२	३	ध्मान	ध्यान
,,	६	छैं	छै
,,	७	जे कोई द्रव्यमैं	छै कोईमां नथी ते साधारण असाधारण गुण कहीजै.....
,,	१५	विचयैं	विचय
३८३	१	अनमी	अनामी
,,	१२	हते	रहते
,,	१४	पढमें पोरसि	पढमे पोरिसि
,,	१५	,,	,,
,,		चउथे	चउत्थे
,,	१६	,,	,,
,,		पुणर विसज्झायं	पुणरवि सज्झायं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१९	संभवैः	संभवै
,,		पीहर	पहुर
,,	२१	संजग जापना	संयम खपना
,,		पालमा	पालवा
३८४	३	कुक्कड पाव	कुक्कुडि पाय
,,		अतंरंत	अतरंत
,,	४	निच्चै	निश्चै
,,	१४	निर्ज्जरा	निर्जरा
,,	१६	असंभव मोक्ष	असंभवे मोक्ष
३८५	१	विचारीं	विचारी
,,	२	पुण्थ	पुण्य
,,	६	पुण	पुण्ण
,,	१२	पांचे ईपदो	पांचेई पदो
,,	१८	मरणेयं	मरणेय
,,	१९	तें	ते
३८६	२	या ओपगमणे	पाओप-गमणे
,,	२	निपयमा	नियमा
,,		अप्पडिकमे	अप्पडिक्कमे
,,	४	सपडिक्कमे	सप्पडिक्कमे
,,	५	माणो	माणे
,,		अणंतेहि	अणंतेहि
,,	१७	आए	आपे
,,	२१	पद्मासन नैं	पद्मासन नैं
३८७	७	नौ	तौ
,,	७	समउसन	समज न
,,	१४	०नुष्टान	०नुष्ठान
,,	२०	समुद्रव	समुद्र इव
,,		तु	तु
३८८	१	पद	पद्
,,	२	०प्फुरायंते	०प्युत्पद्यंते
,,		सार्द्ध स्तु	श्राद्धस्तु
,,	७	०ठने	०ठवे
,,	१०	स्हतु	स्तु
,,	११	वंच	बंध
,,	१४	करं	करनै
,,	१७	पौंहचवानी	पहौंचवानी
,,	१६	परीसवां	परीसवा
३८९	६	करणी करणी	करणी
,,	१९	सेवणे	सवणे
३९०	१	फल	फला
,,		ज्ञांन	ज्ञान
३९०	९	पांप	पायं
,,	२०	द्वव्यै	द्रव्यै

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९१	६	संजल	संज्वलन
,,	१३	निर्जरा	निर्जरा
३९२	१	उत्तराध्यपने	उत्तराध्ययने
,,	४	मोक्ष्याभिलाष	मोक्षाभिलाप
,,	१२	सर्वोकृष्ट	सर्वोत्कृष्ट
,,	१४	वीर्यं	वीर्य
३९३	१७	हर्प	हर्ष
३९४	६	जिनौ नो	जिनोनो
,,	२१	प्रत्यक्षे प्रमाणा	प्रत्यक्ष प्रमाण
३९५	५	सद	सद्
,,	११	पोहचवुं	पहोंचवुं
३९६	१६	परमेश्वर रे	परमेश्वरे
,,	१७	मिथा	मिथ्या
,,	२०	सणा	सण्णा
३९७	१	,,	,,
,,		जोत ।	जोतां
,,	११	तीथकरे	तीर्थंकरे
४००	३	जीवियउ	जीवियाओ
,,	९	उथपै	उत्थापै
,,	२२	प्रतिकर्मणादि	प्रतिक्रमणादि
४०२	१	इर्हा	इहां
४०३	२	किरियँ	किरिया
,,	६	ओको	लोको
,,	१३	छू	छूं
,,	१५	वंध	बंध
४०४	९	अं यसमैं थी	अंतसमैंथी
४०५	५	नवंगी	नवांगी
,,	१२	बलकम्मा	बलिकम्मा
,,	१६	आधुनक	आधुनिक
,,	१९	कम्मा तौ	कम्मानौ
४०६	१	तेमैं	तमैं
४०७	२	हुव	हुवै
,,	४	कदास	कदाच
४०८	७	जीवदयो	जीवादयो
,,	२०	आलोयगा	आलोयणा
४०९	८	व्यवहार	व्यवहार
,,	९	दशाश्रु तं	दशाश्रुत
,,	११	निमत्तें	निमित्तें
,,	१३	तिकौ	तिकौ आज्ञा
४१०	१८	आणांए	आणाए
४११	१७	भरथजीयैं	भरतजीयैं
४१२	१	दूजा	दूजा
,,	१२	०भव्यिन्ते	०भाव्यिन्ते
,,	१३	०गमरो	०गमपरो
४१३	४	व्यवहार	व्यवहार
,,	१४	भाब	भाव
४१३	१५	अप्रझस्त	अप्रशस्त
,,	१६	ज्येष्ट	ज्येष्ठ
४१४	४	धमायं ऐवं	धम्मयं एवं
,,	७	होय	होइ
,,	११	छद्गास्थ	छद्मस्थ
,,	१२	स्नातकै	स्थानकै

,,	१५	जाव	जवाव
,,	१६	० रामेः-	० गमेः-
,,	१७	निच्छिय	निच्छय
,,	२०	कह्यौ	कह्यौ
४१५	६	निच्छियए	निच्छये
,,	१४	निमित्त	निमित्त
४१८	१३	० अंतं	० मंतं
,,	१८	अस्साया	असाया
,,	१९	चं अणवदग्गं	
४१९	६	इक्कं पि	एगं
,,	१४	० विरत	० विगति
,,	१९	प्रगटपण	प्रगटपणै
४२१	११	आघ्यात्म	अध्यात्म
,,	१४	थांन	थांनै
,,	१९	आदि	अदत्त
,,		परि	परिग्गह
४२२	१	पाणायवाय	पाणाइवाय
,,	६	विध्वसना	विध्वंसना
,,		पर	पण
४२२	१९	आघ्यात्म	अध्यात्म
४२३	१६	अममत्व	अममत्व
,,	२०	अयसय	अइसय
४२४	२	वांशी	वांणी
,,	३	जगचक्षू	जगचक्षु

—:※:—

पृष्ठ ४८ पद नं० १३ त्रुटक है जिसकी पूर्त्ति :—

बाकी रकम और के खातै, कोई सूँ न सरूझै।
देसावर आसामी काची, सो तो मूल न सूझै ॥ अ० ॥३॥
कैसे काम रहैगो इनकौ, रखे धको नहिं खावै।
ज्ञानसार जो पूंजी सूंपै, तो लछ्या रहि ज्यावै ॥अ०॥४॥

नोटः—पृ० ४४ में फुटनोट नं० १ निम्नोक्त है :—

जड़ करनैं भासो नाम मिश्रित हुई पर क्षीर नीर छै ते सप्रदेसे अव्यापक छै प्रदेशो भिन्न-भिन्न छै। खीर रो प्रदेश भिन्न छै नीर रो प्रदेश भिन्न छै त्यों अविभासी छै नाम चेतनता जड़ करनै भासो छै नाम चेतनता ने जड़ना दलिया ने संयोग सम्बन्ध छै पिण समवाय सम्बन्ध नहीं।

नं० २ का फुटनोट का नं० १ और नं० ३ "तृपत" का है जो नं० २ छपा है कृपया ठीक कर लें।

प्राप्तिस्थान (२)—

श्री अभय जैन ग्रन्थालय

नाहटों की गवाड़

बीकानेर

ग्रन्थमाला के नये प्रकाशन

१. बीकानेर जैन लेख संग्रह [२६०० शिलालेख, ६० चित्र, सजिल्द
१२५ पेज की विस्तृत ऐतिहासिक भूमिका, बृहद् ग्रंथ] मूल्य १०)

२. समयसुंदर कृति कुसुमाञ्जली [कवि की जीवनी व ५६३ रचनाओंका
बृहद् संग्रह, सजिल्द, पृष्ठ८००) मूल्य ५)

३. बीकानेर के दर्शनीय जैन मंदिर मूल्य =)

४. आत्मसिद्धि [हिन्दी पद्यानुवाद] पू० सहजानंदजी भेंट

५. श्री मद् देवचन्द्र स्तव नावली [जीवनीसह] मूल्य ।)

मुद्रकः—

न्यू राजस्थान प्रेस, कलकत्ता

भारतीय मुद्रण मंदिर, बीकानेर